RNI No.: MPHIN/2018/77137
ISSN 2582-483X

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष-3 अंक-7 मार्च 2021
तिमाही, भोपाल

मार्च, 2021 (वर्ष 3, अंक 7)

प्रकाशक

- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
  सरजापुरा, बैंगलूरु 562125 कर्नाटक
  Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
  पाठशाला भीतर और बाहर
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
  सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
  भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
  pathshala@apu.edu.in
  gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
  मो. 8226005057

डिज़ाइन एवं प्रिंट

- **गणेश ग्राफिक्स,**
  26-बी, देशबंधु परिसर,
  प्रेस काम्प्लेक्स,
  एम.पी.नगर, जोन-1
  भोपाल, म.प्र. 462011
  ganeshgroupbpl@gmail.com
  मो. 9981984888

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

पत्रिका में छपे लेखों में व्यक्त विचार और मत लेखकों के अपने हैं।
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सम्पादकीय

एक साल से जारी कोविड-19 महामारी की विभीषिका ने देश और दुनिया के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। अन्य क्षेत्रों की तरह भारत की शिक्षा पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा है और बच्चों को इसका काफ़ी नुक़सान हुआ है। अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय द्वारा किया एक ज़मीनी अध्ययन बताता है कि बच्चों के सीखने में दो तरह से नुक़सान हुआ है। एक तो सालभर से स्कूल बन्द होने से सीखना-सिखाना, शिक्षक से, दोस्तों से मिलना बन्द है। दूसरा यह है कि जो भी कुछ सीखा-समझा था वह भी उपयोग के अभाव में गुम होने लगा है। ऐसे में जब स्कूलों का खुलना शुरू हो गया है, इस अध्ययन को व ऐसे अन्य अध्ययनों को देखना व उससे मिली सीख को स्कूल में, कक्षा में इस्तेमाल करना ज़रूरी है।

पाठशाला के इस अंक में भी फ़ील्ड अनुभवों पर आधारित काफ़ी लेख हैं। शिक्षणशास्त्र खण्ड में ऐसे चार लेख हैं। इनमें हुमा नाज़ का लेख ***विज्ञान शिक्षण करके सीखना और शिक्षक की भूमिका*** है। लेख एक माध्यमिक कन्या स्कूल के बच्चों के साथ विज्ञान की अवधारणाओं पर किए गए कार्य पर आधारित है। लेखिका विज्ञान को करके सीखने के बच्चों के अनुभवों को विश्लेषण सहित रखती हैं।

दूसरा लेख ***भाषा शिक्षण और भाषाई खेल*** है। लेखिका कुसुमलता बताती हैं कि पारम्परिक और कुछ नए रचे गए भाषाई खेलों के माध्यम से बच्चों में भाषाई कौशलों को किस तरह सहभागी व रुचिकर तरीक़े से समृद्ध किया जा सकता है और इन खेलों के ज़रिए बच्चों से प्रगाढ़ रिश्ता कैसे बनाया जा सकता है।

हिमांचल श्रीवास्तव का लेख ***प्रक्रियात्मक चित्र और विज्ञान शिक्षण,*** पर्यावरण शिक्षण के कुछ उदाहरणों को सामने रखते हुए बताता है कि प्रक्रिया चित्र बनाने से किसी भी अवधारणा के विभिन्न घटकों और उनके आपसी सम्बन्धों को समझने में सुगमता होती है और इस कारण हासिल समझ बच्चों को लम्बे समय तक याद रहती है।

रंजना अपने लेख ***बालिका विद्यालय में जेंडर की निर्मिति और उसके सामाजिक निहितार्थ*** में बताती हैं कि हमारे समाज में लिंग भेदभाव की जड़ें बहुत गहरी हैं जो बालिकाओं के एक ख़ास तरह के समाजीकरण द्वारा निरन्तर पोषित होती रहती हैं। समतामूलक समाज बनाने में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए यह लेख एक बालिका विद्यालय के अवलोकनों के आधार पर स्कूल में जेंडर निर्मिति के अनुभवों को साझा करता है।

निमरत खंदपुर अपने लेख ***शिक्षक की जवाबदेही*** में बताती हैं कि शिक्षक की ज़िम्मेदारी बच्चों को सिखाना है। इसके लिए उसकी जवाबदेही ज़रूरी है। लेख इस विषय पर दूसरे देशों व साथ ही अपने देश में किए जा रहे प्रयासों को बताता है और कहता है कि शिक्षक की जवाबदेही को शिक्षा व समाज के ढाँचे के सन्दर्भ में ही गढ़ा जा सकता है।

हमारी पाठ्यपुस्तकों का एक अहम पन्ना संविधान की प्रस्तावना व स्कूली शिक्षा पर कैलाश कांडपाल के साथ हुई परिचर्चा पर आधारित है। इसे मोअज़्ज़म अली ने संकलित किया है। इस परिचर्चा में कैलाश शिक्षा के उद्देश्य एवं पाठ्यपुस्तकों को संविधान की प्रस्तावना के आलोक में रखते हैं। लेख शिक्षा के उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए वांछित समाज की रचना में स्कूल की भूमिका को विस्तार से रेखांकित करता है।

एन सरिता अपने लेख ***विज्ञान किताबों में और किताबों के बाहर... कुछ अनुभव*** में छठवीं, सातवीं और आठवीं की विज्ञान की किताबों में दी गई विषयवस्तु को पढ़ाने के लिए किस तरह की शिक्षण सामग्री और विधियाँ उपयोग में लाई जा सकती हैं, इस बारे में बात करती हैं। लेखिका

उदाहरणों के ज़रिए बताती हैं कि पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान को बच्चों के परिवेश और आम जीवन से जोड़ना बहुत ज़रूरी है। इससे यह बात भी उभरती है कि सभी बच्चों को समझ के एक स्तर पर मानकर शिक्षण करना उपयुक्त नहीं है।

कक्षा अनुभव में शामिल शिशिर का लेख ***बाल शोध प्रक्रिया, कक्षा अवलोकन : एक अनुभव*** बच्चों द्वारा किए गए कार्य पर आधारित है। लेख, बच्चों की भागीदारी बढ़ाकर कैसे शिक्षण कार्य कर सकते हैं, इसका एक उदाहरण है। इसमें उन्हें स्वयं करके सीखने, प्रश्न पूछने और खोजबीन करने के अवसर निर्मित करने के उदाहरण हैं। लेखक कहते हैं किसी भी अवधारणा को स्वयं करके सीखने का मौक़ा मिलने पर बच्चे उसमें रुचि लेते हैं और अवधारणा की पुख़्ता समझ बनती है।

कक्षा अनुभव पर एक अन्य लेख ***...और बालेश्वरी आ गई,*** श्रीदेवी ने लिखा है जिसमें बालक-बालिकाओं के लिए आयोजित भाषा शिविर में एक गोंड आदिवासी बालिका से बातचीत का संक्षिप्त विवरण है। इस बातचीत से हम बालिका के नज़रिए से समझ पाते हैं कि सीखने की प्रक्रिया में सीखने वाले को महत्त्वपूर्ण माने जाने के क्या मायने हैं और वे अपनी पाठ्यपुस्तक में किस तरह की विषयवस्तु की अपेक्षा करते हैं?

कमला बाजपेई का लेख ***परिचय से शुरू हुआ सीखने का सफ़र*** सीखने की प्रक्रिया में बच्चों के बीच सहज स्वाभाविक माहौल और घुलने-मिलने को महत्त्वपूर्ण मानता है। लेख कहता है कि इससे बच्चे एक दूसरे की मौलिकता को जान, समझ और स्वीकार कर पाते हैं।

अगला लेख ***शिक्षण अधिगम सामग्री की समझ एवं उपयोग*** बलवन्त सिंह कालाकोटी का है। वे गणित सीखने-सिखाने में उनकी टीएलएम के उपयोग की बदली समझ को रखते हैं और क्षेत्रफल की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए टीएलएम की सहायता से उनके द्वारा अपनाए गए पुराने और नए तरीक़ों का विवरण देते हैं। यह भी बताते हैं कि पुरानी विधियों से सीखने में विद्यार्थियों को किस तरह की समस्या आती थी और नए तरीक़ों से किस तरह समझ बेहतर हुई।

शैक्षिक संवाद : सम्भावनाएँ अपार के लेखक कालू राम शर्मा अपने लेख में जन शिक्षा केन्द्रों पर 'शैक्षिक संवाद' कार्यक्रम को शिक्षकों की तैयारी के महत्त्वपूर्ण अवयव रूप में देखते हैं। इसके अन्तर्गत लेख में शिक्षकों के साथ पक्षियों से जान-पहचान, पेड़-पौधों का अवलोकन, रीडिंग कार्नर का उपयोग जैसी विविधतापूर्ण व सार्थक शैक्षिक गतिविधियाँ कैसे की जाएँ, को करके देखने के अनुभव हैं। शिक्षक की तैयारी के इन प्रयासों में शिक्षकों के अनुभवों को सुनना, उनपर चर्चा करना, और उनके सन्दर्भ और परिस्थितियों को समझना क्यों ज़रूरी है, को भी उभारा गया है।

इस अंक में दीपा पाण्डेय का लेख ***ऑनलाइन शिक्षण : जब समुदाय बना सहभागी,*** महामारी के दौरान बच्चों की शिक्षा को जारी रखने की कोशिशों का वर्णन करता है। लेख बताता है कि उन्हें ऑनलाइन शिक्षण में किस तरह की समस्याओं और परेशानियों का सामना करना पड़ा और ऐसी परिस्थिति में उन्होंने समुदाय को शिक्षण प्रक्रिया में शामिल करने के लिए क्या-क्या प्रयास किए एवं इस पहल से बच्चों का सीखना किस हद तक जारी रह सका।

इस अंक में पुस्तक चर्चा खण्ड के अन्तर्गत 'मुस्कान' संस्था द्वारा प्रकाशित ***पढ़ो रखो श्रृंखला*** की किताबों की चर्चा की गई है। लेखिका नीतू यादव बताती हैं, एकल कहानी की इन छोटी-छोटी, कम दाम की किताबों में वंचित समुदाय की जीवन परिस्थितियों और अनुभवों की यथार्थपरक प्रस्तुति है। लेख इस ओर भी इशारा करता है कि एक अलग दृष्टिकोण से लिखी गई इन किताबों की कहानियाँ स्कूल में आने वाले बच्चों और शिक्षकों के लिए क्यों महत्त्वपूर्ण हैं।

इस बार के साक्षात्कार में राजस्थान के लवाणा उच्च प्राथमिक विद्यालय के खेल शिक्षक मनोज हाडा ने खेलों के माध्यम से अपने विद्यालय में सकारात्मक बदलाव की कहानी साझा की है। उनसे यह साक्षात्कार मोहम्मद उमर ने लिया है। बदलाव की कहानी में खेल शिक्षक ने समुदाय और शिक्षकों की भागीदारी से कैसे स्कूल में खेलों के प्रति सकारात्मक माहौल बना, कैसे खेलों में लड़कियों और लड़कों के बराबरी के अवसर बने और कैसे स्कूल बेहतर हुआ, के बारे में बताया गया है।

इस अंक का संवाद 'अच्छा बाल साहित्य क्या है और शिक्षा में इसका सार्थक इस्तेमाल कैसे किया सकता है?' विषय पर आयोजित किया गया था। संवाद में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में बाल साहित्य का उपयोग करने वाले स्कूली शिक्षा व बाल साहित्य के लेखन, सम्पादन व प्रकाशन से जुड़े व्यक्तियों ने अपने विचार व्यक्त किए। सहभागियों ने अच्छे बाल साहित्य के साथ यह भी बताया कि बच्चों के व्यक्तित्व को गढ़ने में बाल साहित्य किस तरह की भूमिका निभाता है और शिक्षा में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका क्यों होनी चाहिए।

जैसा कि आपको पता है ***पाठशाला*** के पाँचवें अंक से हमने इसके स्वरूप में ऐसे बदलाव किए हैं जिनसे यह स्कूल में काम करने वाले लोगों से बेहतर जुड़ाव बना सके। इस अंक में भी यही प्रयास है। इसके लिए आग्रह है कि स्कूल के साथ काम करने वाले अधिक-से-अधिक लोग अपने अनुभवपरक लेख ज़रूर भेजें।

हमने छठवें अंक में कहा था कि अगले अंक में हम पाठकों की प्रतिक्रिया के लिए पाठक चश्मा कॉलम शुरू कर रहे हैं। इस अंक से ***पाठक चश्मा*** शुरू हो गया है। उम्मीद है आपको यह पसन्द आएगा। हर अंक में इस कॉलम के लिए हमें पाठकों की समालोचनात्मक टिप्पणियों की प्रतीक्षा रहेगी।

सम्पादक मण्डल

विज्ञान शिक्षण
करके सीखना और शिक्षक की भूमिका

हुमा नाज़ सिद्दीकी

यह लेख स्कूल में विज्ञान शिक्षिका और बच्चों के साथ बालशोध पर काम करने के दौरान हुए अनुभवों को रखने के साथ-साथ बेहतर तरीक़े से विज्ञान समझने के लिए स्कूल में बच्चों को विभिन्न अवसरों के मिलने की पैरवी करता है। साथ ही विज्ञान शिक्षण के तहत बच्चों में बेहतर समझ बनाने के लिए, करके सीखने पर ज़ोर देता है। सं.

विज्ञान हमेशा रोचक और खोजी प्रवृत्ति का रहा है मगर जब विज्ञान की अवधारणाओं और उन्हें जाँचने के प्रयोगों को कक्षा में बच्चों तक ले जाने की बात हो, तो कहीं-न-कहीं पूरी प्रक्रिया पाठ्यपुस्तकों के इर्द-गिर्द नज़र आती है। कक्षा अवलोकन के दौरान अकसर देखने-सुनने को मिलता है कि प्रयोगशाला या उपकरणों के अभाव में शिक्षण महज़ पाठ्यपुस्तक से ही सम्भव है। ऐसी स्थिति में यह समझना लाज़मी है कि बतौर विज्ञान शिक्षक आख़िर हम विज्ञान और उसकी प्रकृति से क्या समझते हैं?

हम छोटे बच्चों को देखी गई हर वस्तु पर सवाल करते पाते हैं मगर स्कूल आने के बाद और जैसे-जैसे वे उच्च कक्षाओं की ओर बढ़ते हैं, सवाल करने की उनकी प्रवृत्ति कम होती नज़र आती है और तथ्यों को जानकारी के रूप में बिना किसी तर्क के अपना लिया जाने लगता है। यदि कक्षा-कक्ष में छोटी-छोटी प्रक्रियाओं जैसे– बच्चों द्वारा सवाल करना, अपने स्तर पर जवाब ढूँढ़ना, अपने परिवेश का गहराई से अवलोकन करना आदि शामिल करें तो बच्चों को बेहतर तरीक़े से विज्ञान सीखने की ओर अग्रसर कर सकते हैं। उपरोक्त बातों के सन्दर्भ में लेख विज्ञान की विभिन्न अवधारणाओं को ख़ुद करके सीखने-समझने से हुए बच्चों के अनुभवों को रखता है।

काम की शुरुआत एवं विषय चयन

यह शोध माध्यमिक कन्या स्कूल, कुरूद, जिला धमतरी के बच्चों द्वारा किया गया। बात जनवरी की है। विज्ञान दिवस में क्या कर रहे हैं पूछने पर जवाब आया कि ऐसा कोई दिन स्कूल में मनाया ही नहीं गया और इसके बारे में बच्चों को पता भी नहीं है। फिर तय हुआ कि यह दिन बच्चों के साथ मिलकर मनाया जाए, जिसमें बच्चों को विज्ञान के अन्तर्गत अलग-अलग थीम पर खोजबीन करके जानने-समझने और अन्त में किए गए कार्य को सहपाठियों और शिक्षकों के समक्ष रखना होगा। इसे हम बालशोध मेले की तरह देख रहे थे। शुरुआत में थोड़ी मुश्किलें आईं और अन्त में शिक्षिका इस पूरी प्रक्रिया के लिए मान गईं। शिक्षिका के साथ मिलकर हमने कक्षा छठवीं से आठवीं की पाठ्यपुस्तकों से ऐसे विषय चुने जिनपर बच्चों को अपने परिवेश से अधिक-से-अधिक जानने व समझने को मिले और बच्चे स्वयं विषयों पर सवाल-जवाब कर सकें। बच्चों से चर्चा की गई। विषय पर बच्चे और क्या-क्या कर सकते हैं, उन्होंने सुझाया। साथ ही यह चर्चा हुई कि बच्चों को विषय पर काम कैसे करना होगा? सम्बन्धित सवाल क्या होंगे? अवलोकन तालिका किस प्रकार होगी? समयावधि भी बच्चों से बात करके तय की गई, जो कि विषयों के आधार पर अलग-अलग थी।

कक्षा छठवीं से आठवीं की पाठ्यपुस्तकों से शोध की निम्न थीम चुनीं–

- कक्षा छठवीं : हमारे आसपास सूक्ष्म जीवों का संसार, भोजन एवं खाद्य पदार्थ, अवशिष्ट पदार्थ एवं उनका प्रबन्धन और टीकाकरण की ज़रूरत।
- कक्षा सातवीं : हड्डियाँ एवं जोड़, जड़ एवं पत्तियों में रूपान्तरण और लिंग, उम्र एवं वज़न से पल्स रेट की गणना।
- कक्षा आठवीं : बढ़ता जल संकट, जल संरक्षण, सोख़्ता गड्ढे का निर्माण, छत्तीसगढ़ की भाजियाँ और हमारे आसपास औषधीय पेड़-पौधे एवं उनके गुण।

शोध कार्य की शुरुआत

चुनी हुई थीम पर बच्चों को आसपास का अवलोकन करने के साथ लोगों से चर्चा करके विभिन्न नमूने इकट्ठा करना, आँकड़ों का विश्लेषण करना और समुदाय, आँगनवाड़ी, स्वास्थ्य केन्द्र, राइस मिल, मार्केट, अस्पताल आदि का भ्रमण कर जानकारी इकट्ठी करनी थी और नर्सरी का भ्रमण कर खेती के आधुनिक तरीक़ों की समझ बनाना, कुछ विषयों के तहत प्रयोग करना, और अन्त में अपने सम्पूर्ण काम को प्रदर्शित करना था।

बच्चों द्वारा कक्षा के बाहर जाकर कुछ जाँच-पड़ताल, जानकारी व आँकड़े जुटाने का यह पहला अवसर था। विषय-आधारित तय किए गए स्थानों पर बच्चे फ़ील्ड ऑब्ज़रवेशन के लिए गए। लोगों से सवालों पर चर्चा की, विभिन्न स्थानों का अवलोकन किया और हर समूह ने अपनी एक फ़ाइल बनाकर उसमें शुरुआत से की गई सारी गतिविधियों को दर्ज किया। कई बार बच्चे ख़ुद आकर बताते कि पोस्ट ऑफ़िस, बैंक, अस्पताल में फलाँ सदस्य से चर्चा की। इससे उनका आत्मविश्वास भी बढ़ा। मोहल्ले वालों के पूछने पर कि क्या शोध कर रहे हो, बच्चों ने उन्हें अपना काम समझाया। उनके काम को सराहा भी जाता। बच्चों को भी इस कार्य में मज़ा आ रहा था। आसान लगने वाले इस कार्य से वो कई ज़रूरी बातों को जैसे सर्वे, समुदाय से जानकारी इकट्ठा करना, जैसे– बच्चों को अलग-अलग टीके क्यों लगाए जाते हैं, मिट्टी में कौन-सी वस्तुएँ कितने समय में अपघटित होती हैं, को जान और समझ रहे थे, जिन्हें महज़ किताबों में ही पढ़ते थे।

शिक्षक की भूमिका

शोध कार्य के दौरान शिक्षक का काम बच्चों के साथ मिलकर एकत्र किए गए आँकड़ों का विश्लेषण करना, बच्चों को पोस्टर बनवाने में मदद करना और सवाल जवाब पर चर्चा करना था। चीज़ें मुहैया कराने की ज़िम्मेदारी भी धीरे-धीरे शिक्षिका ने ले ली। बच्चों को अपने पोस्टर बनाने का काम सौंपा गया। यह भी तय हुआ कि बच्चे भले ही ऊपर-नीचे या आढ़े-टेढ़े लिखें, मगर वो ही पोस्टर बनाएँगे। इस तरह बच्चों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने की छूट दी गई। शिक्षिका ने भी अपने पैसों से पोस्टर, कलर और अन्य सामान मुहैया कराया। खेती के बारे में जानने के लिए बच्चों को नर्सरी ले जाने के सुझाव पर शिक्षिका साथ जाने को तैयार हो गईं। शिक्षिका का बच्चों के साथ काम को लेकर जुड़ाव इससे साफ़ पता चल रहा था। वर्षा जल संरक्षण मॉडल के लिए एक रिपेयरिंग दुकान में जाकर शिक्षिका पाइप लेकर आईं और बच्चों के साथ मिलकर पूरा मॉडल बनवाया। शिक्षिका और बच्चों के प्रयासों के साथ जो एक और बात अच्छी रही वह थी, इस सम्पूर्ण कार्य में प्रधानाध्यापक का सहयोग। प्रधानाध्यापक ने बच्चों को प्रोत्साहित तो किया ही, कई बार वो ख़ुद भी बच्चों के साथ गतिविधि में शामिल रहे। जैसे– सूक्ष्मदर्शी से जीवों का अवलोकन करना, मैदान का चक्कर लगाकर पल्स रेट रिकॉर्ड करना आदि।

शोध प्रक्रिया में बच्चों का काम एवं उनके अनुभव

बच्चों के लगभग डेढ़ महीने के कार्य को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के दिन बालशोध मेले के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसमें माध्यमिक स्कूल एवं उसी हाई स्कूल के शिक्षकों एवं

विद्यार्थियों के साथ अन्य शिक्षा अधिकारी भी शामिल हुए। बच्चों ने अपने किए काम को सभी के समक्ष निडरता से रखा और उनपर शिक्षकों से सवाल जवाब भी किए। उस एक दिन की सराहना से कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था बीते दिनों बच्चों द्वारा किया गया कार्य और उस आधार पर बनी उनकी समझ। बच्चों ने विषयों पर गहराई से काम किया था। जैसे– कक्षा सातवीं के एक समूह ने अपनी पाठ्यपुस्तक के पाठ 'हड्डियों एवं जोड़' का अध्ययन किया, इंटरनेट की मदद ली और सम्बन्धित वीडियो भी देखे। इस दौरान बच्चों के कई सवाल भी उठे। जैसे– बड़े होने पर हड्डियाँ कम क्यों हो जाती हैं, हड्डियाँ कैसे बनती हैं, कंकाल तंत्र कितनी हड्डियों से बनता है, आदि। बच्चों ने समुदाय के एक डॉक्टर, स्कूल के शिक्षकों और मुझसे भी इसपर चर्चा की (चित्र 1)।
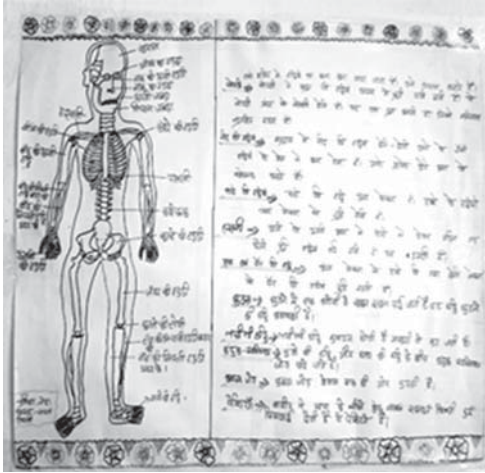
चित्र 1 : हड्डियों एवं जोड़ पर जुटाई गई जानकारी का प्रदर्शन

बच्चों ने कुछ जोड़ को प्रैक्टिकल के तौर पर भी समझने की कोशिश की। इसके लिए उन्होंने बल्ब और नारियल से जोड़ बनाकर देखा। एक अन्य समूह ने हफ़्तों अपने आसपास के विभिन्न पेड़-पौधों का अवलोकन कर उन्हें एकत्र किया, जड़ों व पत्तियों की तुलना की और एकबीजपत्री व द्विबीजपत्री सम्बन्ध को समझा, अवलोकन नोट किए एवं जड़ों व पत्तियों में होने वाले रूपान्तरण को समझने का प्रयास किया।

चित्र 2 : विभिन्न पौधों में जड़ और पत्तियों की संरचना बताते बच्चे

इसके लिए बच्चों ने लगभग 20 विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों को एकत्रित किया (चित्र 2)।

छत्तीसगढ़ में विभिन्न प्रकार की भाजियाँ उगाई और बनाई जाती हैं। इस थीम को लेने के पीछे उद्देश्य था कि बच्चे विभिन्न भाजियों एवं उनके गुणों का पता लगाएँ और अपने परिवेश के समृद्ध खानपान को भी समझें। साथ ही बच्चों ने कृषि तकनीकों और विधियों को भी समझा, जैसे– किस तरह इन भाजियों को उगाया जाता है, किस मौसम में कौन-सी भाजी मिलती है, उनका रखरखाव किस तरह होता है, आदि। बच्चों ने लगभग 50 भाजियों के बारे में जानकारी एकत्र की (चित्र 3 एवं 4)।
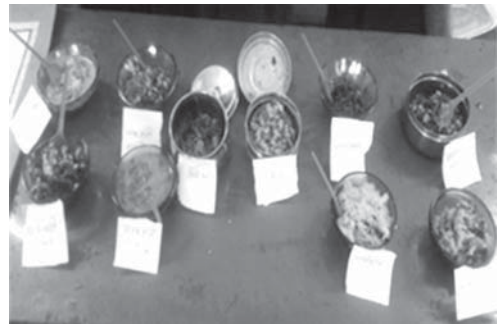
चित्र 3 : बच्चों द्वारा लाई गई विभिन्न भाजियाँ (सब्ज़ियाँ)
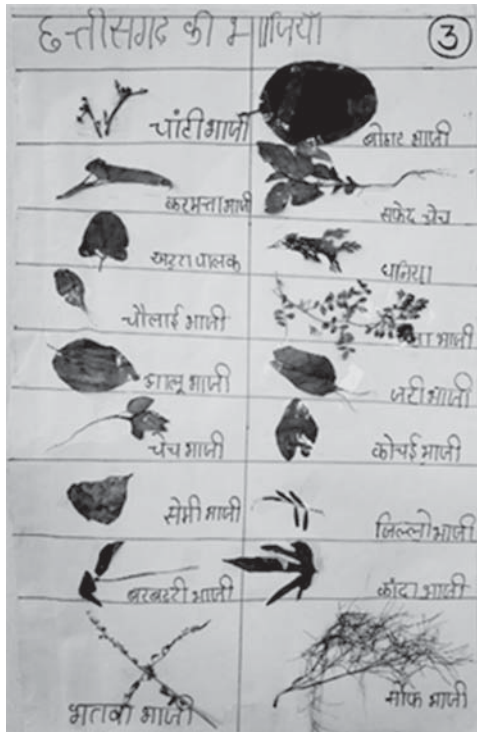
चित्र 4 : बच्चों द्वारा इकट्ठा किए गए विभिन्न भाजियों के नमूने

इसी तरह बच्चों ने स्कूल, मोहल्ले, राइस मिल, पोस्ट ऑफ़िस, नगर पंचायत, अस्पताल, घरों आदि का सर्वे कर वहाँ जल स्रोत, जल की खपत, जल के रखरखाव, जल के दूषित होने के कारणों, जल संरक्षण की विभिन्न विधियों का हम कितना उपयोग करते हैं, आदि जानने-समझने का प्रयास किया। राइस मिल के सोख़्ता गड्ढे को भी देखा और मॉडल के द्वारा बनाने के साथ ही स्कूल में भी सोख़्ता गड्ढा बनाने की प्रक्रिया शुरू की। बच्चों ने यह बात रखी कि गर्मियों में इस क्षेत्र में पानी की बहुत कमी हो जाती है, फिर भी ज़्यादातर स्थानों पर वर्षा जल संरक्षण के कोई उपाय नहीं किए गए थे। लोगों को जानकारी तो थी मगर किसी ने वर्षा जल संरक्षण के लिए पहल नहीं की। बच्चों ने कहा कि राइस मिल के सोख़्ता गड्ढे को देखना उनका पहला अनुभव था, जिसके आधार पर उन्होंने स्कूल में भी सोख़्ता गड्ढा बनाया। (चित्र 5 और 6)।

चित्र 5 : बच्चों द्वारा विभिन्न स्थानों से जल के स्रोत, उपयोग एवं बचाव के तरीक़ों की इकट्ठा की गई जानकारी

सर्वे चार्ट

स्थान	जल स्रोत	उपयोग	जलसंरक्षण योजना
पोस्ट आफिस	नल, ट्यूब वेल	पीने के लिये अन्य क्रियाकलाप करते	पानी की कमी सोकता गड्ढा नही है।
नगर पंचायत	ट्यूब वेल	पीने के लिये हाथ धोने व अन्य क्रिया-कलाप के लिये करते है	सोकता गड्ढा है। [illegible] पानी को पेड़ में डालते है। भविष्य के लिए पानी बचाना है।
राईस मिल	बोर	धान डुबाने व अन्य क्रिया-कलाप के लिये करते है।	पौधो में [illegible] पीने के लिये क्रिया जाता है। सोकता गड्ढा है।
हॉस्पिटल	ट्यूब वेल	पीने के लिये, पौधो में डाला, धोने के लिये व अन्य क्रिया-कलाप के लिये करते है।	यहाँ 7 सोख्ता गड्ढा है। नाली के द्वारा पानी को बाहर निकालते है।

चित्र 6 : विभिन्न स्थलों पर जल संरक्षण के तरीक़ों को जानने के लिए किया गया सर्वे एवं जानकारी

बच्चों ने विभिन्न उम्र की स्त्रियों और पुरुषों के पल्स रेट का अध्ययन किया और जानने की कोशिश की कि उम्र, वज़न व लिंग का हमारी पल्स रेट पर क्या असर पड़ता है? बच्चों ने

आराम की स्थिति (resting condition) और दौड़ने के एक मिनट बाद पल्स रेट रिकॉर्ड की। यह बेहद रोचक था। उन्होंने स्कूल के सभी शिक्षकों के साथ-साथ अलग-अलग उम्र के लोगों की भी पल्स रेट रिकॉर्ड की जो 65-100 प्रति मिनट थी। अब इसपर सवाल भी थे कि किताबों में 70 प्रति मिनट पढ़ते हैं, पर जब करके देखा तो हर व्यक्ति की पल्स रेट अलग-अलग थी और इसपर चर्चा की गई कि किस सन्दर्भ में यह 70-72 कही जाती है। बच्चों का निष्कर्ष था कि उम्र के हिसाब से तो पल्स रेट बढ़ रही है किन्तु लिंग से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है (चित्र 7 और 8)।

सर्वे के माध्यम से बच्चों ने जाना कि जन्म के बाद बच्चों को कौन-कौन से टीके लगाए जाते हैं और जच्चा-बच्चा कार्ड की भी जाँच की। जच्चा-बच्चा कार्ड और आँगनवाड़ी सुपरवाइजर से जानकारी लेने के बाद बच्चों को पता चला कि टीके क्यों लगाए जाते हैं, बीसीजी क्या होता है, आदि। यह सवाल भी सामने आया कि जो टीके सरकारी अस्पतालों में मुफ़्त में नहीं मिलते उनके लिए क्या प्रावधान होते हैं? रोग प्रतिरोधक क्षमता के बारे में जानने के लिए बच्चों ने आँगनवाड़ी कार्यकर्ता और हम सबसे चर्चा की एवं तमाम जानकारियों को पोस्टर के माध्यम से प्रदर्शित किया (चित्र 9)।

चित्र 7 : शिक्षकों की पल्स रेट रिकॉर्ड करते बच्चे

	टीके का विवरण	रोग का नाम
जन्म लेते ही	बी.सी.जी. का टीका	टी.बी.
डेढ़ महीने में	डी.पी.टी. का टीका एवम् पोलियो खुराक-1	काली खाँसी टिटनेस पोलियो
ढाई महीने में	डी.पी.टी. का टीका एवम् पोलियो खुराक-2	डिप्थीरिया, काली [illegible] टिटनेस, पोलियो
साढ़े तीन महीने में	डी.पी.टी. का टीका एवम् पोलियो खुराक-3	डिप्थीरिया काली खाँसी टिटनेस पोलियो
नौवे महीने में	खसरे का टीका	छोटीमाता, खसरा
डेढ़ साल में	बूस्टर टीका-1	पोलियो
पाँच साल में	बूस्टर टीका-2	[illegible]

चित्र 9 : आँगनवाड़ी एवं स्वास्थ्य केन्द्र में जाकर बच्चों को लगने वाले टीकों की जानकारी का प्रस्तुतीकरण

चित्र 8 : अलग-अलग स्त्री-पुरुषों की पल्स रेट, वज़न और उम्र

चित्र 10 : विभिन्न खाद्य पदार्थों में पोषक तत्त्वों की उपस्थिति की जाँच एवं परिणाम का प्रदर्शन करते बच्चे

बच्चों ने विभिन्न खाद्य सामग्रियों का परीक्षण कर इनमें मौजूद पोषक तत्त्वों को समझने की कोशिश की (चित्र 10)।

एक समूह ने सूक्ष्मदर्शी की सहायता से विभिन्न स्रोतों से इकट्ठा किए गए पानी में सूक्ष्म जीवों का अवलोकन किया ताकि जिन्हें वो किताबों में देखते हैं, अपनी आँखों से भी देखकर समझ पाएँ। बच्चों ने स्लाइड बनाना और सूक्ष्मदर्शी को सेट करना भी सीखा। जो भी उन्हें दिखाई देता उसे किताब के चित्रों से मिलाते, संरचनाएँ बनाते और पहचान करने की कोशिश करते। कुछ जीवों को फ़ोटो और पोस्टर के माध्यम से प्रस्तुत किया (चित्र 11)।
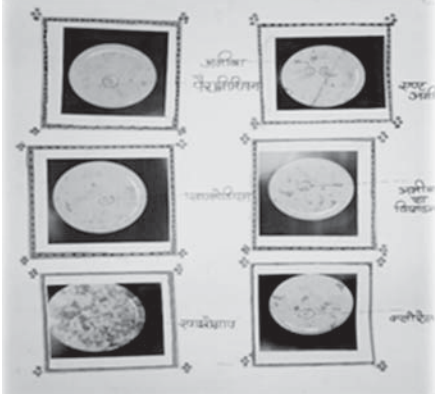
चित्र 11 : बच्चों द्वारा सूक्ष्मदर्शी से अवलोकन किए गए सूक्ष्म जीवों के नमूने
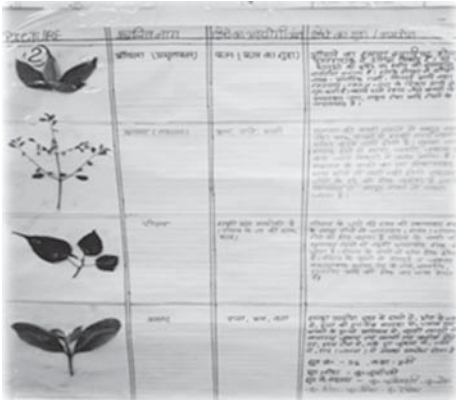
चित्र 12 : बच्चों द्वारा एकत्र किए गए विभिन्न औषधीय पौधों का एक नमूना

इसी प्रकार बच्चे अपने आसपास कई औषधीय पेड़-पौधों को देखते हैं जिनका अध्ययन करने के लिए बच्चों ने अपने गाँव का भ्रमण कर लोगों से बात की, विभिन्न पौधे इकट्ठे किए और उनके औषधीय गुणों को जानने का प्रयास किया। ऐसे लगभग 50 पौधों की सूची बनाई गई (चित्र 12)।

बच्चों ने अपने आसपास के स्थानों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों एवं उनके प्रबन्धन को समझा और समस्याओं पर लोगों से चर्चा भी की। विभिन्न पदार्थों जैसे– काग़ज़, लोहे की कील, भाजियों के छिलके, प्लास्टिक, काग़ज़ के टुकड़े, लकड़ियाँ आदि ज़मीन में गाड़कर उनमें होने वाले परिवर्तन और उनके विघटन को नोट कर प्रदर्शित किया। उनके तथ्य रोचक थे कि एक हफ़्ते में कोई भी वस्तु पूरी तरह विघटित नहीं हुई और प्लास्टिक व काँच तो ज्यों के त्यों ही थे। लोहे की कील में ज़रूर जंग लगना शुरू हो गई थी और काग़ज़ एवं सब्ज़ियों के छिलके कुछ हद तक ही गले, जबकि किताब में पढ़ते हैं कि यह आसानी से गल जाते हैं (चित्र 13)। इसपर बच्चों की शिक्षिका के साथ विस्तार से चर्चा हुई।

इस प्रकार उनके प्रयोग और अवलोकन के अलग-अलग निष्कर्ष थे।

चित्र 13 : ज़मीन में गाड़ी गई वस्तुओं पर अपने निष्कर्ष शिक्षकों को बताना

विज्ञान रुचिपूर्ण तरीक़े से करना व सीखना

उपरोक्त पूरी प्रक्रिया को देखें तो हम समझ पाएँगे कि बच्चे अपने परिवेश से बहुत कुछ सीख सकते हैं। विभिन्न अवधारणाएँ और तथ्य, जो पाठ्यपुस्तकों में दर्ज हैं, जाँच पड़ताल करके समझे जा सकते हैं। बच्चों के उपरोक्त कार्यों का संज्ञान लें तो हम समझ सकते हैं कि हर बच्चा अपने स्तर पर एक वैज्ञानिक है। भले ही अपने काम, एकत्र की गई जानकारी और आँकड़ों को अभी वे वैज्ञानिक शब्दावली में न रख पाएँ, मगर उनमें बेहतर शोध करने की पूरी क्षमता होती है। वे किसी समस्या को गहराई से सोच व समझ सकते हैं, उसके अलग-अलग हल खोजने की कोशिश करते हैं, जानकारियों और तथ्यों पर अपने अवलोकन एवं अनुभवों के आधार पर तर्क व सवाल जवाब कर सकते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सम्पूर्ण कार्य में रुचि और समझ से बच्चों में आत्मविश्वास जागता है। कई बार बच्चे अपने परिवेश में स्वतंत्र रूप से बहुत कुछ देख, सुन व समझ रहे होते हैं। हो सकता है उनके द्वारा बताई जाने वाली बातें हमारे संज्ञान में पहले से हों मगर बच्चों के लिए वो एक खोज जैसा ही है। बच्चों की इसी खोजी प्रवृत्ति को हमारी कक्षा-कक्ष प्रक्रियाओं में बढ़ावा देने की ज़रूरत है, ताकि जिस विज्ञान को वो पढ़ रहे हैं उसे अपने परिवेश और अनुभव से समझ पाएँ। हालाँकि स्कूल स्तर पर शिक्षकों के सामने कई चुनौतियाँ भी आती हैं जैसे— पाठ्यक्रम को निर्धारित समय में पूरा करने का दबाव और शिक्षण के अलावा अन्य कार्यों की ज़िम्मेदारी। ऐसे में शिक्षक की भूमिका अहम हो जाती है जो बच्चों को खोजने और समझने के लिए प्रेरित करे। इस सम्पूर्ण कार्य में धीरे-धीरे उन बच्चों ने भी भाग लेना शुरू किया जिन्होंने शुरुआत में कार्य करने में कोई रुचि नहीं दिखाई थी। इस दौरान सबने अपने परिवार, पसन्द और समस्याओं के बारे में कुछ निजी अनुभव भी बाँटे। यहाँ बच्चों ने ख़ुद करके जो सीखा शायद उन्हें हमेशा याद रहे उनके द्वारा खोजे गए जवाबों के रूप में।

हुमा नाज़ सिद्दीकी सात सालों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही हैं। आपने रुंगटा कॉलेज ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, भिलाई में सहायक प्रोफ़ेसर के रूप में विद्यार्थियों को बायोटेक्नोलॉजी पढ़ाया है। विज्ञान लेख लिखती हैं और कई शोध पत्र भी लिखे हैं। तीन साल से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में विज्ञान, भाषा और गणित विषय में काम कर रही हैं।

सम्पर्क : huma.siddiqui@azimpremjifoundation.org

भाषा शिक्षण और भाषाई खेल

कुसुमलता

बच्चों के जीवन और शिक्षा में खेलों का महत्त्व जगज़ाहिर है। कई खेल गाहे-बगाहे शुरुआती कक्षाओं के बच्चों में भाषाई कौशलों के विकास में मददगार होते हैं। प्रस्तुत लेख में कुछ ऐसे ही पारम्परिक और ईज़ाद किए खेलों के उपयोग से भाषा शिक्षण को रुचिकर, सहभागी और अर्थपूर्ण बनाने के तरीक़े सुझाए गए हैं। भाषाई खेलों के ज़रिए बच्चों में बनने वाली भाषा की समझ व कौशलों के विकास की चर्चा की गई है, यह भी बताया गया है कि भाषाई खेल कैसे बच्चों से आत्मीय रिश्ता बनाने में मदद करते हैं व उनमें कल्पनाशीलता, तर्क और उत्सुकता का भाव पैदा करते हैं। सं.

बच्चा जब पहली बार विद्यालय आता है, अपनी भाषा, अनुभव और दुनिया को देखने का अपना नज़रिया साथ लेकर आता है। यहाँ शिक्षक के लिए घर-परिवार एवं परिवेश के अनुभव संसार को विद्यालय की प्रक्रिया से जोड़ना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। बच्चा शब्दों के अर्थ और प्रभाव को जानता है। केवल चिह्न और उससे जुड़ी ध्वनियाँ ही उसके लिए अमूर्त होती हैं। इसलिए पढ़ना सिखाने की प्रक्रिया में यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि बच्चों के साथ अर्थपूर्ण सामग्री से पढ़ने की प्रक्रिया आरम्भ की जाए। भाषा सीखने-सिखाने की इस प्रक्रिया के मूल में यह अवधारणा भी है कि बच्चे अपनी समझ और ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं। स्वयं के अनुभवों और आवश्यकताओं से सीखने के लिए ऐसा वातावरण मिलना ज़रूरी है जहाँ वे बिना रोक-टोक के अपनी इच्छा व रुचि के अनुसार सीख सकें। सीखने-सिखाने के स्वतंत्र और दिलचस्प माहौल कक्षा में हों, इसके लिए मैंने भाषा शिक्षण में भाषाई खेलों को शामिल करने की योजना बनाई। भाषा सिखाने के लिए कौन-कौन से भाषाई खेल हो सकते हैं जो बच्चों को चुनौतीपूर्ण लगें और उन्हें इनमें मज़ा भी आए, इसपर सोचना शुरू किया। साथ ही ऐसी सामग्री भी बनाई जो उनके सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का हिस्सा बने। इसके कुछ उदाहरण इस लेख में दिए गए हैं।

विद्यालय में आने वाले बच्चों की पृष्ठभूमि

प्राथमिक विद्यालय अजबपुरकलां प्रथम में 132 बच्चे हैं। अधिकांश पहली पीढ़ी के विद्यार्थी हैं। कुछेक को छोड़कर सभी बच्चे झुग्गी बस्तियों में रहते हैं और निम्न आय वर्ग से आते हैं। बच्चों के माता-पिता मज़दूरी और घरेलू काम करते हैं व परिवारों की आर्थिक स्थिति कमज़ोर है। ये परिवार अपनी रोज़ी-रोटी के लिए ही यहाँ पर रहते हैं। इन परिवारों को जहाँ काम मिलता है वहाँ अपना परिवार लेकर चले जाते हैं। यही कारण है कि इनके बच्चों की नियमित उपस्थिति विद्यालय में नहीं रह पाती है और इन बच्चों के घर पर भी पढ़ाई का माहौल नहीं है। विद्यालय एकमात्र जगह है जहाँ उन्हें शिक्षा के साथ-साथ अन्य सामाजिक, सांस्कृतिक आयामों से रू-ब-रू कराना आवश्यक हो जाता है। स्कूली शिक्षा का अर्थ महज़ विषयों का ज्ञान होता भी नहीं, स्कूल तो बच्चे के सर्वांगीण विकास की जगह है।

स्कूल की यह ज़िम्मेदारी हाशियाकृत समुदाय के स्कूली शिक्षा में शामिल होने वाले परिवारों की पहली पीढ़ी के बच्चों के प्रति और ज़्यादा हो जाती है। कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त खेल की घण्टी, सुबह की सभा, प्रतिभा दिवस, मिड-डे मील सहित हर वो समय जब बच्चा स्कूल में है, हम उसे बेहतर माहौल और विविध चीज़ों को जानने समझने के अवसर देते हैं।

ऐसे ही कुछ अवसर बनाने की दिशा में, मैंने भाषा सिखाने के लिए कई खेल बच्चों के साथ किए। मैं इन खेलों के बारे में व बच्चों पर इनके असर के बारे में कुछ बातें कहूँगी।

खेल गतिविधियाँ

पर्ची का खेल

यह खेल कक्षा चार व पाँच के बच्चों के साथ करती हूँ। समझकर पढ़ने के लिए यह खेल काफ़ी उपयोगी है। इस खेल की तैयारी के लिए मैंने बहुत सारी पर्चियाँ बनाईं। पर्चियों में एक-एक वाक्य लिखा और उनके साथ विराम चिह्नों का प्रयोग किया, ताकि बच्चे विराम चिह्नों की अहमियत को समझें और उचित हाव-भाव, आरोह-अवरोह के साथ पढ़ सकें। यह भी इंगित करते थे कि वाक्य किस हाव-भाव के साथ पढ़कर सुनाना है। इन वाक्यों के नीचे कुछ निर्देशात्मक शब्द लिखे। जैसे एक पर्ची में लिखा कि आज तो बहुत देर हो गई, मयंक अभी तक घर नहीं लौटा। इस वाक्य के नीचे मैंने लिखा– चिन्तित / परेशान होते हुए। दूसरी पर्ची में लिखा कि माँ! कोई आया है, और इस वाक्य के नीचे लिखा– ऊँचे स्वर में। तीसरी पर्ची में लिखा कि अरे! यह चीनी किसने गिरा दी? और वाक्य के नीचे लिखा– ग़ुस्से में।

- अगले दिन कक्षा में एक छोटी-सी मटकी में वो सभी पर्चियाँ डाल दीं। खेल शुरू होने से पहले खेल के लिए बच्चों को आवश्यक निर्देश दिए। इन निर्देशों में बच्चों से कहा गया कि जिसका नाम लिया जाएगा वह दौड़कर आगे मेज़ के पास आएगा, एक पर्ची निकालेगा और दिए गए निर्देशानुसार ज़ोर से पढ़ेगा।

- शुरू में बच्चे थोड़ा झिझक रहे थे, फिर मैंने ही दो पर्चियों से खेल खेला और बच्चों को वाक्य पढ़कर सुनाए। धीरे-धीरे बच्चे आगे आकर वाक्य पढ़ने लगे। खेल शुरू हुआ और बच्चों ने अलग-अलग अन्दाज़ में पर्चियों पर लिखे वाक्य को पढ़ना शुरू किया। थोड़ी देर में ही कक्षा का वातावरण बदल गया। शुरू में बच्चों को जो झिझक हो रही थी वह ख़त्म हो गई। बच्चे रौ में आ गए और उन्हें मज़ा आने लगा।

- साधारणतया बच्चे किताब पढ़ते समय विराम चिह्नों का प्रयोग नहीं करते हैं। पढ़ते समय अधिकतर बच्चे एक साधारण-सी लय में पढ़ते चले जाते हैं। आवाज़ का उचित हाव-भाव, ठहराव, जोश, उत्तेजना, उत्साह– ये सब धाराप्रवाह पठन में बहुत आवश्यक होते हैं, ऐसा मेरा मानना है। तब पढ़कर सुनना-सुनाना बहुत आनन्द देता है। धाराप्रवाह पढ़ने की गतिविधि में ये पर्ची खेल बहुत सहायक रहा।

- इसी प्रकार, दूसरी बार भी पर्चियों को वाक्य एवं निर्देश लिखकर मोड़ दिया और सभी पर्चियाँ एक मटके में डाल दीं। निर्देशों में– हँसकर, दुखी होकर, चिढ़कर, ख़ुशी से झूमकर, आँखें तरेरकर, अनुरोध करते हुए, आज्ञा देते हुए आदि शब्द लिखे। मैं पढ़ते समय उनमें होने वाले बदलावों को अनुभव कर रही थी। बीच-बीच में बच्चे ही बच्चों की मदद कर रहे थे। इस क्रिया से कक्षा में एक जोशीला वातावरण निर्मित हो

गया और सभी को बहुत मज़ा आ रहा था। मैं भी बच्चों के साथ बराबर खेल रही थी और जो पर्ची मेरे हिस्से में आती, मैं उसी अन्दाज़ में पढ़ती।

- इस गतिविधि के बाद मैंने कहानियों को भी अलग-अलग वाक्यों में लिखकर क्रम से पर्चियाँ बनाईं। उनके पीछे क्रम से पढ़ने हेतु नम्बर भी डाल दिए, यथा– 1, 2, 3, ..., और वाक्य के भाव निर्देश रूप में नीचे लिख दिए। यह प्रयोग कुछ अलग ही था। कहानी का क्रम धीरे-धीरे बन रहा था और बच्चे सामूहिक रूप से उचित आरोह-अवरोह, लय और हाव-भाव के साथ कहानी पढ़ पा रहे थे। यह खेल कक्षा 4 में एक सप्ताह तक अलग-अलग कहानियाँ लेकर खिलवाया।

- एक सप्ताह बाद जब मैंने आकलन किया तो 20 में से 15 बच्चे शानदार तरीक़े से पढ़ पा रहे थे। पाँच बच्चे वो थे जो अधिक अनुपस्थिति आदि के कारण पढ़ना सीखने की प्रक्रिया में थे। वे बड़े शब्दों को अटककर पढ़ पा रहे थे। पर एक बात अच्छी हुई कि ये पाँच बच्चे भी उसके बाद कक्षा में नियमित तौर पर आने लगे। अब कक्षा में बाक़ी बच्चे उनके साथ बीच-बीच में पर्ची का खेल, खेल रहे होते हैं। एक माह बाद जब आकलन किया तो ये बच्चे भी बहुत अच्छी तरह पढ़ पा रहे थे।

यदि शिक्षक बच्चों के स्तर व रुचि के अनुसार पढ़ने के वाक्य व निर्देश बनाएँ तो यह भाषा खेल बहुत उपयोगी है।

इस खेल से बच्चों में सभी के सामने अपने-आप को अभिव्यक्त करने की हिचक दूर हुई, भरपूर आत्मविश्वास के साथ अपनी बात को रखने का साहस भी आया। यह भी देखने में आया कि धीरे-धीरे वे विराम चिह्नों के उचित प्रयोग के साथ-साथ उचित हाव-भाव, आरोह-अवरोह के साथ पढ़कर अपनी बात रखने लगे और सीखे गए विराम चिह्नों का उपयोग अपने लिखने में भी करने लगे।

अन्त्याक्षरी का खेल

यह सामान्य तौर पर खेला जाने वाला खेल है। जैसा कि नाम से ही पता चलता है, अन्त्याक्षरी अर्थात आख़िरी अक्षर से शुरू होने वाला खेल। यह बहुत पुराना खेल है जिसे हमने बचपन में बहुत आनन्द के साथ खेला है। इस खेल को जीतने के लिए कैसे हम फ़िल्मी गीत और कविताओं को याद करते थे, सोचते थे और कई बार स्वयं ही कल्पना करके गीत-कविता बना लेते थे। यानी हम सोच रहे होते थे और गढ़ रहे होते थे। उत्साह से भरे होते थे और ख़ूब मज़े करते थे। इसी उत्साह व आनन्द की सोच को शामिल करते हुए मैंने शिक्षण में सीखने-सिखाने के खेल के रूप में इसे शामिल करने का सोचा। इस खेल को मैंने कक्षा 3, 4 और 5 में भाषा शिक्षण में शामिल किया। इसमें एक कविताओं की अन्त्याक्षरी थी, जिससे बच्चों को बहुत-सी कविताएँ, दोहे, श्लोक आदि याद हुए और इसका परिणाम यह रहा कि बच्चे राज्यस्तरीय अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता में भी प्रतिभाग कर पाए हैं।

इसी अन्त्याक्षरी को हिन्दी भाषा के व्याकरण शिक्षण में प्रयोग किया तो परिणाम बहुत उत्साहजनक रहे। सबसे पहले संज्ञा को स्पष्ट करने के लिए अन्त्याक्षरी का सहारा लिया। पहले दिन हमने नामों की अन्त्याक्षरी खेलने का प्रस्ताव

कक्षा में रखा। नामों में भी वर्गीकरण कर दिया। पहला राउण्ड (फेरा) जानवरों (पालतू एवं जंगली) के नाम, दूसरा फेरा मनुष्यों के नाम, इसी क्रम में अगले दिन शहरों के नाम, ज़िलों के नाम, राजधानी के नाम, प्रदेशों-देशों के नाम। उसके अगले दिन नदियों, पहाड़ों और प्रसिद्ध इमारतों के नाम, इसके बाद वस्तुओं के नाम से अन्त्याक्षरी खेली। इस प्रकार, जब हमने इन सारे नामों की अन्त्याक्षरी एक सप्ताह तक प्रतिदिन क्रम से खेली तो बच्चों ने बहुत उत्साह दिखाया। एक दिन पहले ही बता दिया जाता कि कल कौन-सी अन्त्याक्षरी खेलनी है। बच्चे प्रत्येक अक्षर से वो नाम ढूँढ़कर लाने की कोशिश करते। इस क्रम में बच्चों ने देशों, राजधानियों, शहरों, गाँवों, ज़िलों आदि के नाम भी याद कर लिए। यानी यहाँ हमारा पर्यावरण विषय भी साथ-साथ चल रहा था। अब ये समझाना आसान हो रहा था कि ये जो सब नाम हैं इन्हें ही संज्ञा कहते हैं। कक्षा 4 और 5 को तो संज्ञा के भेद भी इसी खेल के माध्यम से समझ आ गए, और अब बच्चे संज्ञा सम्बन्धी प्रश्नों को भी हल कर पा रहे थे।

यह प्रक्रिया आनन्द के साथ-साथ कई कौशलों को विकसित कर रही थी। नामों की अन्त्याक्षरी के साथ-साथ विशेषण और क्रिया, आदि शब्दों की अन्त्याक्षरी भी खेली गई। बच्चे हल्के-फुल्के माहौल में न केवल नए-नए शब्द एक दूसरे से सीखते हैं, बल्कि वे ख़ुद नए शब्द गढ़ने भी लगते हैं। अलग-अलग तरह की अन्त्याक्षरी करते समय शब्दों के विभिन्न वर्गों से भी परिचित होते हैं और इस तरह भाषा के व्याकरणीय पहलुओं को भी सीख जाते हैं। हम देख सकते हैं इस खेल से बच्चों के शब्द भण्डार में वृद्धि होती है। वे आत्मविश्वास से लबरेज़ होते हैं। रचनात्मकता, तर्क एवं कल्पनाशीलता का विकास होता है।

कहानी का खेल

एक और खेल कहानी बनाने का है जो बच्चों को धीरे-धीरे आकर्षित करने लगता है और कई तरह की क्षमताओं के विकास का मौक़ा देता है। इस खेल को मैं चौथी और पाँचवीं कक्षा के बच्चों के साथ करती हूँ। इसके पीछे कारण यह होता है कि बच्चे लिखना सीख चुके होते हैं। कहानी खेल को कई तरीक़ों से बच्चों के साथ खेलती हूँ। इसमें एक बच्चा वाक्य बनाने की प्रक्रिया में स्वयं मन से एक वाक्य बनाकर बोलता है और दूसरा बच्चा उसके आगे जोड़ता चला जाता है। यह क्रम चलता रहता है और अन्तिम बच्चे तक आते-आते एक कहानी बन जाती है। इसके बाद कक्षानुरूप बच्चों को अपने तरीक़े से अभिव्यक्त करने के लिए कहती हूँ। इस दौरान बच्चे सोचने लगते हैं कि उन्हें क्या जोड़ना है। इस प्रक्रिया में सभी बच्चों की भागीदारी हो जाती है। दूसरी प्रक्रिया में एक छोटी कहानी के वाक्यों के हिस्से कर बच्चों में बाँट देती हूँ और आपस में बातचीत कर इन हिस्सों से कहानी बनाने को कहती हूँ। बच्चे ख़ूब अच्छे-से यह काम करते हैं। तीसरी प्रक्रिया में किसी दिन बच्चों के बीच एक कहानी बोलती हूँ। आधी कहानी सुनाकर बच्चों से कहती हूँ कि कहानी तो अधूरी रह गई अब आप पूरा करो।

नए शब्दों से परिचय होने के साथ-साथ इस खेल से बच्चों में तर्क और कल्पनाशीलता का विकास होता है। बच्चों में समूह भावना से कार्य करने की आदत भी विकसित होती है।

उत्तर खोजो खेल

एक और खेल जो कुछ अलग तरह का है, यह संकेतों के आधार पर खज़ाने के रूप में उत्तर खोजने का है। यह खेल मैं कक्षा तीन के

बच्चों के साथ करती हूँ। बच्चों के समूह बनाकर प्रत्येक समूह को बच्चों की संख्या के अनुसार प्रश्न देती हूँ। इन प्रश्नों के उत्तर स्कूल में, कक्षा के अन्दर, खेल के मैदान आदि अलग-अलग जगहों पर छुपा देती हूँ। और बच्चों को इनके उत्तर खोजने को कहती हूँ।

प्रश्नों पर उत्तर के कुछ हिन्ट दे देती हूँ ताकि बच्चों को मदद मिल पाए। जो सबसे अधिक प्रश्नों के उत्तर खोजकर लाता है उसके लिए समूह तालियाँ बजाता है। इस खेल से होने वाले फ़ायदे इस प्रकार हैं :

1. बच्चों की खोज प्रवृत्ति बढ़ती है।

2. पाठ पढ़ाने के बाद प्रश्न सीधे न करके ऐसे पूछने से वो नीरस प्रक्रिया को सरस रूप में लेते हैं।

3. प्रश्नों के साथ दिए गए हिन्ट भी बच्चे के विकास में सहायक होते हैं जैसे— कक्षा से उत्तर दिशा की तरफ़ 12 क़दम सीधे बढ़ो, फिर 3 क़दम बाएँ और उत्तर ढूँढ़ो। इस प्रक्रिया में दिशाएँ, दायाँ एवं बायाँ और क़दमों का गिनना शामिल हैं जिनसे बच्चे वाक़िफ़ होते हैं।

4. कुछ बच्चों के जोड़े बनाए जाते हैं और वे एक दूसरे से सलाह मशविरा करते हुए उत्तर की खोज करते हैं।

5. चूँकि बच्चे एक प्रक्रिया के तहत रुचिपूर्ण ढंग से पाठ पढ़ने के बाद पहले प्रश्न को समझते हैं फिर उसके उत्तर को खोजते हैं, तो प्रश्न और उत्तर दोनों से उनकी दोस्ती हो जाती है। सीखने की इस प्रक्रिया में सीखने का आनन्द सुरक्षित रहता है।

ज़ाहिर है कि यह खेल निर्देश समझने व उनके अनुसार कार्य करने की राह में मददगार होता है। कक्षा की स्थिति के अनुसार निर्देशों में दिशा एवं अन्य पहलू जोड़ सकते हैं जिससे बच्चे उन धारणाओं से अन्तःक्रिया कर सकें।

लूडो खेल

हमारे (मेरे व बच्चों के) लिए आकलन अकसर बोरिंग व थकाने वाला काम हो जाता है। इसलिए कभी-कभी आकलन के लिए मैं लूडो खेलती हूँ।

इस खेल को मैं कक्षा पाँच के साथ खेलती हूँ। वैसे यह खेल किसी भी कक्षा के बच्चों के साथ किसी भी विषय के प्रश्नों के साथ खेला जा सकता है। इसमें गत्तों के टुकड़ों की मदद से लूडो बनाती हूँ। इनमें पाठ से सम्बन्धित और व्याकरणीय सम्बोध के प्रश्न भी होते हैं। इस खेल को बच्चे समूह में खेलते हैं। मैं अधिकतम आठ बच्चों को एक बार में शामिल करती हूँ। एक साइड में दो-दो बच्चे रहते हैं और खेल में जवाब ढूँढ़ने में एक दूसरे की मदद भी करते हैं। जीतने के लिए घर से तैयारी करके आते हैं। डायस में 6 आने पर गोटी खुलती है और डायस पर जितनी गिनती आती है उतने अंक आगे बढ़ने से पहले डिब्बे से पर्चा निकालकर लिखे प्रश्न का जवाब देना होता है। जवाब सही होने पर ही आगे बढ़ना होता है। अगर वह बच्चा जवाब नहीं दे पाता तो साथ का बच्चा उसका उत्तर बताता है। चारों साइड पर चार प्रश्न बैंक होते हैं और प्रश्नों की पर्ची पर नम्बर लिखे होते हैं। हर बार डायस में जो नम्बर आता है उसपर बढ़ने से पहले एक पर्ची निकालकर उसका जवाब सबको बताना होता है। प्रश्न का उत्तर न आने पर चाल दूसरे को देनी होती है, इस प्रकार खेल चलता रहता है। जो जितने ज़्यादा प्रश्नों के उत्तर देता है वही विजेता होता है। प्रश्न बैंक के साथ-साथ उत्तर बैंक भी होता है जिसका प्रयोग बच्चे खेल समाप्त होने के बाद करते हैं। अपने प्रश्नों के उत्तर का मिलान करते हैं। अगले दिन उन प्रश्नों के उत्तरों की तैयारी करके आते हैं। जहाँ बच्चों को समझने में परेशानी होती है, वे मेरे पास आते हैं। इन प्रश्नों के साथ यह शर्त जुड़ी होती है कि बताओ और बढ़ो, नहीं तो वहीं रुको। प्रश्नों के रूप इस प्रकार होते हैं :

- रेल के पाँच तुकान्त शब्द;
- उजाला का विलोम शब्द;
- जल के दो पर्यायवाची;
- राधा जलेबी खाती है, में क्रिया शब्द;
- राजा का घोड़ा बहुत तेज़ दौड़ता है, में विशेषण;
- राजन को क्या हुआ? में प्रश्नवाचक शब्द;
- मामा का स्त्रीलिंग शब्द;
- पाठ के प्रश्न; आदि

जितने समूह खेलते हैं उतने ही प्रश्न बैंक बनाते हैं। बच्चे भी प्रश्न तैयार करने में मदद करते हैं। खेल पूरा होने के बाद हम कक्षा में कठिन उत्तरों पर चर्चा करते हैं। इस खेल से बच्चों के सीखने में प्रतिफलों का आकलन करने में भी मदद मिलती है।

खेल गतिविधियों के बाद बच्चों के साथ जो भी बातचीत होती है, उसको ध्यान से सुनते हैं और अपनी प्रतिक्रिया बेझिझक व्यक्त करते हैं। सुनी हुई रचनाओं, घटनाओं की विषय वस्तु, पात्रों, शीर्षक आदि के बारे में बातचीत करते हैं, राय बनाते हैं और अपने तरीक़े से भाषा को बुनते हैं। नए-नए शब्दों के सन्दर्भ को समझकर, उनका अर्थ सुनिश्चित कर अपनी भाषा में लिख पाने में सक्षम हो पाते हैं।

मैंने सीखा

भाषा की खेल गतिविधियों से बच्चों के साथ मेरे सम्बन्धों में भी बहुत आत्मीयता आ गई व कक्षाएँ मज़ेदार बन गईं। बच्चों की सीखने की इच्छा बनी व उनमें आत्मविश्वास आया। मुझे लगता है कि बात सिर्फ़ इन्हीं गतिविधियों की नहीं है। ऐसी ही बहुत-सी दूसरी गतिविधियाँ और दिमाग़ी खेल भी कक्षा में किए जा सकते हैं। इस अनुभव के बाद मेरा यह विश्वास पक्का हुआ है कि बच्चे गतिविधि-आधारित प्रक्रियाओं में रुचि लेते हैं और सीखने हेतु रोचक माहौल बनता है। इसके साथ ही यहाँ कुछ और महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं :

- भय रहित माहौल में बच्चे जल्दी और अधिक सीखते हैं एवं अपनी बात नि:संकोच अध्यापक के समक्ष रखते हैं। सीखने की प्रक्रिया में बच्चों से दोस्ती करना बहुत सहायक होता है।

- स्वयं करके सीखने के अवसर प्रदान करने पर वे स्थाई रूप से सीखते हैं।

- जब बच्चे सीख नहीं पाते हैं तो शिक्षक / शिक्षिका को अपना तरीक़ा बदलकर नया तरीक़ा अपनाना चाहिए।

- बच्चों के मन में बहुत सारी बातें चल रही होती हैं। जब उनके साथ नियमित संवाद अपनेपन से होता है तो वे शिक्षक से अपनी क़रीबी अनुभव करते हैं।

ऐसा करने के लिए कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है। उदाहरण के लिए, मेरी कोशिश रहती है कि सप्ताह में एक दिन बच्चों के साथ केवल उनकी बातें सुनने, उनको समझने, उनके सीखने को आसान करते हुए ग़लत-सही की पहचान कर निर्णय ले पाने पर केन्द्रित करूँ।

दूसरा यह कि सीखने के लिए उत्साहपूर्ण व उन्मुक्त माहौल तभी बन पाएगा जब ऐसी प्रक्रिया नियमित हो। जब बच्चों के साथ ये गतिविधियाँ नियमित रूप से की जाती हों, तभी हम देख पाएँगे कि बच्चे स्वतः सीखना शुरू कर देते हैं और किसी भी विषय में सीखने के अपने अनुभवों का उपयोग कर पाते हैं साथ ही दूसरे बच्चों को सहयोग भी कर पाते हैं।

कुसुमलता राजकीय प्राथमिक विद्यालय अजबपुरकलां प्रथम, विकासखण्ड रायपुर, देहरादून में प्रधानाध्यापक हैं। आपने बीटीसी, बीएड किया है। आपको बचपन से ही कुछ नया करने का शौक़ रहा है। बच्चों के साथ काम करते-करते यह कब उनका जुनून बन गया पता ही नहीं चला। उनकी रुचि नृत्य, गायन और खेल में भी है।

सम्पर्क : rajrajtajtaj@gmail.com

प्रक्रियात्मक चित्र और विज्ञान शिक्षण

हिमांचल श्रीवास्तव

प्रस्तुत शोध पत्र में पर्यावरण शिक्षण में प्रक्रियात्मक चित्र विधि की उपयोगिता का अध्ययन किया गया है। कक्षा के कुछ उदाहरणों के माध्यम से यह बताया गया है कि पर्यावरण शिक्षण में प्रक्रियात्मक चित्र विधि का प्रयोग करने से बच्चों को विभिन्न घटकों एवं उनके अन्तर्सम्बन्धों को समझने में मदद मिलती है। यह समझ उनकी स्मृति में दीर्घकालिक समय के लिए बनी हुई रहती है। लेख में इसका अध्ययन किया गया है कि यह विधि बच्चों के पूर्व ज्ञान को जानने व उसके आकलन में किस प्रकार उपयोगी होती है।

सीखने-सिखाने की प्रक्रिया हमारे जन्म के साथ ही शुरू हो जाती है। हम कभी देखकर, कभी महसूस करके और अन्य तरीक़ों से अपने जीवन काल में निरन्तर ही परिवेश को समझने का कार्य करते रहते हैं। प्राथमिक स्तर के बच्चों में अपने आसपास के परिवेश को जानने की काफ़ी ज़्यादा उत्सुकता रहती है। वे समाज व प्रकृति में घट रही घटनाओं के पीछे का कारण व तर्क जानने को लालायित रहते हैं। ऐसे में शिक्षक का यह फ़र्ज़ होता है कि प्राकृतिक वातावरण के सम्बन्ध में बच्चों की जिज्ञासा और रचनात्मकता का पोषण करें एवं बच्चों के अवलोकन, चित्रण, व पूर्व अनुभव के आधार पर बच्चों में सामाजिक, भौतिक, व सांस्कृतिक घटकों और इनके अन्तर्सम्बन्धों की समझ को विकसित करें। इसके साथ ही दिन प्रतिदिन जिस तेज़ी से पर्यावरण का ह्रास व क्षरण होता जा रहा है, आवश्यक हो गया है कि बच्चों में शुरुआत से ही पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता लाई जाए। *एनसीएफ़ 2005* में पर्यावरण पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि पाठ्यचर्या में 'पर्यावरण के बारे में, पर्यावरण के द्वारा एवं पर्यावरण के लिए अधिगम हो'।

उपरोक्त पाठ्यचर्या के आधार पर ही एनसीईआरटी व एससीईआरटी द्वारा पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु का चयन किया गया है जिसकी मदद से बच्चों में अवलोकन, वर्गीकरण एवं विश्लेषण कौशलों का विकास हो। इसके माध्यम से बच्चों का संज्ञानात्मक विकास हो सके जिससे बच्चा सीखी गई अवधारणा को दैनिक जीवन से जोड़ पाए। समाज में व्याप्त विभिन्न भ्रान्तियों, अन्धविश्वास, मुद्दों व समस्याओं के प्रति उनमें आलोचनात्मक सोच उत्पन्न हो एवं समस्या समाधान सम्बन्धी क्षमता का विकास हो सके। इसके साथ ही पर्यावरण शिक्षा का एक उद्देश्य बच्चों में विविधता, समानता और लैंगिकता के प्रति संवेदनशीलता पैदा करना भी है।

विद्यालय में पर्यावरण शिक्षण

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मैंने एक स्कूल में क़रीब 2 महीने कक्षा चौथी व पाँचवीं के पर्यावरण अध्ययन कालखण्ड का अवलोकन किया। मैंने पाया कि शिक्षक बच्चों को व्याख्यान विधि से पर्यावरण अध्ययन पढ़ाते हैं, जबकि इसमें बच्चों को ख़ुद करके सीखने के अवसर देने की अपार सम्भावनाएँ हैं। मैंने

यह भी देखा कि नई अवधारणाओं को समझाने या सिखाने के लिए पूर्व ज्ञान का बहुत कम उपयोग किया जाता है। इसके चलते बच्चों को अपनी बात रखने के मौक़े भी नहीं मिल पाते। शिक्षक बिना किसी पूर्व नियोजित शिक्षण योजना के शिक्षण करते हैं, इसलिए स्वयं की शिक्षण पद्धति / शिक्षण योजना / कार्यविधि के आकलन का सवाल ही नहीं उठता। सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान बच्चों का आकलन भी नहीं किया जाता और सिर्फ़ अंकसूची भरते समय बच्चे के साथ अपनी अन्तर्क्रिया के आधार पर टिप्पणी लिख दी जाती है। ऐसी परिस्थिति में स्कूल में नवाचार होने की सम्भावना कम ही दिखाई देती है। शायद इन्हीं कारणों से बच्चे अवधारणा को समझने की तुलना में उसको याद करके लिखने में ज़्यादा प्रशिक्षित दिखाई दिए।

मैंने यह महसूस किया कि जब शिक्षक द्वारा किसी विषयवस्तु की अवधारणा समझाने के बाद मैं बच्चों से प्रश्न करता था तो बच्चे रटा रटाया उत्तर देते थे। और वह उत्तर भी मुझे तब मिल पाता था जब मैं शिक्षक के पढ़ाने के 2-3 दिन के भीतर प्रश्न करूँ, उसके बाद वो रटा हुआ उत्तर भी नहीं मिलता था।

इसलिए जब मुझे शिक्षण का अवसर प्राप्त हुआ, मैंने इस दिशा में चिन्तन मनन करना शुरू किया कि बच्चों को किस पद्धति से पढ़ाया जाए जिससे बच्चे ज़्यादा बेहतर तरीक़े से किसी विषय की अवधारणा को समझ सकें और दीर्घ कालित समय तक यह उनके मस्तिष्क में बने रहें एवं आकलन एवं मूल्यांकन के समय उसे बता व लिख सकें। साथ ही सीखी गई अवधारणा को वास्तविक जीवन से जोड़कर देख सकें।

आगे मैं पर्यावरण अध्ययन के कुछ प्रकरण पढ़ाने के अपने काम का वर्णन और विश्लेषण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

कक्षागत किए गए कार्य का विवरण :

मैं पहले बच्चों के साथ अपने अनुभव के कुछ उदाहरणों को संक्षेप में प्रस्तुत करूँगा और फिर उनसे मैंने क्या समझा व किन निष्कर्षों तक पहुँचा उस विश्लेषण को रखूँगा।

क्रमांक 1 : मुझे कक्षा पाँचवीं के बच्चों को पाठ 'आओ सर्वे करें' पढ़ाते हुए जलाऊ लकड़ी को ईंधन के रूप में प्रयोग करने से पर्यावरण को क्या-क्या नुक़सान होता है यह समझाना था। इसके लिए मैंने बच्चों से कुछ प्रश्न किए :

प्रश्न : आप लोग घर में चूल्हा जलाने के लिए किस चीज़ का प्रयोग करते हैं?

उत्तर : लकड़ी।

प्रश्न : लकड़ी कहाँ से लाते हो?

उत्तर : जंगल।

प्रश्न : क्या हमें चूल्हा जलाने के लिए लकड़ियों का प्रयोग करना चाहिए?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न : क्यों?

उत्तर : क्योंकि लकड़ी जलाने से धुआँ और प्रदूषण होता है।

प्रश्न : और क्या नुक़सान होता है?

उत्तर : पेड़ हमें ऑक्सीजन देता है इसलिए पेड़ को नहीं काटना चाहिए।

प्रश्न : और क्या नुक़सान होता है?

इसका कोई जवाब नहीं मिला।

इस चर्चा का सन्दर्भ यह है कि काफ़ी दिनों से बच्चों की तरफ़ से यह प्रश्न आ रहे थे कि हाथी तो भगवान के रूप हैं फिर वह हमारे गाँव आकर हमारी फ़सल को क्यों नुक़सान पहुँचा रहे हैं। (यह गाँव हाथी प्रभावित क्षेत्र के अन्तर्गत आता हैं)। प्रयास यह था कि इस चर्चा द्वारा बच्चों को पेड़ों की लगातार कटाई के जंगली जानवरों पर प्रभाव व उनके गाँव की ओर रुख़ करने के बीच का अन्तर्सम्बन्ध समझने का मौक़ा दिया जाए। ऊपर की बातचीत में आप देखेंगे कि बच्चों की तरफ़ से लकड़ी जलाने, पेड़ काटने का पशुओं

पर प्रभाव के सम्बन्ध में कोई पहलू नहीं रखा गया। जिन अवधारणाओं में कारण और प्रभाव का सीधा सम्बन्ध था उन्हें ही रखा गया। ऐसे सम्बन्धों, यथा– लकड़ी जलाने से प्रदूषण का होना, को बच्चे जल्दी समझ लेते हैं। परन्तु जिन अवधारणाओं में किसी प्रभाव के पीछे दो या अधिक कारण कार्य कर रहे होते हैं तो बच्चे उनका आपस में सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते। बच्चों को ऐसी अवधारणाएँ समझाना एक चुनौती भरा कार्य होता है। मैंने इस अन्तर्सम्बन्ध को समझाने का प्रयास किया है। बच्चों से कोई उत्तर न आता देख मैंने प्रश्न किया कि क्या चूल्हे में लगातार जलाऊ लकड़ी उपयोग करने और हाथी के हमारे गाँव की तरफ़ आने में कोई जुड़ाव दिखता है, आप बताइए?

बच्चे नहीं बता पाए। इसलिए बच्चों से दूसरा प्रश्न पूछा कि जंगल से हमें क्या-क्या मिलता है?

उत्तर में लकड़ी, महुआ, आम, जड़ी-बूटी, दवाई, आदि बहुत-सी चीज़ें बताई गईं। यह सभी शब्द मैंने श्यामपट्ट पर लिखे। इसके बाद अवधारणा समझाने के लिए जो शब्द ज़रूरी थे, उन्हें छोड़कर बाक़ी सब मिटा दिए, और बच्चों से श्यामपट्ट पर शब्दों के बीच सम्बन्ध पूछकर लिखता चला गया। कुछ सम्बन्ध बच्चों ने बताए, कुछ मैंने जोड़े।

इस तरह प्रश्नोत्तर माध्यम से आई बच्चों की समझ / पूर्व ज्ञान को श्यामपट्ट पर लिखा गया और उनके द्वारा दिए जा रहे उत्तरों को ही सम्बन्ध सूचक शब्द या वाक्य में बदलकर व

चूल्हा —जलाने के लिए उपयोग करते हैं।→ जलाऊ लकड़ी।

जलाऊ लकड़ी ←मिलती है। / देता है।→ पेड़।

पेड़ —मिलता है। / बहुत सारे पेड़ इकट्ठा होकर बनाते हैं।→ जंगल से।

जंगल ←घर हैं। / रहते हैं जंगल में।→ हाथी

तीर की सहायता से दो शब्दों को जोड़ा गया।

यह सभी अवधारणाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई थीं और वही प्रक्रिया बार-बार हो रही थी इसलिए इसे एक चक्र का रूप दिया गया। यह एक तरह का क्रमिक चित्र है जो चरण-दर-चरण सम्बन्धों को दर्शाता है। यह एक प्रक्रिया

चित्र का उदाहरण है और इसे एक चक्र के रूप में भी रखा जा सकता है।

बच्चे अवधारणा को समझे या नहीं, इसका आकलन करने के लिए चक्र को मिटाया गया और सभी घटकों को श्यामपट्ट पर यादृच्छिक तरीक़े से लिख दिया गया। इसके बाद तीर की सहायता से इन्हें आपस में जोड़ते हुए क्रमवार लिखने के लिए बच्चों को कहा गया, जिसे बच्चे आसानी से कर पा रहे थे। साथ ही बच्चों को तीर के ऊपर दोनों घटकों के बीच का सम्बन्ध लिखने के लिए कहा गया, जिसे बच्चे थोड़ा झिझकते हुए लिख रहे थे क्योंकि दोनों घटकों के सम्बन्ध में हर बच्चे की अपनी एक अलग समझ है, जिसे वे सामने न लाकर शिक्षक की समझ की नक़ल करने की कोशिश कर रहे थे। जैसे कुछ देर पहले चक्र में मैंने लिखा था :

पेड़ —मिलता है→ जंगल

बच्चे भी यही लिखने की कोशिश करते हुए दिखाई पड़े।

इसलिए बच्चों को आसपास के छोटे-छोटे उदाहरण देकर यह समझाया गया कि दोनों के बीच सम्बन्ध दर्शाने के लिए आप अपनी भाषा व समझ से वाक्य बनाकर उसे तीर के ऊपर लिख सकते हैं। इसके बाद बच्चे थोड़े सहज हुए, फिर जवाब आए :

बहुत सारे पेड़ इकट्ठा होकर जंगल बनते हैं।

पेड़ ⟶ जंगल

हर विषय से सम्बन्धित बच्चों का अपना पूर्व ज्ञान, जानकारी व पूर्व समझ होती है। अनौपचारिक रूप से मौखिक तौर से पूछने पर वे इसे हमारे साथ साझा भी करते हैं, पर लिखित रूप देने के लिए कहने पर बच्चे शिक्षक द्वारा लिखी गई या बताई गई बातों को ही लिखने का प्रयास करते हैं, जो दर्शाता है कि बच्चे किस प्रकार शिक्षक की बातें अनुवर्तित करते हैं।

शुरुआत में बच्चे तीर के माध्यम से घटकों को जोड़ पा रहे थे, पर उन्हें तीर की दिशा को लेकर परेशानी आ रही थी जैसे–

पर बच्चों को तीर की दिशा पर ध्यान देने की बजाय पहले उन दोनों घटकों में सम्बन्ध पहचानने व उस सम्बन्ध को लक़ीर के ऊपर लिखने पर ध्यान देने के लिए कहा गया। इसके बाद बच्चों को इससे अगली अवधारणा जोड़ने के लिए कहा गया। जैसे कि, जलाऊ लकड़ी हमें कहाँ से मिलती है तो बच्चे जलाऊ लकड़ी को पेड़ से जोड़ लेते हैं, फिर पेड़ कहाँ से मिलते हैं, तो उत्तर आता है जंगल से।

इस तरह से बात करने पर बच्चे अपने अनुभवों को याद करते हैं, भाषा का प्रयोग करते हुए एक दूसरे से साझा करते हैं, और फिर उन्हें प्रक्रिया चित्र के माध्यम से दर्शाते हुए यह भी समझते हैं कि विभिन्न घटकों में क्या सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध आगे कहाँ तक ले जाया जा सकता है। यह प्रक्रिया चित्र उनको अवधारणाओं के आपसी सम्बन्ध को एक अमूर्त रूप में देखने में भी मदद करता है और इस तरह उस ख़ास अवधारणा के सम्बन्ध में अभिव्यक्ति को भी पुख़्ता करता है। सीखने की यह पूरी प्रक्रिया बच्चों के ख़ुद के अनुभव को याद करने से शुरू होकर उसे अभिव्यक्त करने के अभ्यास व उसे चित्र में प्रस्तुत करते-करते ऐसे चित्र तक पहुँचना जो उसके साथ जुड़ी अवधारणा को प्रस्तुत करे। और फ़िर प्रक्रिया चित्र के इस प्रस्तुतीकरण एवं सामान्यीकृत सिद्धान्तों को समझकर धीरे-धीरे और भी ऐसे चित्र बना पाने तक जाती है। इसे अगले कुछ और अनुभवों के उदाहरण के आलोक में देखते हैं।

क्रमांक 2 : बाल दिवस के दिन बच्चों को *दिल्ली सफ़ारी* फ़िल्म दिखाई गई। इस फ़िल्म में दिखाया गया है कि जंगलों की कटाई से जंगली जानवरों के जीवन पर क्या विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस फ़िल्म से बच्चों ने जो सीखा, उसका आकलन करने के लिए एवं 2 महीने पहले बच्चों को इसी से सम्बन्धित जो अवधारणा प्रक्रिया चित्रण के माध्यम से समझाई गई थी वह उसके सन्दर्भ में क्या कर पाते हैं, यह जानने के लिए बच्चों से पूछा गया :

प्रश्न : आपको फ़िल्म में कौन-कौन दिखाई दिया?

उत्तर : शेर, बन्दर, तोता, भालू, जंगल, मंत्री, मशीन, इंसान आदि।

बच्चों के जवाबों को श्यामपट्ट पर लिखकर मैंने अवधारणा से सम्बन्धित जवाबों को छोड़कर बाक़ी जवाब मिटा दिए। मेरे प्रश्न पूछने से पहले ही बच्चे समझ चुके थे कि मैं उन्हें इन घटकों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहने वाला हूँ।

प्रक्रिया चक्र की शुरुआत करने के लिए मैंने बच्चों को इंसान और मशीन के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहा जिसमें बच्चे विभिन्न तरह के उत्तर देने लगे। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं– मशीन को इंसान ने बनाया है, मशीन बिगड़ती है तो इंसान ठीक करता है, आदि। फिर बच्चों से फ़िल्म को सन्दर्भ में रखकर इंसान और मशीन के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहा। इसके बाद भी बच्चों से सम्बन्ध बोधक शब्द या वाक्य नहीं आ रहे थे, इसलिए प्रश्न को थोड़ा बदलकर पूछा कि फ़िल्म में जंगल को जो मशीन काट रही थी उसे कौन चला रहा था? तब उत्तर आया, इंसान। इसके बाद शिक्षक ने एक बच्चे को श्यामपट्ट पर आकर चक्र को आगे बढ़ाने के लिए कहा, जिसमें बच्चे ने मशीन को पेड़ से जोड़ते हुए लिखा कि मशीन पेड़ काट रही है। फिर पेड़ को जंगल से जोड़ते हुए लिखा कि इसलिए जंगल ख़त्म हो रहे हैं और इस तरह कुछ ही समय में उसने पूरा चक्र बना दिया।

2 महीने बाद भी बच्चे का घटकों के बीच का अन्तर्सम्बन्ध बता पाना इस बात का सूचक है कि प्रक्रिया चित्र के माध्यम से सीखी गई अवधारणा बच्चों को समझ आ सकती है और लम्बे समय के बाद तक वह उसका इस्तेमाल कर नए चक्र बना सकता है।
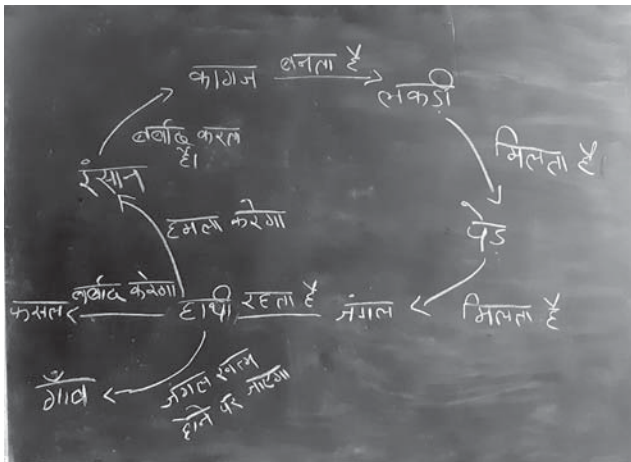
क्रमांक 3 : तीसरा अनुभव जिसकी मैं चर्चा करना चाहता हूँ, वह कक्षा पाँच का है। इस कक्षा में अर्धवार्षिक परीक्षा में 'छत्तीसगढ़ के जंगल' पाठ से आए प्रश्न पर चर्चा हो रही थी। बच्चे अपने आसपास मिलने वाले विभिन्न पेड़ों की ख़ासियत बताते हुए कह रहे थे कि पेड़ों के किन-किन भागों से हमें क्या-क्या मिलता है। इसी क्रम में यह बात आई कि काग़ज़ किससे बनता है? बच्चों ने बताया कि काग़ज़ पेड़ से बनता है। फिर बच्चों से पूछा गया कि हमें काग़ज़ बर्बाद करना चाहिए या नहीं? बच्चों से जवाब आया, नहीं? (चूँकि बच्चे काफ़ी काग़ज़ बर्बाद कर रहे थे, इसलिए मैंने आवश्यक माना कि ऐसी क्या वजह है कि बच्चे यह जानते हुए कि काग़ज़ पेड़ों से बनता है, काग़ज़ फाड़कर फेंकने में बिलकुल गुरेज नहीं करते थे। मैंने इसके पीछे का कारण जाना।) चर्चा को आगे बढ़ाते हुए बच्चों से पूछा कि हमें काग़ज़ क्यों बर्बाद नहीं करना चाहिए। इसपर बच्चे वही बात दोहराने लगे कि ये पेड़ से बनता है और इससे आगे नहीं बढ़ पा रहे थे। वे अन्य घटकों के साथ इसका सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पा रहे थे। यह बताना सार्थक होगा कि यह वो बच्चे थे जो नियमित स्कूल नहीं आते हैं और इसमें कुछ चौथी के बच्चे भी थे। इसके बाद 1-2 बच्चे जो रोज़ाना स्कूल आते हैं जिनके साथ पहले पेड़ों के महत्त्व पर चर्चा हो चुकी है और जिनके काग़ज़ को फाड़कर फेंकने के व्यवहार में मुझे सुधार दिखाई देता है और जो काफ़ी देर से हाथ उठा रहे थे, उन्हें मौक़ा दिया गया। मुझे लग रहा था कि यह बच्चे काग़ज़, पेड़, जंगल, जानवर आदि के बीच के अन्तर्सम्बन्ध को जानते हैं और सीखी गई अवधारणा व अपनी समझ को बाहरी दुनिया से जोड़कर देख पा रहे हैं अतः यह जवाब दे पाएँगे। इसीलिए मैंने इन्हें पहले मौक़ा नहीं दिया था। मुझे मालूम था कि ये बच्चे ख़ुद

तो काग़ज़ बर्बाद करते ही नहीं बल्कि दूसरों के करने पर उनको रोकते भी हैं।

इनमें से एक बच्चे ने मेरी आशा के अनुकूल प्रक्रिया चित्र की मदद से सभी सजीव-निर्जीव वस्तुओं का आपस में सम्बन्ध स्थापित करते हुए बताया कि किस प्रकार काग़ज़ बर्बाद करने से जंगल ख़त्म होंगे और हाथी गाँव में आएँगे। उसने एक क़दम और आगे बढ़कर जंगल ख़त्म होने के अन्य नुक़सान भी गिनवाए, जैसे– बारिश का न होना, ऑक्सीजन का न मिलना एवं कई दवाइयाँ, जो हमें जंगल से मिलती हैं, नहीं मिलेंगी। उसने पूर्व में बताए गए अन्य कारण जैसे– इंसानों द्वारा घर बनाते समय खिड़की, दरवाज़े और जलाऊ लकड़ी के लिए जंगल ख़त्म करने वाली बात भी जोड़ी। उस विद्यार्थी ने अभी तक की अपनी सारी समझ को उससे जोड़ते हुए बात रखी। उसको इसी प्रक्रिया को श्यामपट्ट पर चक्र के रूप में लिखने के लिए कहा गया। बच्चा झिझक रहा था, थोड़ा प्रोत्साहित करने के बाद बच्चे ने इस अवधारणा की अपनी समझ को प्रक्रिया चित्र के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया। अन्य बच्चे भी इस तरह का सम्बन्ध स्थापित कर पा रहे थे। मुझे लगा कि *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में शिक्षा एवं पर्यावरण के उद्देश्य में भी उल्लेख की गई बात, कि लक्ष्य यह हो कि बच्चे ज्ञान को बाहरी दुनिया से जोड़ पाएँ और शिक्षा से बच्चों में मूल्य-आधारित निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो एवं वे पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक हों, यह कुछ हद तक हो पाया है।

अगला अनुभव चौथी और पाँचवीं कक्षा के बच्चों को 'पानी रे पानी' पाठ पढ़ाते समय जल चक्र पर चर्चा का है। यह निर्णय इसलिए लिया गया क्योंकि बच्चे पूछ रहे थे कि बारिश कैसे होती है? इसके अलावा पहले की अनौपचारिक बातचीत में भी बच्चे बारिश के पीछे के विज्ञान को समझने के लिए उत्सुक थे। बच्चे प्रक्रिया चित्र बनाना सीख चुके थे, इसलिए मैंने इसी विधि को चुना। सबसे पहले बच्चों के पूर्व ज्ञान को जानने के लिए पूछा गया, क्या आपको पता है बारिश कैसे होती है? बारिश के लिए किन-किन घटकों की आवश्यकता होती है? कुछ को इस अवधारणा के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी थी। उन्होंने उत्तर दिए– सूर्य, बादल, पानी, पेड़। बच्चों के जवाबों में से कुछ शब्द, जो अवधारणा समझाने के लिए महत्त्वपूर्ण थे, श्यामपट्ट पर लिख दिए गए। फिर बच्चों में इनके बीच के अन्तर्सम्बन्ध की समझ, जानने के लिए कुछ प्रश्न किए गए, जैसे– नदी का पानी आसमान में कैसे पहुँच जाता है?

(कुछ बच्चों को यह जानकारी थी कि नदी, समुद्र आदि स्रोतों का पानी भाप बनकर आसमान में जाता है और वहाँ बादल बन जाता है।)

बच्चों के द्वारा उत्तर देने के बाद फिर अगले चरण में जाने के लिए प्रश्न किया कि भाप से आसमान में बादल कैसे बनते हैं।

भाप बनकर

नदी, सागर ⟶ आसमान

बच्चों को इसकी जानकारी नहीं थी, इसलिए श्यामपट्ट पर जल चक्र बनाकर बच्चों को इस बात की सरलीकृत जानकारी दी। उन्हें बताया कि आसमान में भाप ठण्डी होकर पानी की छोटी-छोटी बूँदों में बदल जाती है और यह बूँदें आपस में मिलकर बड़ी एवं भारी हो जाती हैं जो वर्षा के रूप में गिरती हैं।

इसके बाद श्यामपट्ट पर बने जल चक्र को मिटाया और बच्चों को अपनी कॉपी में जल चक्र बनाने के लिए कहा। दो बच्चों ने अपनी रचनात्मकता व कल्पनाशीलता से जल चक्र को
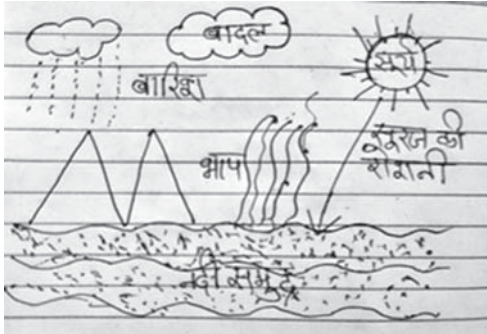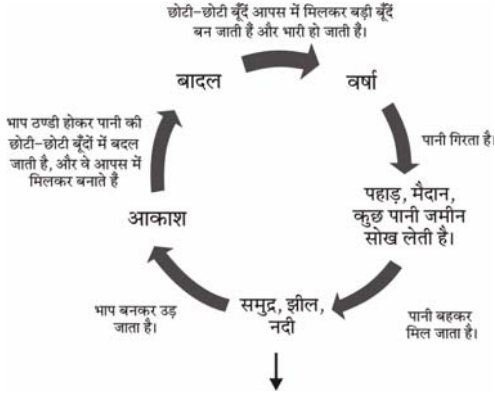
बच्चों द्वारा बनाया गया चित्र।

चित्रात्मक रूप देते हुए अपनी कॉपी में बादल, भाप, बारिश, नदी, आदि का चित्र बनाया व उनके आपसी सम्बन्ध को दिखाया। पाठ्यपुस्तक में कहीं भी इस तरह का कोई चित्र नहीं है और न ही बच्चों ने किसी अन्य स्रोत से ऐसे किसी चित्र को देखा है। बच्चे शब्द को चित्र का रूप देते चले गए और पूरे जल चक्र का निर्माण कर दिया।

इससे समझ बनी कि शब्दों या घटकों के साथ-साथ उनके चित्र भी बनाए जाएँ या अवधारणा समझाने से पहले उससे सम्बन्धित कोई प्रयोग या परीक्षण करके दिखाया जाए और इसको सन्दर्भ में लेते हुए विभिन्न घटकों के बीच के सम्बन्ध को समझाया जाए, तो बच्चे उस अवधारणा और अधिक स्पष्टता के साथ समझ पाते हैं।

क़रीब नौ-दस महीने की प्रक्रिया में मैंने बच्चों को कई प्रकरण इस विधि से पढ़ाए। इनमें सरल और जटिल अवधारणाएँ भी शामिल थीं, जिसमें कई बातें समझ आईं। जहाँ इसकी कई ख़ूबियाँ हैं जिनकी बात हमने ऊपर की भी है, वहीं कुछ सीमाएँ भी हैं। कक्षा में इस विधि का उपयोग करते समय कुछ सावधानियों का ध्यान भी हमें रखना चाहिए। इसके अलावा कुछ परेशानियाँ भी सामने आईं और यह पता लगा कि अवधारणा को समझने में मदद करते समय बच्चों को ध्यान से सुनने व समझने की कितनी अधिक ज़रूरत है और क्यों है। इसपर ग़ौर करते हुए ही हम बेहतर ढंग से सीखने में उन्हें मदद कर पाएँगे।

अवधारणाओं के बनने के रास्ते में किस तरह की परिस्थितियाँ आ सकती हैं, इसे जल चक्र शिक्षण के दौरान बच्चों के प्रश्नों व परेशानियों के उदाहरण से समझा जा सकता है :

- कई बच्चों को चित्र देखकर लगा मानो सिर्फ़ नदी व समुद्र का पानी ही भाप बनता है?
- उन्हें यह हैरानी थी कि भाप ऊपर जाकर ठण्डी कैसे हो जाती है?
- बादल से आवाज़ क्यों आती है?
- क्या सिर्फ़ गर्मी के मौसम में ही पानी भाप बनता है? (यानी पानी का वाष्पीकरण सिर्फ़ गर्मी में होता है)

ज़ाहिर है ऐसे और भी कई सवाल और उलझनें बच्चों के दिमाग़ में बनी होंगी। मुझे लगता है हमें इसे सकारात्मक दृष्टि से इसलिए देखना चाहिए क्योंकि समझ की शुरुआत का प्रमाण ही नए प्रश्नों व उलझनों का जन्म है। बच्चों ने इस कक्षा प्रक्रिया में कई अवधारणाएँ दोहराकर सुदृढ़ कीं और कई नई अवधारणाओं व उनके बीच के अन्तर्सम्बन्धों के प्रति अधिक ठोस समझ का रास्ता खोला। इस फ़ायदे को हासिल करने की सम्भावना बढ़ाने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना उपयोगी होगा।

सावधानियाँ

- कक्षा में सीधे प्रक्रिया चित्र के माध्यम से कोई विषय समझाने से पहले हमें ख़ुद भी 2-3 अलग-अलग तरीक़ों से प्रक्रिया चित्र बनाकर देख लेना चाहिए, ताकि हम यह समझ सकें कि कौन-सा चित्र ज़्यादा उपयुक्त है, और किसमें भ्रमित होने की सम्भावना कम होगी। इससे हम बच्चों को नए ढंग से प्रक्रिया चित्र बनाने को प्रोत्साहित कर सकेंगे और प्रक्रिया चित्र बनाने के लिए उनके द्वारा लिए गए रास्तों को उनके साथ मिलकर विश्लेषित कर पाएँगे।

- शिक्षण के दौरान बच्चों की तरफ़ से उठने वाले प्रश्न का जवाब देते समय शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसे बच्चों को उस अवधारणा के किस स्तर तक लेकर जाना है। सम्भव है कि इस तरह के खुले विमर्श में बहुत-सी अवधारणाएँ व नए-नए अन्तर्सम्बन्ध आ जाएँ, यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि विमर्श का स्तर बहुत जटिल न हो जाए।

- किसी जटिल अवधारणा को समझाते समय शिक्षक को पहले से इस बात की तैयारी करके रख लेनी चाहिए कि किस-किस पहलू में और किस-किस चरण पर बच्चों के भ्रमित होने की सम्भावना है। अगर बच्चे भ्रमित होते हैं तो शिक्षक बच्चों का भ्रम समझने व उसे दूर करने में बच्चों की किस प्रकार मदद करेंगे व उसके लिए क्या तरीक़े अपनाएँगे।

- हर शिक्षण योजना के क्रियान्वयन के बाद शिक्षक को अपने-आप से कुछ प्रश्न करने ही चाहिए। इसमें वे सवाल जो गतिविधि की अवधारणा व उसके यथार्थ में उपयोग के ढंग पर हो रहे विमर्श के मद्देनज़र बने हैं, आदि शामिल हों।

इसके अलावा भी बहुत सारे मुद्दे और सवाल हैं। इनके कुछ उदाहरण देखिए। इनपर हम फिर कभी बात करेंगे।

- बच्चों की क्या प्रतिक्रिया थी, क्या बच्चे गतिविधि का आनन्द उठा रहे थे? क्या उन्हें गतिविधि कठिन लग रही थी? और अगर लग रही थी तो क्यों?

- जब इस गतिविधि को दुबारा करवाया जाएगा तो कहाँ-कहाँ, क्या-क्या सुधार किया जा सकता है जिससे यह प्रक्रिया और प्रभावी बन सके।

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि प्रक्रिया चित्र के माध्यम से चर्चा और संवाद को बढ़ावा दिया जा सकता है। इस गतिविधि को करते समय यह समझ में आता है कि किसी भी प्रश्न का कोई एक सही उत्तर नहीं होता। सीखने में एक दूसरे से चर्चा करके बच्चे जब सवाल के सन्दर्भ में चित्र बना रहे होते हैं, तब शिक्षक उनकी चर्चाओं को सुनकर उनके सोचने के तरीक़े को समझ सकते हैं व उन्हें छोटे-छोटे और नए सवाल दे सकते हैं। बेशक यह शिक्षक की तैयारी में मदद करेगा ही और इसके कई अन्य फ़ायदे भी हैं। इस अन्त:क्रिया के दौरान शिक्षक यह भी पता लगा सकते हैं कि विषय की समझ बनाने में बच्चे को कहाँ परेशानी हो रही है और उसे दूर करने के लिए किस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किसी अवधारणा या विषय का कोई निश्चित / व्यवस्थित प्रक्रिया चित्र नहीं होता। साथ-साथ प्रक्रिया चित्रों को बनाने की भी कोई विशेष विधि नहीं है। प्रत्येक बच्चा अपनी समझ के अनुसार अलग-अलग तरीक़े से इसका निर्माण कर सकता है। यह चित्रण बच्चे के लिए विशेष महत्त्व रखता है। अन्तिम बात यह कि किसी भी चित्र को पूर्ण रूप से ग़लत, सही, अथवा अन्तिम नहीं ठहराया जा सकता। उसमें सुधार की सम्भावना हमेशा बनी रहती है। इस विधि से सिखाने में थोड़ा समय ज़रूर लगता है, पर इसमें लगाया हुआ समय व मेहनत व्यर्थ नहीं जाती क्योंकि इस तरीक़े से किसी अवधारणा

को समझकर बच्चे उसे अपने दैनिक जीवन से जोड़कर देख पाते हैं और पर्यावरण की विभिन्न समस्याओं के कारणों एवं उनके प्रभाव पर विचार कर युक्तिसंगत निर्णय ले पाते हैं।

सन्दर्भ

शिक्षा के लक्ष्य, राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र

आवास और शिक्षा राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र

पर्यावरण अध्ययन का अर्थ क्या है, Teacher of India by दिगन्तर, खेलकूद एवं शिक्षा समिति

ISTT

Mind mapping and concept mapping TESS India. Retrieved from: http://www.open.edu/openlearncreate/mod/resource/view.php?id=64926

हिमांचल पिछले 5 वर्षों से सामाजिक सेवा के क्षेत्र में कार्यरत हैं। शिक्षा से सम्बन्धित विषयों पर लिखते रहते हैं। साल 2018 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में सन्दर्भ व्यक्ति के रूप में आदिवासी बहुल क्षेत्र धरमजयगढ़, ज़िला रायगढ़ (छ.ग.) में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : himanchal.shrivastava@azimpremjifoundation.org

ऑनलाइन शिक्षण : जब समुदाय बना सहभागी

दीपा पाण्डेय

इस महामारी के दौर में बच्चों की शिक्षा को जारी रखने के लिए एक शिक्षिका द्वारा किए गए प्रयासों का विवरण इस लेख में है। शिक्षिका बताती हैं कि उन्होंने इन प्रयासों की शुरुआत कैसे की, किस तरह पाठ्य सामग्री तैयार की, उसको बच्चों के साथ कैसे साझा किया। वे ऑनलाइन शिक्षण की सम्भावनाओं और सीमाओं को भी इस लेख में रेखांकित करती हैं। सं.

माह मार्च 2020, सबकुछ सामान्य चल रहा था। शैक्षिक सत्र 2019-20 अन्तिम पड़ाव की ओर था, और होली अवकाश के बाद वार्षिक आकलन होना था। तभी अचानक आदेश आया कि कोरोना महामारी के कारण एक सप्ताह का लॉकडाउन हो गया है। इसकी अवधि फिर बढ़ती गई और विद्यालय कई महीनों तक बन्द कर दिए गए। अभिभावक व बच्चे परेशान हो गए और साथ में एक अध्यापक के रूप में हमारी चिन्ताएँ व आशंकाएँ भी बढ़ती गईं। हमने बच्चों को समझाया और आश्वासन दिया कि हम लगातार फ़ोन के द्वारा आपसे जुड़े रहेंगे। कुछ समय तक तो वॉट्सएप ग्रुप के माध्यम से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को जारी रखा लेकिन धीरे-धीरे उसमें कई तरह की चुनौतियाँ आने लगीं।

हमारे पास वर्चुअल प्लेटफ़ॉर्म या ऑनलाइन अध्ययन का विकल्प था। सरकारी व विभागीय स्तर पर भी इसपर ज़ोर दिया जा रहा था। परन्तु सार्वजनिक शिक्षा तंत्र में जहाँ लाभार्थी मुख्य रूप से वंचित वर्ग का बच्चा होता है, इसे लागू करने में हमें कुछ चुनौतियों से जूझना पड़ रहा था, जैसे– एंड्रॉइड फ़ोन की सीमित उपलब्धता, स्मार्टफ़ोन न होने से बच्चों का प्रक्रिया से कम जुड़ना व स्वयं को कमतर समझना, गाँव में नेटवर्क की समस्या और डाटा पैक (data pack) की अनुपलब्धता, बच्चों का भावनात्मक असन्तुलन और पाठ्यपुस्तक, पाठ्य सामग्री, लेखन सामग्री का अभाव, आदि। ऑनलाइन शिक्षण की ये चुनौतियाँ जब जन्म लेती हुई दिखने लगीं तब मन्थन किया और विचार आया कि क्यों न समुदाय को इस प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से शामिल करके देखा जाए। इस लेख में प्राथमिक कक्षाओं को ऑनलाइन माध्यम से संचालित करने में आई परेशानियाँ और इसमें समुदाय को कैसे शामिल कर पाई, इसपर अपने अनुभव प्रस्तुत करूँगी।

कार्य उद्देश्य

समुदाय के साथ काम शुरू करने के लिए मैंने सबसे पहले समुदाय से सम्पर्क कर कुछ बातें जानने की कोशिश की, जैसे– कोविड-19 और उससे बचाव के बारे में उनकी जानकारी क्या है? क्या सरकारी स्तर पर व अन्य संगठनों द्वारा उन्हें राशन मिल रहा है? क्या किसी परिवार का मुखिया या परिजन, मज़दूर या प्रवासी कामगार के रूप में लॉकडाउन में महानगरों में तो नहीं फँसा है? क्या कोई बालक आर्थिक परेशानी के कारण बाल श्रम करने को मजबूर तो नहीं है? पढ़ाई आदि को लेकर कोई

बालक हिंसा (पारिवारिक) का शिकार तो नहीं हो रहा? आदि।

उक्त जानकारियाँ लेना आवश्यक था क्योंकि अधिकांश बच्चे आर्थिक रूप से कमज़ोर व वंचित वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। इस बात की पूरी सम्भावना थी कि आपदा की इस घड़ी में पठन-पाठन उनके परिप्रेक्ष्य में दूसरा अहम मुद्दा हो सकता है। साथ ही मेरा मानना था कि बालकों के परिवेश को समझकर ही अध्यापक सफल शिक्षण-अधिगम साधन आदि डिज़ाइन कर सकता है। समुदाय के साथ किया गया संवाद उनके साथ भावनात्मक जुड़ाव बनाने में भी मदद करता है। ऐसी ही कुछ बातों पर सन्तोषजनक जानकारी हासिल करने के बाद शुरू हुई पढ़ने-पढ़ाने की बात और मैं एक योजना तैयार कर पाई– ऑनलाइन माध्यम पर अभिभावकों, बड़े भाई-बहिनों, चाचा एवं गाँव के ही अन्य सक्षम व्यक्तियों आदि को किसी रूप में शामिल करने (village resource group) व शिक्षण माध्यम के रूप में इस्तेमाल करने का, जिसके मुख्य उद्देश्य थे– प्रत्येक बच्चे के घर पर बाल-समृद्ध वातावरण का निर्माण, पढ़ने की संस्कृति का विकास, शिक्षा के लक्ष्य प्राप्ति हेतु अभिभावकों में ज़िम्मेदारी का भाव जगाना, और बच्चों को सीखने-सिखाने की प्रक्रिया से जोड़ना।

इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए मैंने कुछ लक्ष्य निर्धारित किए, जैसे– परिवेश व संस्कृति सम्बन्धी लोककथाओं, लोकगीत व लोकनृत्य से बच्चों को परिचित करवाना, स्वयं माताओं द्वारा इनकी व अपने लॉकडाउन अनुभवों की ऑडियो बुक बनाना, और भाषा-समृद्ध वातावरण निर्माण के माध्यमों को लागू करने में अभिभावकों की मदद लेना। यह सब करते हुए मेरी कोशिश यह भी रही कि समुदाय में कोविड-19 के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो और विद्यालयी क्रियात्मक समूह का अधिक सार्थकता से इस्तेमाल किया जा सके।

उक्त उद्देश्य की पूर्ति करने और एक अभिकरण के रूप में प्रयोग करने हेतु कुछ साधनों के इस्तेमाल से इस प्रकार कार्य किया गया।

शुरुआती दौर

जब स्कूल जाना सम्भव नहीं था, तकनीक की मध्यस्थता से शिक्षण सम्भव हो पाया। मोबाइल फ़ोन को अति महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में इस्तेमाल करना शुरू किया। जिन घरों में एंड्रॉइड फ़ोन उपलब्ध था उनके अभिभावकों से व्यक्तिगत रूप से बातचीत करके एक निश्चित व सीमित समय के लिए बच्चों को फ़ोन उपलब्ध कराए जाने पर सहमति बनी। फ़ोन का इस्तेमाल

बच्चे दिनभर में मात्र 1 घण्टे के लिए ही करें जिससे वे उसका दुरुपयोग न कर पाएँ और विकिरण (radiation) के दुष्प्रभावों से कुछ हद तक बचाया जा सके। फिर बच्चों का एक वॉट्सएप समूह बनाया और उनकी प्रतिक्रिया व कार्य प्राप्त किया गया।

जिन बच्चों के पास सिर्फ़ साधारण फ़ोन थे उनको साथ में लेते हुए कॉन्फ्रेंस कॉल के माध्यम से फ़ोन पर बातचीत करके कुछ पाठ्य सामग्री (कविताओं, कहानियों व पाठों का सारांश) बताई गई और उन्हें साप्ताहिक कार्य हेतु कुछ कार्य नोट करवाए। उदाहरणस्वरूप, बच्चों को 'वे दिन भी क्या दिन थे' पाठ फ़ोन पर पढ़ाया गया।

पर जिन बच्चों तक तकनीक अपनी पहुँच नहीं बना पाई थी उन तक पहुँचने का ज़रिया समुदाय के बीच से खोजा गया। मेरे विद्यालय के प्राथमिक स्तर के हरेक बच्चे तक पहुँच बनाने के लिए मैंने गाँव के युवाओं, जिसमें कुछ ग्रेजुएट या बड़ी कक्षाओं के बच्चे शामिल थे और बच्चों के ही पड़ोसी, चाचा, मौसी, बहन, भाई, आदि थे, की मदद ली गई। पहले इन सभी से बातचीत कर इनमें अपने छोटों व गाँव के विद्यालय के प्रति ज़िम्मेदारी का भाव उत्पन्न करने की कोशिश की गई, फिर उनके फ़ोन से विद्यालय के बच्चों को जुड़वाया और इस तरह विद्यालय के सभी बच्चों का वॉट्सएप ग्रुप बना।

वॉट्सएप में इन्हें काम भेजा जाता जो यह बच्चों तक ले जाते। इन युवाओं ने बच्चों को वर्कशीट उतारकर देने, ऑडियो / वीडियो बनवाने, voice messages recording, dramatization का वीडियो बनवाने, शिक्षण अधिगम सामग्री आदि गतिविधियों में काफ़ी सहायता की।

युवाओं के अतिरिक्त मैंने माताओं एवं आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की मदद ली। चूँकि बच्चा शायद अपनी माँ के साथ ही सबसे ज़्यादा समय व्यतीत करता है, अत: माताओं को सशक्त बनाना इस समय ज़रूरी समझा। मैंने कुछ ऐसे कार्य चुने जो असाक्षर या कम पढ़ी-लिखी माताएँ भी अपने बच्चों से करवा सकती थीं। जैसे– किसी गाने में छोटा-सा नृत्य सिखाना, कहानी सुनाना, लोकगीत व लोककथा सुनाना, मास्क व अन्य आसान क्राफ़्ट सिखाना, चित्र दिखाकर प्रतिक्रिया लेना, अर्थात बच्चों इस चित्र में तुम्हें क्या दिख रहा है? इस चित्र के आधार पर कोई कहानी बनाओ, आदि। इनमें से जो काम माताएँ न कर पातीं, वहाँ हमारी आँगनवाड़ी कार्यकर्ता काम आतीं। आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं ने गाँव वालों तक सन्देश पहुँचाने में, बीच-बीच में बच्चों के घर जाकर बच्चों से कठिनाइयाँ आदि पूछने में और निरन्तर संवाद जारी रखने में काफ़ी मदद की।

ऐसा करने से बच्चों के साथ-साथ यह सभी लाभार्थी हुए क्योंकि इन्हें भी कुछ नया सीखने, और अपने हुनर दिखाने के मौक़े मिले।

पाठ्य सामग्री

बच्चों की शिक्षण प्रक्रिया सुगम बनाने हेतु बच्चों को कुछ पठन-पाठन सामग्री उपलब्ध करवाई गई। यह सामग्री शिक्षण के कुछ उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए चुनी गई थी जैसे, किसी पाठ को पढ़ाने के लिए यू-ट्यूब से कुछ वीडियो ढूँढ़कर भेजना जिससे बच्चों को

पाठ से सम्बन्धित ग्राफ़िक निरूपण भी मिल सके जो उनका ज्ञान स्थाई करने में मदद करे। इसके साथ मैंने भी कुछ कहानियों को स्वयं रिकॉर्ड किया और वीडियो बनाकर बच्चों को साझा किए।

एनसीईआरटी पुस्तकों से भी काम भेजा गया, और बच्चों के लिए वर्कशीटों का निर्माण किया गया ताकि बच्चों की लिखने की आदत न छूटे। साथ ही कुछ छोटी-छोटी और रोचक कहानियाँ संग्रह कर पीडीएफ़ बनाकर बच्चों को उपलब्ध करवाई गईं जिससे पढ़ने की आदत भी बनी रहे और वो अपने भाषाई कौशलों को और विकसित कर सकें। 'प्रथम' संस्था की पहल– मिस्ड कॉल देकर कहानी सुनना– का भी फ़ायदा उठाते हुए बच्चों को कहानी सुनने के लिए प्रेरित किया गया।

पिथौरागढ़ ज़िले में कार्यरत शिक्षकों के वॉट्सएप समूह, जो पहले से ही चल रहा था, में सभी शिक्षकों के साथ मिलकर कुछ विषयों में साप्ताहिक रूप से काम किया जाता था, और इच्छुक शिक्षक कुछ पाठ्य सामग्री तैयार करते और समूह में साझा करते। इस समूह का लाभ उठाते हुए मैंने भी इन चर्चाओं में सहभागिता कर कुछ पाठ्य सामग्री तैयार की और फिर प्रत्येक टॉपिक पर मेरे और साथी शिक्षकों द्वारा साझा की गई पाठ्य सामग्री को बच्चों तक पहुँचाया गया। इनपर प्राप्त बच्चों की प्रतिक्रियाओं को समूह में साझा कर चर्चा की गई। इन सब कार्यों को करने पर मेरी समझ बनी कि ऑडियो-वीडियो बुक्स एक बहुत ही प्रभावशाली माध्यम है, तो मैंने इसपर फ़ोकस होकर कार्य किया।

ऑडियो बुक्स को पढ़ने के एक संसाधन की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। इनकी मदद से मौखिक आदेश और अपनी आवाज़ में पाठ का सार रिकॉर्ड कर बच्चों को भेजा जा सकता है और शिक्षण प्रक्रिया सुचारु रूप से संचालित की जा सकती है। ऑडियो बुक पढ़ने की सामग्री (कोई कहानी, पाठ या सन्देश) वॉइस रिकॉर्ड द्वारा समझाने और भेजने में बहुत मददगार हुई। भाषा-समृद्ध वातावरण निर्माण करने में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। मैंने ऑडियो बुक्स पर काम करके जाना कि यह शिक्षक, बच्चे और अभिभावक / समुदाय, सभी के लिए लाभदायक हो सकती हैं।

मेरा मानना है कि ऑडियो बुक्स जैसे संसाधन अध्यापक के स्वयं के क्षमता-संवर्धन के लिए भी काफ़ी उपयोगी हैं। अपनी शिक्षण

प्रक्रिया को रिकॉर्ड करना, सुनना, और फिर स्वयं की कमियों को समझकर अपने पढ़ाने के तरीक़ों में सुधार ला पाना एक अध्यापक के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऐसा कर पाने से शिक्षक के आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है। इसके साथ ही जो सामग्री (रिकॉर्डेड मटेरियल) बन रही होती है वह आगे के उपयोग (जब स्कूल खुलें) के लिए सुरक्षित रख सकते हैं जो कि बहुकक्षा व बहुविषय शिक्षण में काफ़ी सहायक हो सकती है।

बच्चों के लिए भी यह काफ़ी उपयोगी होती है क्योंकि इससे बच्चों को पुनरावृत्ति के मौक़े मिलते हैं जिससे उनके लिए सीखना अधिक ग्राही होता है। बच्चों के सुनने व बोलने का कौशल, अभिव्यक्ति कौशल बढ़ाता है, पढ़ने और लिखने की ओर वे आसानी से बढ़ते हैं। उनके लिए कुछ भी सीखना रुचिकर होता है, सीखना आनन्दमय होता है। जब बच्चे के कौशल में वृद्धि होती है तो आत्मविश्वास बढ़ता है और व्यक्तित्त्व में निखार आता है। वे स्वयं भी फ़ोन पर सुरक्षित सामग्री का भविष्य में पठन-पाठन में प्रयोग कर सकते हैं।

एक शिक्षक की भूमिका में काम करते हुए मैंने कई बार अनुभव किया है कि अभिभावक और गाँव में रहने वाले समुदाय के लोग यह कल्पना भी नहीं कर पाते कि वह भी बच्चों की शिक्षण प्रक्रिया में शामिल हो सकते हैं। ऑडियो बुक्स ऐसे लोगों के लिए काफ़ी कारगर सिद्ध हो सकती हैं। लोग कुछ नया सीखने के साथ-साथ अपने बच्चों की शिक्षण प्रक्रिया में भी शामिल हो सकते हैं। वे अपने अनुभव, कौशल व हुनर को रिकॉर्डेड प्रारूप में साझा कर सकते हैं। साथ ही शिक्षक द्वारा भेजी ऑडियो बुक्स को ख़ुद सुनकर समझ सकते हैं कि बच्चों से किस तरह से काम करवाना है और बच्चों से भी रिकॉर्डिंग करवाने में सहायता कर सकते हैं।

मेरा शिक्षण अनुभव

पहले हम वॉट्सएप रिकॉर्डिंग के माध्यम से ही संवाद कर रहे थे। फ़ोन को ध्यान से जानने-समझने पर वॉइस रिकॉर्डर का उपयोग करना, पॉज़ बटन (pause button) का उपयोग, कट (cut) करना आदि फ़ीचरों का इस्तेमाल करना सीखा।

सबसे पहले कहानी 'When the moon goes missing' को रिकॉर्ड किया, बार-बार ग़लती हुई। चूँकि कहानी लम्बी थी तो मैंने निश्चय किया कि उसे मैं ऐसे मोड़ पर छोड़ देती हूँ जहाँ से आगे बच्चे अपनी प्रतिक्रिया दें। तो एक प्रश्न देकर छोड़ दिया कि 'moon कहाँ मिला होगा?' वॉट्सएप ऑडियो और फ़ोन पर अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ मिलीं। बच्चों ने बोला कि उस रात अमावस्या होगी; चाँद मिला ही नहीं होगा, उसने तारों की मदद से खोजा होगा, आदि। चूँकि कहानी अँग्रेज़ी में थी तो मैंने भाव और आवाज़ के उतार-चढ़ाव पर फ़ोकस किया। सन्दर्भ को कोड मिक्सिंग में सेट किया जिससे बच्चे कहानी के सन्दर्भ को अच्छे-से समझ पाएँ।

पहली कहानी साझा करने के बाद मेरी समझ बनी कि अब छोटी कहानी का चुनाव करूँगी। अब दूसरी कहानी मैंने प्रथम पब्लिकेशन की 'Amachi's Amazing Machine' रिकॉर्ड की। इसमें अपेक्षाकृत कम कठिनाई आई, और समय भी कम लगा। बच्चे काफ़ी ख़ुश थे। परन्तु अब बच्चों का आकलन कैसे करूँ, यह समझ नहीं आ रहा था। अत: मैंने आगे की कहानियों में कुछ निर्देश डालने का निश्चय किया।

स्पष्ट निर्देशों के साथ और कोड मिक्स (code mix) में अँग्रेज़ी की कहानियों की रिकॉर्डिंग भेजने से समझ आया कि बच्चे कैसे और कितना समझ पा रहे हैं। दूरस्थ अधिगम (Distance Learning) की समस्याएँ भी समझ पा रही थी। और यह भी कि बच्चों से कैसे कक्षा में सरलता से संवाद स्थापित हो जाता है। यह भी समझ आया कि अधिकांश बच्चे हिन्दी की कहानियों में रुचि ले रहे हैं क्योंकि वे उन्हें आसानी से समझ पा रहे थे।

अँग्रेज़ी के लिए यहाँ पर मैंने एक और प्रयोग किया। Listening फ़िर speaking के स्थान

पर मैंने पहले Reading फ़िर listening और तब speaking तकनीक से कार्य किया। अँग्रेज़ी की एक कहानी को लिखकर या मुद्रित रूप में पहले उपलब्ध करवाया, फिर रिकॉर्डिंग भेजी तो बच्चों ने ज़्यादा रुचि दिखाई। तब अँग्रेज़ी कहानियाँ हिन्दी या कोड मिक्स में रिकॉर्डिंग करके बच्चों द्वारा साझा की गईं।

यह सब प्रयास बच्चों को ऑनलाइन शिक्षण प्रक्रिया से सार्थकता के साथ जोड़ने के लिए किए जा रहे थे, पर अभी भी कुछ बच्चे ऐसे थे जो रुचि नहीं ले रहे थे। उनके लिए उनकी माताओं का सहयोग लिया गया। चूँकि छोटे बच्चों को किसी की उपस्थिति चाहिए होती है, तो माताओं को तैयार किया गया कि वह अपने स्तर पर बच्चों को संलग्न कर पाएँ। जैसा कि मैंने पहले भी कहा, इसके लिए लोककथाओं, लोकगीतों, और लोकनृत्य का सहारा लिया। उदाहरणस्वरूप, कुमाऊँनी लोककथा 'काफल पाक्को मैं नहीं चाखों' किसी अन्य साथी से प्राप्त कर साझा की और माताओं को समझाया गया कि बच्चों को सुनाएँ और उसपर बातचीत करें। साथ ही बच्चों से और माताओं से भी उनके अनुभव एवं कहानियों की रिकॉर्डिंग करने को प्रोत्साहित किया। उन्होंने काफ़ी रुचि दिखाई। चित्र पठन और मास्क बनाने में भी उन्होंने मदद की और अपनी रिकॉर्डिंग एवं वीडियो साझा किए।

उक्त प्रकार से कार्य करते हुए मेरे द्वारा अब तक 16 कहानियों (6 अँग्रेज़ी एवं 10 हिन्दी) की ऑडियो बुक्स बनाकर बच्चों को उपलब्ध करवाई गई हैं। बच्चों के द्वारा उनकी कहानियों और लॉकडाउन अनुभवों की रिकॉर्डिंग वॉट्सएप ऑडियो के रूप में ग्रुप में साझा की गईं। बच्चों द्वारा साझा किए गए ऑडियो पर अन्य बच्चे भी अपनी प्रतिक्रिया रिकॉर्ड करके भेजते और इस प्रकार यह गतिविधि समूह में सीखने (peer–learning) का कार्य करती।

बच्चे वॉट्सएप ऑडियो तो आसानी से भेज रहे थे परन्तु ऑडियो रिकॉर्डिंग्स से परिचित करवाने के बाद और बेहतर काम करने लगे। यहाँ भी काफ़ी चुनौतियाँ आईं। शुरुआत में वे सभी वही ग़लतियाँ करते जो मैं कर रही थी। धीरे-धीरे वे अभ्यस्त हो गए और अब तक उनकी 25 से ज़्यादा ऑडियो बुक्स तैयार हैं। इस प्रक्रिया में 6 माताओं की काफ़ी सक्रिय भागीदारी रही। उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया देते हुए दूरस्थ अधिगम, ऑनलाइन शिक्षण और लॉकडाउन के अनुभवों को साझा किया। कुछ ने लोककथा, लोकगीत की रिकॉर्डिंग भेजीं, चित्र पठन पर बच्चों को कार्य करवाए और लोकनृत्य सिखाने का वीडियो भी साझा किया। वे इस प्रक्रिया से जुड़कर काफ़ी उत्साहित हैं। उनमें यह समझ बनी है कि वे स्वयं भी शिक्षण अधिगम में भागीदार बन सकती हैं।

इस प्रकार युवाओं ने स्वयं की क्षमताओं का उपयोग करते हुए गाँव में आए अन्य स्कूलों के बच्चों को एक्शन सॉन्ग, ड्रामेटाइज़ेशन, पज़ल और फ़्लैश कार्ड का इस्तेमाल करने में हमारे बच्चों के साथ जोड़कर और कुछ हद तक फ़ेसिलिटेटर का कार्य करते हुए अपना समय देते हुए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसमें सात युवा बच्चे एवं कक्षा 6, 7, और 8 के पाँच बच्चे भी शामिल हुए।

आगामी योजना

इस लेख को समाप्ति की ओर ले जाते हुए मैं एक बात रखना चाहूँगी कि यदि ऑनलाइन प्रक्रिया को सिर्फ़ वॉट्सएप ग्रुप में अधिगम सामग्री को साझा करने तक सीमित कर दिया जाए तो यह प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों को लम्बे समय तक न तो आकर्षित कर सकती है और न ही लाभदायक सिद्ध हो सकती है। अब हालात ऐसे हो रहे हैं कि बच्चे इस प्रकार भेजी गई सामग्री को देख तक नहीं रहे हैं और अभिभावक अलग परेशान हो रहे हैं।

दूसरी ओर हमारे संसाधनविहीन छात्र-छात्राएँ आभासी मंच (virtual platform) पर पूर्ण रूप से आ नहीं सकते, ऐसे में ऑडियो बुक्स उनकी रुचि को बनाए रखने और अधिगम को ख़ुशनुमा

कक्षाओं में बदलने में एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी माध्यम का कार्य करती हैं।

वर्तमान में जबकि पिथौरागढ़ में कोरोना संक्रमण जारी है, और प्रत्यक्ष रूप में बच्चों से मिलकर शैक्षिक प्रक्रिया सामान्य तरीक़े से संचालित करना सम्भव नहीं है तो मेरा प्रयास रहेगा कि ऑडियो बुक्स को एक प्रकार से सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम बनाकर समुदाय के सहयोग से बच्चों से निरन्तर संवाद क़ायम किया जाए। स्वयं एवं कई अन्य शिक्षक साथियों द्वारा तैयार पाठ्य सामग्री पर बच्चे अपनी प्रतिक्रिया लिखें और कुछ पर अपने ऑडियो बनाकर भेजें। रिकॉर्डिंग्स के माध्यम से हम आपस में संवाद बनाए रखें जिससे उनके लिए अधिगम उबाऊ न हो और एक अध्यापक मार्गदर्शक के रूप में मैं उनका आकलन भी कर पाऊँ। मेरा उद्देश्य है कि इस वर्ष के अन्त तक लगभग सब बच्चों के पास 10 से 15 ऑडियो बुक्स हों जिनमें उनके अनुभव और प्रतिक्रियाएँ दर्ज हों।

माताओं के हुनर भी ऑडियो रूप में दर्ज हों जो हमें भविष्य में अपनी कक्षाओं में आवश्यकतानुसार शिक्षण माध्यम के रूप में इस्तेमाल कर भाषा-समृद्ध वातावरण निर्माण एवं अन्य गतिविधियों में मदद करें। वे अधिक सक्रियता से भागीदारी कर पाएँ और स्वयं को अपने बच्चे की शिक्षा के एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में सशक्त बना सकें।

दीपा पाण्डेय ने 16 वर्षों तक उत्तराखंड के पर्वतीय अंचल पिथौरागढ़ के दूरस्थ नेपाल बॉर्डर पर स्थित राजकीय प्राइमरी विद्यालय मनकटिया में प्रभारी प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य किया है। वर्तमान में राजकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालय सकुन में शिक्षण कार्य कर रही हैं। बच्चों के स्वयं के अनुभवों को सीखने का आधार बनाना उनकी प्राथमिकता रही है। इन्हीं अनुभवों से कोविड-19 की विषम परिस्थिति में ऑनलाइन शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण तरीक़े से सम्पन्न करवाने का अवसर मिला है।

सम्पर्क : dp3763364@gmail.com

बालिका विद्यालय में जेंडर की निर्मिति और उसके सामाजिक निहितार्थ

रंजना

जेंडर एक सामाजिक निर्मिति है। हमारे समाज में जेंडर यानी लिंग भेदभाव की जड़ें बहुत गहरी हैं, जिसे हम रोज़मर्रा के जीवन में पल प्रतिपल देखते और महसूस करते हैं। जेंडर से जुड़ी असमानताएँ अन्य तरह के भेदभावों को भी जन्म देती हैं। यह लेख दिल्ली के एक सीमावर्ती प्राथमिक विद्यालय की दिनचर्या के सूक्ष्म अवलोकनों से पितृसत्तात्मक समाज के पोषण और बालिकाओं की बहिष्करण प्रक्रियाओं को टटोलते हुए जेंडर निर्मिति की परिस्थितियों को सामने रखता है। लेख यह प्रश्न भी उठाता है कि समतामूलक समाज बनाने में शिक्षा और शिक्षकों की महती भूमिका देखते हुए यह समझना लाज़िमी है कि विद्यालय में जेंडर निर्मिति के लिए किस तरह के अनुभव गढ़े जा रहे हैं, और ये पितृसत्ता को मज़बूत बनाते हैं या कमज़ोर करते हैं। सं.

हमारे समाज में लिंग भेद और उससे उपजे भेदभाव लगभग सभी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रक्रियाओं में गुँथे हुए हैं। समस्या महिलाओं या पुरुषों के अलग होने में नहीं, बल्कि पुरुषों को महिलाओं से प्रधान मान लेने में है। महिलाओं को पुरुषों से कम आँकने व उन्हें कम सुविधाएँ देने का चलन प्राचीन है। समाजीकरण की व्यवस्था इस भेदभावपूर्ण प्रक्रिया को निरन्तर पोषित करने का कार्य करती रही है, जहाँ लड़के व लड़कियों को ऐसे परम्परागत समाज के लिए तैयार किया जाता है और उन्हें उनकी जेंडर[1] भूमिकाएँ सिखाई जाती हैं।

भारतीय संविधान के मूल में समानता की नींव रखते हुए महिलाओं व पुरुषों को बराबरी तक पहुँचाने का स्वप्न स्वतंत्र भारत में देखा गया परन्तु उस समय हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय थी। क़ानूनी रूप से बराबरी का अधिकार व सामाजिक रूप से अत्यन्त पिछड़े दर्जे ने महिलाओं के सैद्धान्तिक अधिकार व सामाजिक सच्चाई में एक गहरी खाई पैदा कर दी और शिक्षा को उस खाई को भरने का माध्यम माना। तभी से लगभग सभी शैक्षिक योजनाओं, प्रारूपों, नीतियों व क़ानूनों में लिंग-आधारित असमानता को हटाने का विचार चलता आ रहा है और महिलाओं की स्थिति सुधारने के तरीक़े सुझाए जाते रहे हैं। साथ ही, शिक्षा को सामाजिक व पारिवारिक सन्दर्भों में महिलाओं की स्थिति सुधारने और अपनी क्षमताओं को उपयोग करने का एक सशक्त माध्यम माना गया।

यदि शिक्षा और शिक्षक को समतामूलक समाज बनाने वाले एक बदलाव के एजेंट के रूप में देखें तो यह देखना महत्त्वपूर्ण होगा कि विद्यालयों में जेंडर निर्मिति की किस तरह की प्रक्रियाएँ चल रही हैं और उससे सम्बन्धित किस प्रकार के अनुभव गढ़े जा रहे हैं। क्या ये शैक्षिक अनुभव पितृसत्तात्मक समाज की

1. जेंडर एक सामाजिक निर्मिति है जो बच्चा, समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज के नियम एवं मानदण्डों को सीखता और व्यवहार में लाता है।

रूढ़िगत नीतियों को चुनौती दे पा रहे हैं या उन्हें और मज़बूती प्रदान कर रहे हैं। इसके लिए इस लेख में एक विद्यालय के कुछ अवलोकन साझा किए जा रहे हैं, जो विद्यालयी प्रक्रियाओं व शिक्षक की भूमिका को जेंडर के सम्बन्ध में टटोलने में विमर्श का आधार बनेंगे।

क्रियाएँ एवं व्यवहारों का समाजीकरण

यह विद्यालय एक प्राइमरी सरकारी विद्यालय है जो दिल्ली शहर की सीमा पर स्थापित है। यह विद्यालय दो पालियों में चलता है। सुबह में लड़कियों की पाली और दोपहर में लड़कों की पाली। हमारे अवलोकन प्रथम पाली से लिए गए हैं। प्रथम पाली में लड़कियाँ पढ़ती हैं और यहाँ सभी शिक्षक महिलाएँ हैं। दैनिक प्रक्रिया में पुरुषों की उपस्थिति विद्यालय में किसी छात्रा के अभिभावक, पिता, भाई, चाचा, मामा या नाना-दादा के रूप में होती है और एक बार तब जब 'मिड-डे मील' का वाहन विद्यालय के दरवाज़ों से अन्दर आता है। इसके अलावा बहुत कम अवसरों पर पुरुष विद्यालय के भीतर आते हैं। जैसे किसी दूसरे विद्यालय से किसी पुरुष अध्यापक का किसी काम से आना या निरीक्षण और अन्य कार्य हेतु किसी पुरुष अफ़सर का आना आदि। परन्तु फिर भी अध्यापिकाओं के मन में पुरुष व पुरुष समाज का भान हर एक पल रहता है, जिसके लिए निरन्तर तैयारी चलती रहती है। उदाहरणस्वरूप, प्रार्थना सभा में जब बच्चियाँ बैठती थीं तो अध्यापिकाओं का ध्यान अधिकतर इस बात पर होता था कि सभी लड़कियाँ सलीक़े से अपनी स्कर्ट को बँटोरकर इस प्रकार बैठी हैं या नहीं कि उनके घुटने एक दूसरे से मिले रहें और घुटने से ऊपर का हिस्सा एकदम स्कर्ट से कसा हुआ हो, जिससे घुटने के ऊपर के शरीर का कोई भाग दिखने की सम्भावना शून्य हो जाए और लड़कियाँ सिमटकर कम जगह में बिना हिले बैठकर प्रार्थना सभा की गतिविधियों में शामिल रहें। यहाँ यह दोहराना ज़रूरी है कि यह एक प्राइमरी विद्यालय है, जहाँ सिर्फ़ लड़कियाँ पढ़ती हैं और स्टाफ़ में केवल महिला अध्यापिकाएँ हैं। बैठने के तरीक़ों (जैसे– पैर खोलकर बैठना और स्कर्ट को छोड़कर पैर मोड़कर बैठना जिससे उनके घुटने से ऊपर के शारीरिक भाग व स्कर्ट के अन्दर पहने कपड़ों के दिखने की सम्भावना बढ़ जाती है) पर कई बार प्रार्थना सभा में ही कुछ लड़कियों को अध्यापिकाओं द्वारा झिड़क दिया जाता था और कुछ शब्द, जैसे– शर्म नहीं है, अक़्ल नहीं है, तमीज़ नहीं है, आदि के रूप में कठोर भाषा का प्रयोग कर उनके बैठने के तरीक़े को ठीक किया जाता था। पुरुषों की भौतिक रूप में उपस्थिति न होते हुए भी उनकी उपस्थिति अध्यापिकाओं की अपेक्षाओं, उनके प्रशिक्षण व लड़कियों के व्यवहार में साफ़ दिखाई देती है। ये अपेक्षाएँ व प्रशिक्षण, कि लड़की को कैसे बैठना है, कैसे बोलना है, कैसे चलना है, क्या पहनना है, कैसे पहनना है, एक अर्थ में पितृसत्तात्मक समाज का भरण पोषण कर रहा होता है।

बहिष्करण की प्रक्रिया

जिन लड़कियों के मासिक धर्म कक्षा चौथी या पाँचवीं में शुरू हो गए थे उनके शरीर की बनावट झलकने लगी थी। अध्यापिकाओं द्वारा उनके एक तय आयु[2] से पहले शारीरिक परिपक्वता को हीन दृष्टि से देखा जाता था और उस भाव को उन लड़कियों तक सम्प्रेषित भी किया जाता था। सम्प्रेषित करने के अलग-अलग तरीक़े देखे गए, जिसे प्रत्यक्ष रूप से न कहकर कुछ अलग तरह से कहा जाता था। जैसे– लड़कियों की स्कर्ट छोटी होने की बात करना, उनकी कमीज कसी (टाइट) होने की शिकायत, उनके बाल बनाने के तरीक़े पर टिप्पणी या विद्यालय में बेवजह घूमने को लेकर शिकायत आदि। साथ ही जब किसी प्रतियोगिता या कार्यक्रम के लिए कुछ बच्चों को विद्यालय से बाहर लेकर जाया जाता

2. तय आयु पहले 13 वर्ष मानी जाती थी, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से 10 वर्ष की आयु में भी मासिक धर्म का आना सामान्य माना गया है।

था तो उनके चयन का एक पैमाना लड़की का शारीरिक विकास भी होता था। ऐसा माना जाता था कि अगर शारीरिक परिपक्वत्ता प्राप्त कर रही लड़कियों को साथ ले गए तो वहाँ कुछ दुर्घटना होने की सम्भावना बढ़ जाएगी। दुर्घटना से यहाँ तात्पर्य लड़कियों के साथ पुरुषों द्वारा छेड़छाड़ से है क्योंकि ऐसी प्रतियोगिताओं एवं कार्यक्रम में लड़के विद्यार्थी व पुरुष अध्यापक भी मौजूद होते हैं। यहाँ यह धारणा भी है कि छेड़छाड़ के मामले लड़कियों की शारीरिक बनावट की तरफ़ आकर्षण से होते हैं और यह डर भी कि अगर ऐसा कुछ हो गया तो उसकी ज़िम्मेदारी उस अध्यापिका की मानी जाएगी जो लड़कियों के साथ जाती है। इसलिए ऐसी किसी अनचाही दुर्घटना व पेचीदे मामले में फँसने के डर से लड़कियों को विद्यालय में ही रहने दिया जाता था। विद्यालय के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी शारीरिक बनावट को प्राप्त करती हुई लड़कियों (किशोरियों) को नृत्य जैसे कार्यक्रम में शामिल नहीं किया जाता था। उसकी बजाय उन्हें समूह गान या अन्य कार्यक्रमों में, जिनमें शारीरिक संचलन की आवश्यकता नहीं होती थी, जोड़ लिया जाता था। ऐसा इसलिए किया जाता था क्योंकि अधिक लम्बी अवधि से कार्यरत अध्यापिकाएँ नृत्य करते समय शारीरिक संचलन को अश्लील मानती थीं, जो कई बार उनके द्वारा की गई भद्दी टिप्पणी से स्पष्ट झलकता था, जैसे– 'इसका शरीर बढ़ रहा है ये नाचते हुए उछलेगी तो भोंडी लगेगी', 'ये तो पूरी औरत लगेगी डांस के कपड़ों में', 'बस डांस करा लो, पढ़ाई में तुम्हारा मन लगता नहीं है नाच-गाना और फ़ैशन ही रह गए हैं'। ग़ौर करने वाली बात यह भी है कि इन टिप्पणियों में सिर्फ़ शारीरिक बनावट प्राप्त करती 'लड़की विद्यार्थी' को ही जगह नहीं मिलती थी बल्कि विद्यालय में कार्यरत अन्य छोटी उम्र व 'कम अनुभवी अध्यापिकाओं' (जिनका नौकरी में अनुभव कम वर्षों का है) की जगह भी शामिल थी। छोटी उम्र व कम अनुभवी अध्यापिकाओं के कपड़ों, दुपट्टा डालने के तरीक़ों व शरीर के अंगों पर भी टिप्पणी जैसे– 'ये सूट कितना टाइट है, ढीले कपड़े अच्छे लगते हैं टीचर्स पर', 'बिना दुपट्टा मत रहा करो, तुम्हें तो पता ही है माहौल कैसा है आजकल, अपनी सेफ़्टी अपने हाथ है', 'ये तो कुछ भी पहन ले इसकी बॉडी लैंग्वेज ही अजीब है', आदि चलते फिरते सुनी जा सकती थीं। यहाँ पुनः याद दिलाना चाहूँगी कि यह सभी महिलाओं वाला विद्यालय है, अतः टिप्पणियाँ महिलाओं की तरफ़ से अन्य महिलाओं व विद्यालय में पढ़ने वाली लड़कियों के लिए आती थीं। इस प्रकार यहाँ महिलाओं द्वारा पुरुष समाज की रचना पुरुषों से बचाने के कर्तव्य के रूप में रचते हुए समझी जा सकती है। लड़कियों की शारीरिक बनावट को समाज से छुपाकर रखना और शारीरिक परिपक्वता की ओर बढ़ती हुई लड़की को धीरे-धीरे सामाजिक आँखों से ओझल कर देने की प्रक्रिया इस विद्यालय के साथ हमारे परिवारों में भी घटित होती है। जिस प्रकार यहाँ लड़की के शरीर को दुर्घटना होने की सम्भावना के रूप में देखा जा रहा है और उसके चलते उसे विद्यालयी गतिविधियों से दरकिनार कर दिया जा रहा है, उसी प्रकार हमारे घरों में भी जब लड़की बड़ी होने लगती है तो वो पारिवारिक चहल-पहल से भी दरकिनार कर दी जाती है और उसे घर में कुछ विशेष जगहों तक सीमित कर दिया जाता है। मेहमानों का घर में आना हो या किसी युवक का, लड़की को दूसरे कमरे में भेज दिया जाता है। किसी समारोह में जाना हो तो उसको घर की रखवाली या निगरानी का ज़िम्मा दिया जाता है। सामाजिक

> जब किसी प्रतियोगिता या कार्यक्रम के लिए कुछ बच्चों को विद्यालय से बाहर लेकर जाया जाता था तो उनके चयन का एक पैमाना लड़की का शारीरिक विकास भी होता था। ऐसा माना जाता था कि अगर शारीरिक परिपक्वत्ता प्राप्त कर रही लड़कियों को साथ ले गए तो वहाँ कुछ दुर्घटना होने की सम्भावना बढ़ जाएगी। दुर्घटना से यहाँ तात्पर्य लड़कियों के साथ पुरुषों द्वारा छेड़छाड़ से है

गतिविधियों से बहिष्करण की प्रक्रिया दोनों जगह पर प्रभावी है, चाहे वो विद्यालय में घटित हो रही हो या घर में। बहिष्करण की यह प्रक्रिया जिस प्रकार विद्यालय में शारीरिक बनावट को प्राप्त करती लड़कियों की मुख्य गतिविधियों में अनुपस्थिति के रूप में दर्ज होने लगती है, उसी प्रकार सार्वजनिक स्थलों (जैसे– पार्क, दुकान, सड़क, मेला व अन्य कार्यक्रम) से किशोरियों की अनुपस्थिति के रूप में भी देखी जा सकती है। यह अनुपस्थिति न केवल भौतिक रूप में होती है अपितु उस जगह व वहाँ होने वाली अन्त:क्रियाओं से लड़कियाँ, उनके विचार, आकांक्षाएँ व उनकी समस्याएँ भी ग़ायब हो जाती हैं। जो किशोरियाँ इस बहिष्करण की प्रक्रिया को धता बताते हुए अपनी ज़िद पर सार्वजनिक जगहों में उपस्थिति दर्ज करती हैं, समाज उनके चरित्र को सन्देह की दृष्टि से देखता है।

बालिकाओं का विदाई समारोह

सत्र के अन्त में पाँचवीं कक्षा को दिए जाने वाले विदाई समारोह पर विचार विमर्श करते हुए प्रत्येक वर्ष विद्यालय की अधिक अनुभवी अध्यापिकाओं द्वारा यह प्रस्ताव रखा जाता था कि लड़कियाँ अपने विद्यालय की यूनिफ़ॉर्म में ही आएँ, क्योंकि घर के कपड़ों में जब वे सज-सँवर कर विदाई समारोह के लिए आती हैं तो वे और बड़ी यानी कि परिपक्व और आकर्षक लगती हैं। ऐसे में वह राहगीरों से अवांछनीय आकर्षण ग्रहण करती हैं। लड़कियाँ नासमझ व उतावली तो हैं ही साथ में अगर किसी का पुरुष मित्र है तो उसके साथ विद्यालय से वापस लौटते समय घूमने ज़रूर जाएगी या वह फ़ोटोग्राफ़र की दुकान पर फ़ोटो खिंचवाने ज़रूर जाएगी, इसलिए विद्यालय यूनिफ़ॉर्म में हम इस प्रकार की कोई भी घटना को घटित होने से रोक सकते हैं। यानी समस्या लड़कियों के शरीर, कपड़े व उनके आकर्षक लगने की है न कि लड़कों के व्यवहार व मानसिकता से सम्बन्धित। कहीं-न-कहीं पुरज़ोर कोशिश यह है कि लड़कियाँ अपने शारीरिक विकास का इल्म किसी और को न होने दें, जिसके लिए उसे अपने शरीर के अंगों को अच्छे-से ढँक लेना है और यह उसकी ही ज़िम्मेदारी है। अगर वह ऐसा कर पाने में असमर्थ है तो उसका ख़ामियाज़ा उसे भुगतना पड़ सकता है।

लड़कियों के शारीरिक विकास व उसकी बनावट को सहज न मानकर एक गुनाह की भाँति करार दे देना, उनकी शारीरिक परिपक्वता को बोझ बना देना और उसे एक ख़तरे की भाँति देखते हुए ज़्यादा कड़ी निगरानी रखना व अपने-आप सामाजिक ज़िम्मेदारी लेना कि लड़की कुछ ग़लत न कर बैठे या इसके साथ कुछ ग़लत न हो जाए, पितृसत्तात्मक समाज की निर्मिति है, जिसका बीड़ा समाज की अनुभवी महिलाएँ उठा रही हैं और यहाँ विद्यालयी सन्दर्भ में अध्यापिकाएँ।

आश्चर्य की बात ये थी कि यही अध्यापिकाएँ अपने कहने या करने को लड़कियों व उनके परिजनों को लड़की के भले के लिए उठाए गए क़दम के रूप में प्रस्तुत करती थीं जिससे लड़कियों के अभिभावक भी सहमति रखते थे। इसके तीन कारण थे– पहला, इस विद्यालय में पढ़ने वाली लड़कियाँ अधिकतर प्रथम पीढ़ी की थीं जो शिक्षा के लिए विद्यालय आई थीं। यानी इनके अभिभावक कभी विद्यालय नहीं गए और वे विद्यालय को मन्दिर और अध्यापिकाओं को भगवान का दर्जा देते थे, इसलिए उनकी कही हर बात को अपनी लड़की की भलाई के लिए कही बात जैसा मानते थे। दूसरा, अभिभावक इसलिए भी सहमति रखते थे क्योंकि ये प्रक्रियाएँ व अपेक्षाएँ हमारे सामाजिक मानदण्डों से मेल खाती हैं, इसलिए उनको चुनौती देने की जगह वहाँ थी ही नहीं। तीसरा, अध्यापिकाओं व अभिभावकों की सहमति लड़कियाँ प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जानती थीं, इसलिए कोई बड़ा प्रतिरोध उनकी तरफ़ से आया नहीं। लेकिन इन पूरी प्रक्रियाओं, संकेतों व हिदायतों का लड़कियों पर प्रभाव इस प्रकार देखा गया कि वे उन अध्यापिकाओं के सामने जाने से बचती

थीं, जो उन्हें शारीरिक बनावट के लिए अलग-अलग तरह से टोकती थीं। ये लड़कियाँ प्रार्थना सभा में न आकर कक्षा में बैठना पसन्द करती थीं। कॉरिडोर में चलते हुए सामने से किसी अध्यापिका के आने से वापस लौटकर वे रास्ता बदलते हुए अपनी कक्षा में पहुँचती देखी गईं। ये छोटे-छोटे तरीक़े थे जिनके द्वारा वे अनचाही शिकायतों व टिप्पणी से बचने का प्रयास करती थीं। कई मौक़ों पर ज़्यादा भद्दी टिप्पणी सुनने पर वे रो देती थीं। उन्हें विद्यालय की कुछ जगह में ही सिमटने के रूप में देखा गया, जैसा कि लड़कियों से अपेक्षित भी होता है। अन्ततः लड़कियाँ अपने शरीर को छुपाकर रखना सीख लेती हैं। शायद इसी बहिष्करण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप लड़कियाँ अपनी ज़रूरतों, आकांक्षाओं, और विचारों को दबाना भी सीख लेती होंगी क्योंकि इन सब मुद्दों पर बात करने के मौक़े भी इस विद्यालय में नदारद ही थे।

प्रसाद वाला फल

एक मौक़े पर देखा गया कि एक लम्बे समय से कार्यरत अध्यापिका अपनी चौथी कक्षा में उन सभी लड़कियों को केले बाँटती हैं जिन्होंने उस दिन व्रत (नवरात्रि का पहला दिन) रखा था। इसके पीछे उनका मत था कि इससे पुण्य मिलता है। यह अकेला वाक़या काफ़ी है यह समझने के लिए कि शिक्षक किस प्रकार पितृसत्तात्मक समाज का ही एक नुमाइन्दा या प्रतिनिधि है, जो सामाजिक व धार्मिक मूल्यों का पुनरुत्पादन कक्षा में करता है। इस अध्यापिका का यह व्यवहार लड़कियों तक सन्देश पहुँचाने के लिए काफ़ी है कि व्रत रखना उनके लिए सबसे अच्छा आचरण है। अगर अध्यापिका इस कर्म से पुण्य कमा रही हैं तो उन्हें ख़ुद व्रत रखने में कितना अधिक पुण्य मिलेगा। इस तरह की पुरस्काररूपी चीज़ें देना भी कुछ ही अवसरों पर होता होगा। अब ये अध्यापिका पर निर्भर है कि वह कौन-से अवसर एवं व्यवहार चुनती हैं। यहाँ यह चयन एक धर्म के दायरे में किसी ख़ास त्योहार के सन्दर्भ में है। पारिवारिक स्तर पर भी हिन्दू धर्म में नवरात्रि और हवन जैसे कुछ अवसर होते हैं, जहाँ लड़कियों को पूजा जाता है और उनके लिए विशेष भोज तैयार किया जाता है। जबकि अन्य सामान्य अवसरों पर चाहे लड़कियों के पोषण को नज़रअन्दाज़ कर दिया जाता हो।

जबकि दूसरी ओर वह अध्यापिका भी हैं, जो बच्चों के बोल्ड और शारीरिक व मानसिक रूप से मज़बूत होने को लेकर प्रयासरत हैं। वह अध्यापिका भी अपनी कक्षा की उन लड़कियों से बात करती हैं जिन्होंने उस दिन व्रत रखा। अध्यापिका कहती हैं– "तुम अभी छोटी हो तुम्हारे शरीर को खाने की ज़रूरत है।" फिर
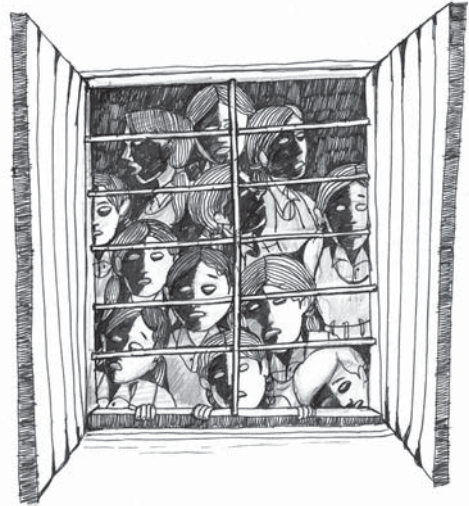
चित्र : हीरा धुर्वे

वह पूछती हैं– "अच्छा बताओ, तुम्हारे घर में और किसने व्रत रखा?" इसके जवाब में माताएँ, बहनें, बुआ, चाची, मामी जैसे नाम आते हैं। इसके जवाब में अध्यापिका कहती हैं– "अगर व्रत रखना इतना ही अच्छा है तो तुम्हारे भाई और पापा क्यों नहीं रखते व्रत? ऐसा कौन-सा भगवान है जो छोटे-छोटे बच्चों को भूखा देखकर ख़ुश होगा?" ऐसा कहते हुए अध्यापिका इन बच्चियों को अपना-अपना टिफ़िन लेकर विद्यालय में मिड-डे मील बाँटने वाली जगह लेकर जाती हैं। जो लड़कियाँ टिफ़िन नहीं लाईं,

वे दूसरी लड़कियों से उनके टिफ़िन का ढक्कन लेकर मिड-डे मील लेने जाती हैं।

अगर ऊपर दिए केलानुमा पुरस्कार का विश्लेषण करें तो इसका परिणाम हो सकता है कि जिन लड़कियों ने व्रत नहीं रखा, शायद अगली बार रखें। यह एक अनुभव लड़कियों के जीवन व समाज और रीति-रिवाजों के देखने व व्यवहार में लाने की प्रक्रिया पर गहन प्रभाव छोड़ दे। और अगर अध्यापिका 'Motherteacher' है तो उसके विचारों, अपेक्षाओं, कृत्यों और धारणाओं का विद्यार्थियों पर प्रभाव अत्यन्त गहरा होगा। बचपन के 5 वर्ष की आयु से लेकर 10 वर्ष पूरे करने तक बच्चा एक ही अध्यापिका से सभी विषय पढ़ता है और उसी से अन्त:क्रिया करता है। इस प्रभाव का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि बच्चा एक ही अध्यापिका की छत्र-छाया में अपना पूरा संसार रच लेता होगा। इन पाँच वर्षों में ऐसे कितने ही कृत्य, व्यवहार और उम्मीदें अध्यापिका द्वारा दोहराई जाती होंगी। क्रियाओं का दोहराव उनको और मज़बूती प्रदान करता है।

उपरोक्त घटना में एक बात और सतही स्तर पर जुड़ती है कि यहाँ व्रत जैसे धार्मिक कृत्यों को शुद्धता से जोड़कर लड़कियों के शरीर से चिपका देना और धार्मिक कृत्यों के लिए लड़कियों को उपयुक्त प्राणी मानने की धारणा हावी है। मासिक धर्म आते ही शारीरिक बनावट उसके लिए हीन हो जाती है और शुद्धता से चिपके व्रत जैसे कृत्य उसके ज़िम्मे ही आते हैं, जबकि पोषण के रूप में उसके खाने व शारीरिक विकास की ज़रूरत पर ध्यान नहीं जाता है। एक अध्यापिका अपनी कक्षा का अनुभव साझा करती हैं, जब एक तीसरी कक्षा की लड़की ने बताया कि 'मेरे घर में जब कुछ अच्छी सब्ज़ी बनती है और बच जाती है, बाद में मेरे भाई को ही दी जाती है तो मुझे बुरा लगता है।' हमारे परिवारों में दूध, जिसे शारीरिक के साथ मानसिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है, पर पहला अधिकार लड़के का होता है। लड़कियों के यह अनुभव बताते हैं कि किस प्रकार घर में पोषण लिंग भेदभाव के रूप में उपस्थित रहता है।

खेल का मैदान और भविष्य को लेकर डर की उपस्थिति

अवलोकन के दौरान यह पाया गया कि विद्यालय में खेल के मैदान का न होना किसी समस्या के रूप में नहीं उभरता। यहाँ खेल का मैदान मिट्टी व घास मैदान को कहा जा रहा है, जहाँ खेलते समय गिरने पर बच्चों को चोट न लगे। जिस विद्यालय के अवलोकन मैंने ऊपर साझा किए हैं वहाँ खेल का मैदान नहीं है, लेकिन कंक्रीट का एक मैदान है जहाँ प्रार्थना सभा होती है। यह मैदान लड़कियों के खेलने के लिए ख़तरे की तरह देखा जाता है, जबकि दूसरी पाली में पढ़ने वाले लड़के इसी मैदान पर दौड़ते, लुढ़कते और चीखते-चिल्लाते हुए खेलते हैं। लड़कियों के लिए ऐसा क्या अलग है इस मैदान में कि उन्हें आधी छुट्टी में भी कक्षाओं के भीतर रहने की ही हिदायत दी जाती है? गहराई से सोचने पर दो बिन्दु उभरते हैं। पहला, लड़कियों को उनकी जेंडर भूमिका को सिखाने के लिए उनके व्यवहार को सुधारना। वे कक्षा की चारदीवारी के दायरे में रहकर शान्त बैठना व अपने-आप को छोटी जगह में समाहित करना सीखती हैं। अपनी डेस्क पर उन्हीं खेलों को खेलती हैं जो छोटी जगह में आराम से बैठकर खेले जा सकते हैं। यह निश्चित ही आक्रामक खेल तो कभी नहीं हो सकते। दूसरा, अध्यापकों के अन्दर का डर कि अगर किसी लड़की के चेहरे पर चोट लग गई या उसकी कोई हड्डी टूट गई तो उसके रूप व शरीर को क्षति पहुँच जाएगी। इस डर को अध्यापक और लड़कियों के अभिभावक सामाजिक स्तर पर समान रूप से महसूस करते हैं। इस डर की उपज भविष्य में घटने वाली घटनाओं के रूप में भी देखी जा सकती है। लड़की की नियति 'विवाह' में ही देखी जाती है और विवाह की आयु पर पहुँचने तक उसके शरीर व रूप का विशेष ध्यान रखा जाता है, ताकि विवाह

की प्रक्रिया या उचित वर व ससुराल ढूँढ़ने में परेशानी न आए। लड़कियों के ख़तरे लेने के व्यवहार (risk taking behaviour) व शारीरिक रूप से सक्रिय खेलों और गतिविधियों में उनके भविष्य के सुनहरे अवसरों की कल्पना नहीं की जाती क्योंकि जेंडर भूमिकाओं के अनुसार इसमें लड़के ज़्यादा जँचते हैं।

सम्भावनाओं का होना

इसी विद्यालय की कक्षा में देखा गया कि अध्यापिका लड़कियों को विभिन्न खेल खेलने को प्रेरित करती हैं और साथ ही लड़कियों को स्कर्ट के नीचे पायजामा पहनने या घर से बैग में रखकर लाने और पायजामा पहनकर खेलने का मौक़ा देती हैं, ताकि लड़कियाँ बिना किसी रुकावट और शरीर के दिखने की चिन्ता व अन्देशा छोड़कर खेल का लुत्फ़ उठाएँ। परन्तु पूरे विद्यालय में ऐसा केवल दो अध्यापिकाओं द्वारा कराया जाता था। बात करने पर पता चला कि उन दोनों की रुचि खेलों व शारीरिक गतिविधियों में है इसलिए वे अपनी कक्षा की लड़कियों को भी खेलने के मौक़े देना पसन्द करती हैं, और लड़कियों के अभिभावकों को भी उन्हें खेलने के लिए समय देने के लिए प्रेरित करती हैं। इनमें से एक अध्यापिका 'फ़िज़िकली चैलेंज्ड' हैं और उनका कहना था, "मैं बच्चों को बताना चाहती हूँ कि अगर आप ठान लो तो यह छोटी-मोटी कमियाँ (शारीरिक कमी) मायने नहीं रखतीं। लड़कियों को 'बोल्ड' होना चाहिए। ताक़तवर होना चाहिए।" इनके जज़्बे व प्रयास का ही असर है कि इनकी कक्षा की लड़कियाँ विद्यालय में होने वाले खेलों में हमेशा अव्वल आती हैं व कुछ खेलों, जैसे– खो-खो, बैडमिंटन व कबड्डी, के सभी नियम भी जानती हैं। इन्होंने बताया कि लड़कियों के अभिभावक पहले ऐतराज़ करते थे जब उनकी लड़की को चोट लग जाती थी, परन्तु उनको समझाने और लड़की की खेल में रुचि होने को देखते हुए अब कुछ अभिभावक लड़कियों के खेलने को लेकर चिन्तित नहीं होते और इस अध्यापिका की पूरी कोशिश होती है कि खेलते वक़्त कोई दुर्घटना न होने पाए। वहीं कुछ अभिभावक अपनी लड़की को न खेलने देने के लिए एकदम अडिग थे। ऐसी स्थिति में उन लड़कियों को कक्षा के भीतर ही (indoor game) कोई दूसरा खेल खेलने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता था।

> अगर शिक्षा को समतामूलक मानें, जो पाठ्यपुस्तक व पाठ्यक्रम द्वारा विद्यालय में दी जाती है या उसका पोषण होता है, तो शिक्षक होना ऐसे बाहरी पूर्वाग्रहों, धारणाओं व सामाजिकमानदण्डों को अपने ऊपर हावी होने से रोकना है जो शिक्षा व संवैधानिक मूल्यों से मेल नहीं खाते।

लड़कियों को न खेलने देने के लिए अभिभावकों पर अनचाहे समय में एक आर्थिक बोझ भी बड़ा कारण था। चोट लगने पर लड़की का इलाज कराना परिवार की आर्थिक स्थिति को और बिगाड़ देता था, साथ ही लड़की का घर के कामों में हाथ बँटाना या अपने भाई-बहनों की देखभाल करने से होने वाली सहूलियत को भी ख़त्म कर देता था, बल्कि ऐसी स्थिति में लड़की की देखभाल करने के लिए माँ का अपना काम छोड़ घर पर रहना प्रतिदिन आ रहे मेहनताने को भी आधा कर देता था। परन्तु देखने वाली बात ये है कि परिवार लड़के के लिए ऐसा ख़तरा उठाने को तैयार रहता है, क्योंकि लड़के का शारीरिक रूप से सक्रिय होना सहज व उसकी प्रकृति के हिस्से के रूप में देखा जाता है जिसको नियंत्रित करना सम्भव व जायज़ नहीं है। इसलिए खेलों के सांस्कृतिक व सामाजिक आयामों के साथ आर्थिक आयाम को समझना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस अध्यापिका की सोच व उसका क्रियान्वयन शारीरिक बल के साथ मानसिक बल के लिए भी लड़कियों को तैयार करता हुआ नज़र आता है। परन्तु यह

सागर में एक बूँद की तरह और यही बूँद जैसी दिखने वाली कोशिशें, सम्भावनाओं को ज़मीनी हक़ीक़त प्रदान करती हैं, और पितृसत्ता पर आधारित सामाजिक रीतियों को चुनौती देती हैं।

समाज की पुनर्रचना या पुनरुत्पादन

उपरोक्त लिखित सभी घटनाएँ व उनका अवलोकन विद्यालय में बुने जा रहे अनुभवों का एक दृश्य अंकित करते हैं और ऐसे कई बिन्दुओं को रेखांकित करते हैं जो शिक्षा के अनुभवों को बुनने की प्रक्रिया में चिन्ता की भाँति उभरते हैं और कई प्रश्न छोड़ जाते हैं।
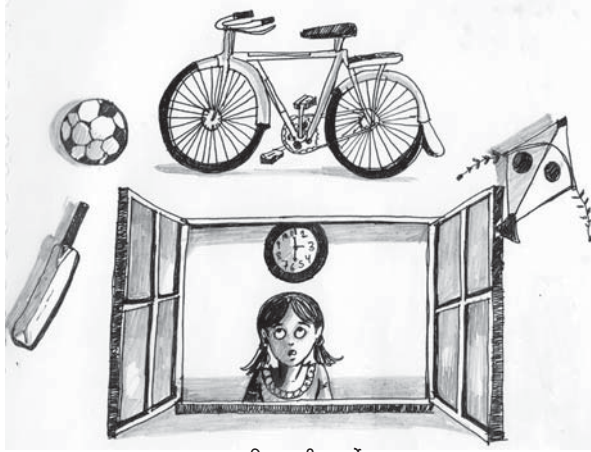
चित्र : हीरा धुर्वे

इनमें सर्वप्रथम चिन्ता है विद्यालय में सामाजिक मानदण्ड (societal norms) जो पितृसत्तात्मक समाज की नींव से उपजे हैं, उनका ज्यों का त्यों क्रियान्वयन यानी पुनरुत्पादन। विद्यालय को समाज के एक सूक्ष्म परिदृश्य के रूप में देखा जाता रहा है ताकि विद्यालय वो जगह बने, जहाँ समाज से सम्बन्धित समस्याओं और उनकी स्थितियों को समझा जा सके। परन्तु विद्यालय, विद्यालयी समाजीकरण द्वारा उन्हीं पूर्वाग्रहों व व्यवहारों को पोषित करता नज़र आ रहा है जैसा हूबहू हमारे समाज में हो रहा है। बस कुछ ही ऐसी जगहें व कक्षाएँ हैं जहाँ लड़कियों को ऐसे पूर्वाग्रहों व व्यवहारों से इतर मज़बूत व शारीरिक रूप से गठित और विकसित करने का प्रयास हो रहा है।

यहाँ यह अर्थ कतई नहीं है कि हमारा समाज बदलाव की ओर अग्रसर नहीं है, अपितु बदलाव की गति अत्यन्त धीमी है। विद्यालयों का यूँ सामाजिक मानदण्डों और जेंडर भूमिकाओं को पोषित करना भी समाज में बदलाव की धीमी गति का एक बड़ा कारण हो सकता है।

इसी प्रक्रिया की एक मज़बूत कड़ी हैं अध्यापक, जो विद्यालयी समाजीकरण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। विद्यालयी प्रक्रियाओं से इंगित होता है कि ज़्यादा अनुभवी अध्यापिकाओं पर सामाजिक मानदण्ड गहन रूप से हावी हैं। अध्यापिकाएँ इसी समाज व इसमें स्थित परिवारों में रची बसी हैं जहाँ वे माताएँ, पत्नी, बेटी व बहू के रूप में हैं और जीवन के लम्बे अनुभव के दौरान व अपने निजी अनुभवों की निर्मिति से जो समझ उन्होंने बनाई है, वह विद्यालय का दरवाज़ा पार करते ही नहीं बदल सकती। लम्बा अनुभव ही सम्भावित दुर्घटनाओं की कल्पना उनके मन में करता है। वही कल्पना वर्तमान में एक डर बनकर जीवित रहती है। डर की उपस्थिति ही विद्यालय के माहौल को निर्मित करती है और ऐसी गतिविधियाँ लड़कियों के दैनिक जीवन से हटा ली जाती हैं, जिसमें उनके भविष्य को ख़तरा माना है। जैसे– कंक्रीट के मैदान में खेलने से चोट लगने की सम्भावना अन्ततः अच्छा वर व ससुराल न मिलने के डर से संचालित होती है, जिससे वर्तमान समय में कक्षा के भीतर रहना ही उनकी भलाई के रूप में देखा जाता है।

बार-बार सामाजिक मानदण्डों व उनके अनुरूप व्यवहारों को सींचना, उसके लिए प्रेरित करना जैसे– व्रत रखने पर केला देना, लड़कियों को स्कर्ट समेटने के लिए बार-बार कहना और शारीरिक बनावट को प्राप्त करती लड़की का भौतिक जगह में रहते हुए ग़ायब हो जाना जैसे व्यवहार ठोस होते जाते हैं। अध्यापिका द्वारा विशेष व्यवहारों, संकेतों एवं क्रियाओं की शृंखला

का दोहराव अपेक्षित व्यवहारों को अधिक सुदृढ़ करता जाता है।

ये जेंडर प्रक्रियाएँ जो सामाजिक मानदण्डों को स्थापित करती हैं इसलिए भी बिना अवरोध के सुचारु रूप से चलती रहती हैं क्योंकि इन्हें बाहरी (अभिभावक व लड़कियों का परिवार) और आन्तरिक (विद्यालय के अन्य सदस्य) रूप से अवरोध नहीं झेलना पड़ता। जिस परिवेश से सरकारी विद्यालय में ये लड़कियाँ आती हैं, वहाँ शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ अधिकतर परिवारों में उनकी भूमिका घर के कामों में हाथ बँटाने से लेकर माता-पिता के काम से वापस लौटने तक छोटे भाई-बहनों की देखभाल के रूप में भी देखी जाती है। इसलिए व्रत रखना और बाहर के खेलों की बजाय घर में खेले जाने वाले खेल विद्यालय व पारिवारिक परिस्थितियों से मेल खाते हैं।

विद्यालय के अन्य सदस्यों द्वारा या अध्यापकों द्वारा अवरोध न होने के दो कारण थे। पहला, कुछ अध्यापक विद्यालय में चल रही प्रक्रियाओं से सहमत हैं। दूसरा, जो सहमत नहीं भी होते, वे सार्वजनिक रूप से विरोध न जताकर उसपर अपनी कक्षाओं में कार्य करते हैं क्योंकि अधिक अनुभवी अध्यापिकाओं की बातों का सार्वजनिक रूप से विरोध स्वीकार्य नहीं होता और अगर विरोध होता भी है तो अन्य सहमति रखने वाली अध्यापिकाओं के द्वारा एक बड़ा समर्थन जुटा लिया जाता था।

एक बुनियादी प्रश्न उभरता है कि अगर शिक्षक सामाजिक रीतियों का नुमाइन्दा है तो फिर उसके शिक्षक होने में क्या अलग है। शिक्षक होने को ऐसे भी देखा जा सकता है– ऐसा व्यक्ति जो एक शैक्षिक प्रशिक्षण से गुज़रा हो। अगर शिक्षा को समतामूलक मानें, जो पाठ्यपुस्तक व पाठ्यक्रम द्वारा विद्यालय में दी जाती है या उसका पोषण होता है, तो शिक्षक होना ऐसे बाहरी पूर्वाग्रहों, धारणाओं व सामाजिक मानदण्डों को अपने ऊपर हावी होने से रोकना है जो शिक्षा व संवैधानिक मूल्यों से मेल नहीं खाते। शैक्षिक प्रशिक्षण का दायित्व ऐसे शिक्षक तैयार करना हैं जो अपने पूर्वाग्रहों व पक्षपात से अवगत हों और अपने ऊपर हावी होने से रोक पाएँ। वरना शिक्षक अपने-अपने निजी अनुभवों को सामाजिक दायरों में सतह दर सतह भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण व समझ की रचना करते रहेंगे, जो आपस में विरोधाभासी भी हो सकते हैं। मैं मानती हूँ कि इसमें अध्यापिकाओं को दोष देना सही नहीं है कि वे ख़ुद पितृसत्तात्मक समाज का एक औजार बनकर विद्यालय में भी उन्हीं मानदण्डों का पुनरुत्पादन करती हैं। अपितु यहाँ कमी उनके शैक्षिक प्रशिक्षण में है जो उनकी निजी धारणाओं व मान्यताओं को चुनौती पेश नहीं कर सके। इसका कारण शैक्षिक प्रशिक्षण में जेंडर स्टडीज़ जैसे विषयों का नदारद होना भी है और जहाँ है भी, वहाँ एक विकल्प (option) के रूप में उपस्थित है। हालाँकि यह भी पूर्ण रूप से सत्य नहीं होगा कि जो भी इस विषय को पढ़ेगा वह व्यक्ति या उसकी सोच और व्यवहार एकदम समतामूलक हो जाएँगे क्योंकि ये भी व्यक्ति की निजी प्रेरणा, सामाजिक दृष्टि और मूल्यों पर निर्भर करेगा।

सन्दर्भ

National Crime Records Bureau, Government of India, (2019), Crime in India 2018 Statistics. retrieved from: https://ncrb.gov.in/sites/default/files/Crime%20in%20India%202018%20–%20Volume% 201.pdf

---

रंजना पिछले 12 वर्षों से प्राथमिक शिक्षा से जुड़ी हैं। वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के केन्द्रीय शिक्षा संस्थान से पीएचडी कर रही हैं। बच्चों से जुड़े मुद्दों, उनसे सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आयामों को समझने में विशेष रुचि रखती हैं।

सम्पर्क : ranjanavihaan1618@gmail.com

शिक्षक की जवाबदेही

निमरत खंदपुर

अकसर यह माना जाता है कि बच्चों के सीखने, न सीखने के लिए सिर्फ़ शिक्षक ज़िम्मेदार है। लेकिन उन पहलुओं और स्थितियों पर नज़र नहीं डाली जाती जो शिक्षक की जवाबदेही को प्रभावित करते हैं। यह लेख विभिन्न देशों में शिक्षक की जवाबदेही को सुनिश्चित करने के लिए की गई विभिन्न पहलों का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है। लेख इस तरफ़ भी इशारा करता है कि हमारे देश के सन्दर्भ में इनमें से कौन-से प्रयास मददगार हो सकते हैं। सं.

अकसर जब शिक्षकों के बारे में चर्चा होती है, तो सुनने को मिलता है कि :

- हमारे बच्चे सीख नहीं रहे, और यह शिक्षकों की ग़लती है।
- समुदाय को शिक्षकों की जवाबदेही सुनिश्चित करनी चाहिए।
- शिक्षक उदासीन व्यक्ति हैं जो अकसर विद्यालय से ग़ायब रहते हैं। अगर विद्यालय में हैं भी, तो ज़्यादातर कक्षा के बाहर पाए जाते हैं। और अगर कभी मिलें भी, तो न उनको विषय की जानकारी होती है न सीखने-सिखाने की।
- शिक्षक बनना ज़्यादातर एक आख़िरी विकल्प है, इसलिए वह अपने काम में दिलचस्पी नहीं लेते हैं।
- अगर शिक्षक पढ़ाते हैं तो बच्चे सीखते हैं। अगर बच्चे परीक्षा में बेहतरीन प्रदर्शन नहीं करते, तो इसके लिए शिक्षक ज़िम्मेदार हैं।

इन सब कथनों से लगता है कि बच्चों के सीखने की जवाबदेही केवल शिक्षकों की है, और यह भी कि शिक्षक इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिए प्रेरित नहीं हैं। बच्चों की उपलब्धि के आधार पर शिक्षक की जवाबदेही तय करना उचित भी लगता है– कई देशों में उपलब्धि का सांख्यिकीय विश्लेषण कर शिक्षकों की पदोन्नति का निर्णय लिया जाता है; उन्हें बर्ख़ास्त भी किया जा सकता है। लेख में आगे इन सन्दर्भों का विवरण दिया गया है।

उपलब्धि के आधार पर शिक्षक की जवाबदेही चिह्नित करने और तय करने की प्रक्रिया पर कई सवाल उठाए गए हैं, ख़ासकर इसलिए क्योंकि इस बात का कोई ठोस सबूत नहीं है कि जिन बच्चों की उपलब्धि कम है वह 'कमज़ोर' शिक्षकों से पढ़ाए गए हैं या ज़्यादा 'प्रभावी' शिक्षकों के पढ़ाने से उनकी उपलब्धि बढ़ जाएगी। कई शोध ऐसे प्रमाण उपलब्ध कराते हैं कि उपलब्धि-आधारित जवाबदेही शिक्षकों के मनोबल को चोट पहुँचाती है, और अकसर उन्हें काम छोड़ने पर मजबूर करती है, हालाँकि हमारे देश में स्थिति कुछ अलग है।

उपलब्धि-आधारित जवाबदेही वाला विचार दो अन्य कारणों के आधार पर भी ग़लत साबित हो सकता है। पहला, बच्चों का सीखना कई कारकों पर निर्भर है, और ये कारक एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। जैसे– विद्यालय में शिक्षक को

छोड़कर, मूलभूत सुविधाएँ, कक्षा का आकार, पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या, सीखने-सिखाने की सामग्री, विद्यालय का नेतृत्व और शिक्षक की स्वायत्तता, ख़ासकर शिक्षणशास्त्र और पाठ्य सामग्री का चयन, आदि। साथ ही, बच्चों का सामाजिक और आर्थिक सन्दर्भ, माता-पिता का शैक्षिक स्तर, प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शिक्षा, बच्चों की रुचि, आदि भी अधिगम को प्रभावित करते हैं। ये कारक अपने-आप में काफ़ी जटिल हैं और फिर इनका अन्तर्सम्बन्ध इतना जटिल है कि केवल बच्चों के सीखने / न सीखने से शिक्षक की जवाबदेही तय करना बिलकुल सही नहीं है।

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि शिक्षक की प्राथमिक जवाबदेही बच्चों के सीखने की तरफ़ है। परन्तु इस बात पर विचार करना भी आवश्यक है कि जवाबदेही पूरी करने के लिए शिक्षक को किस प्रकार के समर्थन, और किन साधनों एवं क्षमताओं की ज़रूरत है। अगर शिक्षक को यह समर्थन, साधन और सुविधाएँ नहीं मिलतीं, क्या तब भी शिक्षक ही जवाबदेह होगा?

पहले शिक्षक समर्थन

इस विषय पर सन्दर्भ सामग्री का अध्ययन करने पर कुछ अहम पहलू उभरकर आते हैं। पहला, शिक्षकों का कार्य बेहतर करने में उनका अपने सहकर्मियों के साथ सहकार्य और शैक्षिक प्रक्रियाओं एवं अपनी समस्याओं पर मिलकर चिन्तन केवल उपलब्धि के आधार पर निरीक्षण से कहीं अधिक प्रभावी है।

इसे मुमकिन करने के लिए विद्यालय में शिक्षक समर्थन का वातावरण और स्वायत्तता ज़रूरी हैं। जहाँ शिक्षकों को यह स्पष्ट है कि उनसे क्या अपेक्षाएँ हैं और इनकी शैक्षिक प्रक्रियाओं को बेहतर करने में क्या भूमिका है। जहाँ शिक्षकों की भागीदारी है, और वह केवल ग्रहण करने की भूमिका में नहीं हैं। जहाँ शिक्षकों को स्वायत्तता है– पठन-पाठन सामग्री का चयन या उन्हें विकसित करने की, पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शैक्षणिक प्रक्रियाओं का चयन करने की, अवलोकन एवं मूल्यांकन प्रक्रियाओं को निर्धारित और बच्चों को भी सीखने में स्वायत्तता प्रदान करने की। अपितु यह भी तभी मुमकिन होगा जब शिक्षक में शैक्षिक समझ हो, जो न केवल सेवापूर्व शिक्षक शिक्षा में विकसित होती है परन्तु अनुभव से और गहरी व व्यापक होती है।

एक शिक्षक की जवाबदेही हमेशा ऐसी परिस्थितियों में ही स्वाभाविक है। नहीं तो शिक्षक की जवाबदेही केवल 'ऊपर' से भेजे हुए प्रारूपों और रूपरेखाओं की तरफ़ होगी। दस्तावेज़ों के माध्यम से शैक्षिक प्रणाली को यह भरोसा होता है कि शिक्षकों की जवाबदेही स्थापित हो रही है। परन्तु इन परिस्थितियों में शैक्षिक बदलाव मुमकिन नहीं है क्योंकि शिक्षक उन्हीं पुरानी 'भरोसेमन्द' प्रणालियों से काम करते हैं एवं उनके पास और कोई विकल्प नहीं है।

प्रश्न यह है, अगर ऐसी परिस्थितियाँ हों तो शिक्षकों की जवाबदेही को सुनिश्चित करने के लिए क्या तरीक़े हों? जिन देशों में यह करने की कोशिश की गई है, अगले भाग में उनका संक्षिप्त विवरण है।

जवाबदेही कैसे सुनिश्चित की जाती है ?

फ़िनलैंड में सामूहिक जवाबदेही की व्यवस्था है, जहाँ शिक्षकों की ज़िम्मेदारी न केवल अपने विद्यार्थियों के प्रति है, अपितु विद्यालय, अभिभावकों और एक दूसरे के प्रति भी है। केवल बच्चों की उपलब्धि के आधार पर उनका मूल्यांकन नहीं होता, और एक समूह के रूप में प्रधान अध्यापक और शिक्षकों की जवाबदेही होती है। क़रीब 30 साल पहले विद्यालय निरीक्षण की प्रक्रिया को समाप्त कर दिया गया था। विद्यालय में शिक्षक और प्रधान अध्यापक परामर्श और रचनात्मक प्रक्रिया के आधार पर सीखना-सिखाना बेहतर करने का प्रयास करते हैं। इस साझी भागीदारी का नतीजा आपसी विश्वास का वातावरण और बेहतरी की तरफ़ लगातार प्रयास हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका में मानकीकृत परीक्षण (standardized testing) के आधार पर शिक्षकों का मूल्यांकन कई सालों से हो रहा है– 1960 में आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित वर्गों के बच्चों की उपलब्धि को लेकर चिन्ता से यह प्रक्रिया शुरू हुई। देश के सभी बच्चों की एक तरह की परीक्षा लेते हैं– व्यक्तिगत अन्तर को नज़र में रखने की कोई गुंज़ाइश नहीं है। ज़्यादातर बहुविकल्पीय प्रश्न या एक शब्द के उत्तर वाले प्रश्न, आदि पूछे जाते हैं। इस प्रक्रिया की काफ़ी आलोचना की गई है। हालाँकि सोच यह है कि बच्चों के सीखने के स्तर को समझकर शैक्षणिक प्रक्रियाओं को सुधारने का यह एक भरोसेमन्द साधन है। परन्तु इन परीक्षाओं में मूल्यांकन केवल पाठ्यक्रम के उन हिस्सों का होता है जो एक लिखित परीक्षा से आँके जा सकते हैं। ज़्यादातर प्रश्न ऐसे होते हैं, जिनका परीक्षण और विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है। और इसका परिणाम है कि अमूमन शिक्षक भी वही पढ़ाते हैं जो परीक्षा में आता है। इससे परीक्षा का परिणाम तो बेहतर होता है, पर सीखने की सीमाएँ बन जाती हैं। और इस सीमित पाठ्यक्रम के आधार पर सीखने-सिखाने का मूल्यांकन होता है। इस परिस्थिति में शिक्षक की जवाबदेही भी बहुत सीमित रूप ले लेती है– ख़ासकर, इस स्थिति में यह बात कहीं छुप जाती है कि हर बच्चा अलग है, अलग परिप्रेक्ष्य से आता है और अलग गति से सीखता है।

सिंगापुर में हर शिक्षक प्रत्येक साल के लिए कुछ लक्ष्य तय करता है और इन लक्ष्यों की प्राप्ति के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही, उसकी वर्तमान क्षमताओं का मूल्यांकन कर उसके व्यावसायिक विकास की योजना बनाई जाती है। इस मूल्यांकन में बेहतरी के क्षेत्र उभरकर आते हैं। ख़ासकर, हाल ही में नियुक्त शिक्षकों को प्रभावी शिक्षक बनने में सहयोग मिलता है।

न्यूज़ीलैंड, इंग्लैंड और स्कॉटलैंड में शिक्षकों की जवाबदेही एक रूपरेखा के आधार पर निर्धारित की जाती है। इस रूपरेखा में पूर्वनिर्धारित शिक्षण मानकों द्वारा शिक्षकों से अपेक्षाओं को स्पष्ट किया गया है। अलग स्तर और विषयों के शिक्षकों के लिए रूपरेखा अलग है। विद्यालय की जवाबदेही परीक्षा के परिणाम से निर्धारित की जाती है। परन्तु शिक्षकों का मूल्यांकन विद्यालय के भीतर ही उपयुक्त रूपरेखा के आधार पर किया जाता है। यह रूपरेखा पारदर्शी है और पूरी तरह से शिक्षकों से अपेक्षाओं को स्पष्ट करती है– कुछ हद तक, इस रूपरेखा के आधार पर, शिक्षक ख़ुद अपने कार्य का मूल्यांकन कर सकते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय व्यावसायिक मानकों (National Professional Standards for Teachers – एनपीएसटी) की बात रखी गई है। इन मानकों में हर विशेषज्ञता और स्कूली स्तर को लेकर शिक्षक से अपेक्षाएँ एवं दक्षताएँ स्पष्ट की जाएँगी। एक प्रकार से इन्हें शिक्षक की जवाबदेही चिह्नित करने का ज़रिया माना जा सकता है। शिक्षा नीति में यह कहा गया है कि एनपीएसटी में शिक्षक के 'प्रदर्शन के मूल्यांकन के लिए मानक भी शामिल होंगे, जो समय-समय पर किया जाएगा। इनके आधार पर शिक्षकों का कैरियर मैनेजमेंट होगा जिसमें कार्यकाल, व्यावसायिक विकास के प्रयास, वेतन वृद्धि, पदोन्नति और अन्य पहचान शामिल होंगी। कार्यकाल अवधि या वरिष्ठता के बजाय सिर्फ़ निर्धारित मानकों के आधार पर पदोन्नति और वेतन वृद्धि होगी।' हर दस वर्षों में व्यवस्था की गुणवत्ता का सख़्त आनुभविक विश्लेषण किया जाएगा और एनपीएसटी की समीक्षा की जाएगी।

नीति से पहले, राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रारूप के लिए गठित कस्तूरीरंगन समिति ने और विस्तार में इस बात की व्याख्या की है। रपट में लिखा है :

यह मूल्यांकन स्पष्ट रूप से दर्ज किए गए शिक्षकों के कार्यों के तथ्य / प्रमाण पर होगा, जिसमें अनिवार्य रूप से स्कूल में उपस्थिति,

स्कूल रिकॉर्ड, कक्षा-कक्ष का अवलोकन, सहकर्मियों द्वारा समीक्षा और विद्यार्थियों की प्रगति शामिल होगी। स्कूल प्रबन्धन समिति की मूल्यांकन से सहमति होनी चाहिए।...

इस प्रक्रिया से शिक्षकों की जवाबदेही को भी निर्धारित किया जा सकेगा। शिक्षक स्कूल में शिक्षा के लिए क्या कर रहे हैं और क्या नहीं कर रहे हैं, उसके लिए वे विद्यार्थियों, अभिभावकों, समुदाय और जनता के प्रति जवाबदेह होंगे। शिक्षा प्रणाली में इससे पेशेवर निष्ठा और पारदर्शिता सुनिश्चित होगी। यह ध्यान देने की बात है कि सशक्तीकरण और स्वायत्तता सच्ची जवाबदेही की पूर्वशर्तें हैं और वहीं दूसरी ओर एक धमकाने / डराने वाला वातावरण गुणवत्ता का प्रतिरोधक है। एक ऐसी जवाबदेही व्यवस्था, जिसमें कुछ बातें समझौते योग्य नहीं हों और जो शिक्षकों में प्रभावी सुधार लाने में सहायक हों, सबसे प्रभावी ढंग से कार्य कर पाएगी। यह व्यवस्था शिक्षकों के सशक्तीकरण और स्वायत्तता को सुनिश्चित करते हुए जवाबदेही के विभिन्न कारकों को सुनिश्चित करेगी।

यह एक बहुत बड़ा बदलाव है, और ज़ाहिर है कि इतना बड़ा बदलाव लाना आसान नहीं है। इस प्रक्रिया में हर शिक्षक की जवाबदेही तय करके उसका मूल्यांकन करने की सम्भावना है। साथ ही यह सम्भावना भी है कि हर शिक्षक के कार्य को सम्मान दिया जाएगा, न केवल उपलब्धि के आधार पर बल्कि उनकी कोशिशों एवं व्यापक कार्यक्षेत्र में प्रदर्शन के आधार पर। कई प्रश्न भी उठते हैं– इस प्रक्रिया को विश्वसनीय और मान्य कैसे बनाया जाएगा? कौन इसमें शामिल होंगे? क्या शिक्षक स्व-मूल्यांकन करेंगे? क्या इस बात का मूल्यांकन भी किया जाएगा कि शिक्षकों को किस प्रकार का समर्थन मिल रहा है, उन्हें व्यावसायिक विकास के लिए क्या अवसर मिल रहे हैं? उनकी सेवा शर्तें कैसी हैं? क्या उनको पूरी सुविधाएँ मिल रही हैं? क्या उन्हें शिक्षणशास्त्र और शिक्षण सामग्री चयन करने की स्वतंत्रता है? क्या उनकी चुनौतियों का समाधान करने के लिए भी कुछ प्रक्रियाओं को स्थापित किया जाएगा? क्या हर शिक्षक के व्यावसायिक विकास के लिए कोई योजना बनेगी?

उम्मीद है कि इन, और अन्य कई ऐसे प्रश्नों के उत्तर हमें आने वाले सालों में मिलेंगे।

उपसंहार

शिक्षक की जवाबदेही उनकी क्षमताओं और मूल्यों का नतीजा है। साथ ही, एक जवाबदेह शिक्षक अपनी क्षमताओं को विकसित करने और अपने मूल्यों पर चिन्तन करने के लिए स्व-प्रेरित रहता है। यह अनिवार्य है, क्योंकि शिक्षक उसी शिक्षा प्रणाली से गुज़रे हैं जिसमें उन्हें बदलाव लाना है। इस बदलाव को लाने में जवाबदेही के साथ शिक्षकों का सशक्तीकरण अनिवार्य है। और यह शिक्षक समर्थन के वातावरण में मुमकिन है, जहाँ शिक्षकों को अपना काम करने के लिए समय और सहयोग मिलता रहे। इसलिए हमें शैक्षिक विचार विमर्श में जवाबदेही के अर्थ को नई नज़रों से देखना पड़ेगा, जिसमें न केवल शिक्षक के काम बल्कि उनके काम में पूरी शैक्षिक प्रणाली की भागीदारी को एक बार फिर से समझना पड़ेगा।

सन्दर्भ

1. Batra, P. (2005). Voice and agency of teachers. Missing link in National Curriculum Framework 2005. *Economic and Political Weekly*, October 1
2. Curtis, R. (2011). *Defining instructional expectations and aligning accountability and support*. www.nctq.org/docs/Impact_1_15579.pdf
3.. Department for Education and Skills (DfES). (2004). *Pedagogy and practice: Teaching and learning in secondary schools*. Norwich: DfES. Retrieved 4 May 2009 from www.standards.dfes.gov.uk
4. Eva L. Baker, E. L., Barton, P. E., Darling-Hammond, L., Haertel, E., Ladd, H. F., Linn, R. L., Ravitch, D.

5. Isoré, M. (2009), "Teacher Evaluation: Current Practices in OECD Countries and a Literature Review", *OECD Education Working Papers*, No. 23, OECD Publishing. http://dx.doi.org/10.1787/223283631428
6. Jones, B. D., Egley, R. J. (2007). Learning to take tests or learning for understanding? Teachers' beliefs about test-based accountability. *The Education Forum,* Vol. 71
7. Levitt, R., Janta, B., Wegrich, K. (2008). *Accountability of teachers. Literature review*. Cambridge: Rand Corporation.
8. Linn, R. L. (2012). *Test based accountability*. The Gordon Commission on the Future of Assessment in Education. Retrieved from www.gordoncommission.org/rsc/pdf/linn_test_based_accountability.pdf
9. Matthews, P. (2014). *Professional accountability*. London: The Schools Network.
10. Mourshed. M., Barber, M. (2007). *How the world's best performing school systems come out on top*. http://www.mckinsey.com/~/media/mckinsey/dotcom/client_service/social%20sector/pdfs/how-the-worlds-most-improved-school-systems-keep-getting-better_download-version_final.ashx
11. Rothstein, R. Shavelson, R. J., Shepard, L. A. (2010). Problems with the use of student test scores to evaluate teachers. *EPI Briefing Paper 278*. Retrieved 10 July 2013 from www.epi.org/publication/bp278/

निमरत खंदपुर पिछले दस सालों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में कार्यरत हैं। वर्तमान में वह स्कूल ऑफ़ कंटीन्यूइंग एजुकेशन एंड यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेंटर, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का हिस्सा हैं। वह शिक्षा नीति, शिक्षक शिक्षा एवं अध्यापन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। शिक्षा के विषयों पर पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखती रहती हैं।

सम्पर्क : nimrat.kaur@azimpremjifoundation.org

हमारी पाठ्यपुस्तकों का एक अहम पन्ना

कैलाश चन्द्र कांडपाल

प्रस्तुत आलेख कैलाश चन्द्र कांडपाल के एक वक्तव्य और उसपर किए गए सवाल जवाब का अभिलेखीकरण है। आलेख दो हिस्सों में है। पहले हिस्से में कैलाश कांडपाल ने स्कूली शिक्षा के व्यापक उद्देश्य और उसमें पाठ्यपुस्तकों के योगदान पर प्रकाश डाला है। उसमें भी वह संविधान की प्रस्तावना के बहाने देश की कल्पना और नागरिक निर्माण की प्रक्रिया पर बातचीत को केन्द्रित रखते हैं। वक्तव्य का सार यहाँ दिया गया है। आलेख के दूसरे हिस्से में श्रोताओं के सवालों पर वक्ता के सिलसिलेवार जवाब हैं। इस सम्पूर्ण वक्तव्य और उसपर आधारित सवाल जवाब का अभिलेखीकरण मोअज़्ज़म अली ने किया है। सं.

मैं अपने विषय के अन्तर्गत यहाँ कोई नई बात नहीं करूँगा, बल्कि स्कूली शिक्षा और पाठ्यपुस्तकों में संविधान की प्रस्तावना और निहितार्थ पर एक बार फिर से ध्यानाकर्षण का प्रयास करूँगा कि कक्षा में केवल विषयों को पढ़ाने की बजाय शिक्षा के उद्देश्यों के आलोक में वांछित समाज के निर्माण में स्कूल की क्या भूमिका हो सकती है?

भारत के सन्दर्भ में इस पाठ्यचर्या के सामाजिक मूल्यों को समझना है तो इसे हम स्वयं के लिए निर्धारित संवैधानिक मूल्यों के ज़रिए समझ सकते हैं। पाठ्यचर्या में निर्धारित मूल्य संविधान से आते हैं जो कि न्यायपरकता, समता और बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत हैं। इसी के चलते हमारी पाठ्यपुस्तकों का एक पन्ना भारत के संविधान की प्रस्तावना के लिए समर्पित है। स्कूली व्यवस्था का एक उद्देश्य है, इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पाठ्यचर्या है, पाठ्यचर्या में कुछ मूल्य हैं, जिनको बच्चों में लाना है। भारत के सन्दर्भ में वे संवैधानिक मूल्य हैं। पाठ्यचर्या में इन मूल्यों पर हमें हमेशा ध्यान रखना है और इन मूल्यों को बेहतर रूप से समझने के लिए हमें संविधान की प्रस्तावना को देखना समझना होगा।

मुझे व्यक्तिगत रूप से यह लगता है कि इस प्रस्तावना में जीवन दर्शन है। भारत जैसे देश में वांछित समाज बनाने के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारत के संविधान को हम इस तरह से समझने के प्रयास करें जैसे किसी धर्मग्रन्थ को समझने का प्रयास करते हैं। धर्मग्रन्थ की तरह भारत के संविधान में भी हमारी आस्था होनी चाहिए क्योंकि इसी से हम वैसा समाज बना पाएँगे, जैसा हम चाहते हैं। यह प्रस्तावना संविधान की मूल आत्मा है।

तत्पश्चात, व्याख्यान के विषय के अन्तर्गत श्रोताओं ने अपने प्रश्न रखे और वक्ता द्वारा उन प्रश्नों पर अपने विचार व्यक्त किए गए।

प्रश्न : पाठ्यपुस्तकों में संविधान की प्रस्तावना का पन्ना क्यों है? इसको लेकर एक शिक्षक से क्या अपेक्षा है? न्याय, सम्प्रभुता को कक्षा के सन्दर्भ में कैसे समझें?

कैलाश कांडपाल : इस बात को समझना मुश्किल नहीं है। सामाजिक न्याय की बात करें तो कक्षा में जाति, लिंग, धर्म, आर्थिक हैसियत आदि के आधार पर किसी तरह का पक्षपात न हो। बच्चा किसी भी समुदाय या पृष्ठभूमि का हो, सबके साथ समान व्यवहार हो। किसी भी क्षण बच्चे को ऐसा नहीं लगना चाहिए कि उसके साथ किसी तरह का भेदभाव हो रहा है। शिक्षक का सबके साथ समान व्यवहार होना चाहिए। दूसरी तरफ़, क्योंकि बच्चे एक समाज का हिस्सा हैं, तो वे कुछ बातें समाज या परिवार से लेकर कक्षा में आएँगे तो इस विषय पर बच्चों से लगातार बातचीत हो। हमारी पाठ्यपुस्तकें समाज में किसी भी प्रकार के पक्षपात को तर्क के साथ नकारती हैं। अतः इनसे बहुत मदद मिलेगी।

प्रश्न : देश, काल, परिस्थिति के अनुसार उद्‌देश्य बदलते हैं, क्या हमारी पाठ्यपुस्तकें वर्तमान उद्‌देश्यों की पूर्ति करती हैं?

कैलाश कांडपाल : हाँ, देश, काल, परिस्थिति के अनुसार चीज़ें बदलती हैं। यदि हम सामाजिक मूल्यों के अनुसार न्याय, समता आदि की बात करें, तो वे नहीं बदलेंगे, वे स्थाई हैं। हम यह नहीं कह सकते कि आज हम न्याय कर रहे हैं और कल अन्याय करेंगे, या आज हम स्वतंत्रता दे रहे हैं और कल नहीं देंगे, या आज हम समानता की बात कर रहे हैं और कल नहीं करेंगे। जब बच्चा स्कूल से शिक्षा प्राप्त करेगा तो जीवन यापन के लिए कोई-न-कोई काम या नौकरी तो करेगा ही, परन्तु देश के नागरिक के तौर पर अपनी ज़िम्मेदारी निभाते हुए, वह क्या भूमिका निभाता है, यह समझना अधिक महत्त्वपूर्ण है। देश की प्रगति के लिए एक वांछित समाज बहुत ज़रूरी होता है। बच्चा बड़ा होकर आजीविका अच्छी कर रहा है, परन्तु बेईमान है। डॉक्टर, इंजीनियर बन गया, लेकिन नैतिक मूल्य नहीं हैं, यह सही नहीं है। स्वस्थ भारत के लिए हमने जो संवैधानिक मूल्य तय किए हैं, वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रश्न : देश में बहुत-से शैक्षिक संस्थान या स्कूल हैं, जिनका नाम किसी धर्म या जाति पर रखा जाता है, इसको कैसे समझें?

कैलाश कांडपाल : कुछ धार्मिक संस्थाएँ स्कूल संचालित करती हैं लेकिन उन्हें भी निर्धारित पाठ्यचर्या को लागू करना होता है। हम जिन सरकारी स्कूलों की बात कर रहे हैं, वह राज्य की संस्था हैं, न कि नागरिक की। यह राज्य द्वारा अपनाई गई एक संयोजित संस्था है, जो राज्य ने तय किया है। इसलिए इनमें राज्य का नियम लागू होगा। जब हम संविधान के अनुसार धर्मनिरपेक्षता की बात करते हैं, तो राज्य को धर्मनिरपेक्ष होना पड़ेगा और इस बात से परहेज़ करना होगा कि उसे किसी धर्म विशेष के लिए जाना जाए।

प्रश्न : स्कूल में बच्चे के प्रवेश के दौरान उसकी जाति पूछी जाती है, क्या यह न्यायपूर्ण है?

कैलाश कांडपाल : ऐतिहासिक रूप से हम ऐसे नहीं रहे हैं। आज से 70 साल पहले 1949 में हमारा संविधान बना। संविधान निर्माण से पहले की पृष्ठभूमि देखें, तो हमारे समाज में बहुत-सी समस्याएँ रही हैं। समाज में किसी जाति विशेष या जेंडर की बात करें, तो उनको वह स्थान नहीं मिल पाया था, जो मिलना चाहिए था। अभी की प्रक्रिया में इस तरह की सुविधाओं को 'सकारात्मक पक्षपात' कहा जाता है।

समानता के मूल्य के आधार पर यह उदाहरण ले सकते हैं कि एक दौड़ लगनी है। एक व्यक्ति 50 मीटर आगे से और दूसरा व्यक्ति 50 मीटर पीछे से दौड़ शुरू करता है, तो पीछे वाला कभी वहाँ तक नहीं पहुँच पाएगा। आपको उसको सहारा देना होगा, कुछ सुविधाएँ देनी

होंगी कि वह भी वहाँ पहुँच सके। इसलिए भारत में कुछ जाति विशेष के लिए आरक्षण की व्यवस्था रखी गई है, ताकि उनकी स्थिति में सुधार हो। अगर यह इंग्लैंड या इज़राइल जैसा देश होता तो वहाँ के संविधान में यह मूल्य शायद नहीं आएँगे, क्योंकि उनकी जिस तरह की सामाजिक संरचना है, वहाँ इस तरह के मूल्य की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। लेकिन भारत में सकारात्मक पक्षपात या आरक्षण की ज़रूरत पड़ेगी। आज के सन्दर्भ में यह ज़रूरी भी है। आदर्श रूप में देखें तो ऐसा नहीं होना चाहिए, परन्तु भारत की स्थिति देखते हुए अभी भी आरक्षण की ज़रूरत दिखाई देती है।

एक व्यक्ति किसी भी जगह या समाज में पैदा होता है तो उसकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पूँजी होती है। सामाजिक पूँजी बहुत ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होती है। यह कई चीज़ों में एक व्यक्ति को अतिरिक्त लाभ देती है। जो ऊँची जाति में पैदा हुआ है और उसके पास आर्थिक पूँजी नहीं भी है, फिर भी उसके पास सामाजिक और सांस्कृतिक पूँजी की कमी नहीं है। उसका समाज में एक स्थान बना हुआ है। इस सामाजिक विभेद को कम करने के लिए इस तरह की प्रक्रियाएँ अपनाई गई हैं। अगर सबकुछ ठीक रहा तो ऐसा समय भी आ सकता है कि इसकी ज़रूरत ही न पड़े।

प्रश्न : अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक विवादित मुद्दा है। क्या हम इसकी कोई सीमा तय कर सकते हैं?

कैलाश कांडपाल : अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मतलब यह नहीं है कि कुछ भी बोलो। हमें पता है कि हमारे कुछ मौलिक अधिकार हैं। अधिकारों में हमेशा एक केवियट (caveat) होती है, अर्थात वहाँ से हमारे अधिकार ख़त्म होते हैं, जहाँ से किसी दूसरे के अधिकारों का हनन होता है। इसलिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के भी कुछ नियम हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हम किसको कह रहे हैं? हमको अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है, परन्तु यह भी ध्यान देना होगा कि इससे किसी अन्य को किसी तरह की चोट न पहुँचे। कोई अपमानित महसूस न करे। इसलिए इन दायरों को समझने की भी ज़रूरत है। अगर कक्षा में एक बच्चा अपनी बात रख रहा है और वह उस नियम या दायरे के अन्तर्गत अपनी बात रख रहा है, और हम उसकी बात को सम्मान देते हैं, तो वास्तव में हम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल्य को सम्मान दे रहे हैं।

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथ-निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता** प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब मे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

प्रश्न : वर्तमान में हम देखते हैं कि समाज संवैधानिक अधिकारों को लेकर बहुत जागरूक दिखता है लेकिन संवैधानिक कर्तव्यों के प्रति ज़्यादा जागरूक नहीं है, इसके क्या कारण हो सकते हैं?

कैलाश कांडपाल : इसका मुख्य कारण शिक्षा है। जब हम पाठ्यपुस्तक की बात करते हैं तो यह एक पाठ्यचर्या के आलोक में लिखी जाती है, जिसके अन्तर्गत कक्षा में कुछ मूल्य हमको स्थापित करने होते हैं। अगर मुझमें वे मूल्य स्थापित हैं, तो एक नागरिक के तौर पर, मैं अपने कर्तव्यों को लेकर भी जागरूक
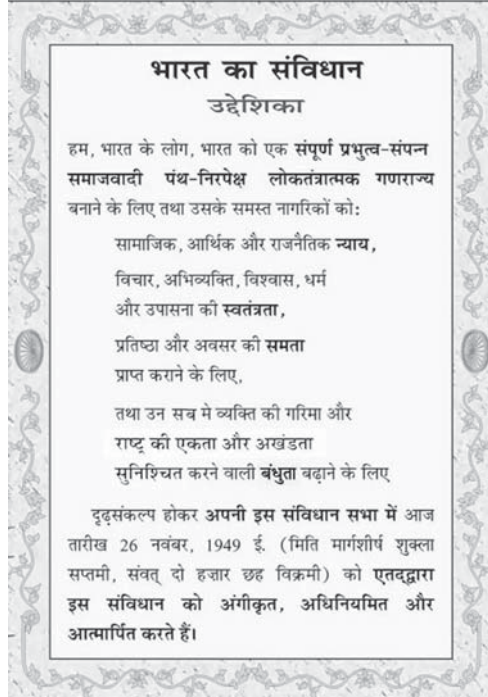
रहूँगा। इन मूल्यों के अनुरूप अगर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जाएगी तो प्राकृतिक रूप से जितने भी नागरिक होंगे, वे क़ानून को मानने वाले होंगे और अपने कर्तव्यों का पालन करने वाले होंगे। जैसे– कोविड-19 के समय में हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम इस बीमारी के वाहक न बनें। हमें स्वयं तो बचना ही है और अन्य लोगों को भी समझाना है कि संक्रमण न फैले। अगर हम यह सोचते हैं कि किसी के संक्रमण से मुझको क्या, तो यह संक्रमण हमारे घर भी पहुँच जाएगा। मैं अपने आसपास कुछ ग़लत देख रहा हूँ और उस ग़लत होने को नहीं रोकता हूँ, तो कल वह मेरे और मेरे बच्चे या मेरे परिवार के साथ भी हो सकता है। इस तरह की जागरूकता शिक्षा देती है।

प्रश्न : हमारे स्कूलों में अलग-अलग वर्ग के बच्चे आते हैं। छोटी उम्र में तो वे सभी घुल-मिल कर खेलते हैं, लेकिन जब उनकी समझ विकसित होना शुरू होती है और वे बड़ी कक्षाओं में जाते हैं, फिर मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते। क्या ऐसा मान लिया जाए कि स्कूली शिक्षा पर सामाजिक शिक्षा ज़्यादा हावी होने लगती है?

कैलाश कांडपाल : हमें एक शिक्षक के तौर पर यह देखना होगा कि स्कूल में सभी सामाजिक-संवैधानिक मूल्य पोषित हो रहे हैं या नहीं? अगर ऐसा नहीं होगा तो औपचारिक शिक्षा की बजाय अनौपचारिक शिक्षा हावी रहेगी। जब मैं कक्षा पाँच में पढ़ता था और जिस परिवेश में रहता था, उसमें जातिवाद बहुत चलता था। मैं ब्राह्मण परिवार से था और एक परिवार अनुसूचित जाति का था। एक अनुसूचित जाति का बच्चा अपने घर पानी ले जा रहा था। मुझे प्यास लगी तो मैंने उससे पीने के लिए पानी माँगा। मेरे साथ जो बच्चे बैठे हुए थे, वे ठिठक गए। आज मैं उस बात को सोचता हूँ या चिन्तन करता हूँ कि वह व्यवहार कहाँ से आ रहा था? मेरा परिवार तो मुझको यह सब सिखा नहीं रहा था। मेरा समाज भी मुझको नहीं सिखा रहा था। तब मैं यह समझ पाता हूँ कि मुझे मेरा स्कूल ऐसा सिखा रहा था। स्कूल की शिक्षा काफी प्रभावशाली थी जो मुझे बता रही थी कि इस तरह का सामाजिक विभेद ग़लत है। किसी के साथ ऐसा नहीं होना चाहिए। मैंने पानी पिया और साथियों से कहा कि इससे कुछ नहीं होता है।

वर्तमान समय में हम देखें तो पाएँगे कि अब इस तरह की चीज़ें काफ़ी हद तक कम हो रही हैं। यह शिक्षा का ही प्रभाव है। अब क्योंकि हमारा इतिहास हज़ारों सालों का इतिहास है और आज़ादी बस 70 साल पहले ही मिली है। 70 साल में दो-तीन हज़ार सालों की चीज़ें ख़त्म नहीं होंगी। इसमें समय लगेगा।

प्रश्न : स्कूलों में जाति और लिंग के अनुसार सुविधाएँ दी जाती हैं जैसे– वजीफ़ा और गणवेश के वितरण के दौरान, क्या यह बच्चों के साथ पक्षपात नहीं है? बच्चों की समानता के आधार पर इसको कैसे स्पष्ट करें?

कैलाश कांडपाल : हाँ, ऐसा होता है। इससे बच्चों को लगता है कि फलाँ बच्चे को इस तरह की सुविधाएँ मिल रही हैं, तो मुझको क्यों नहीं मिल रही हैं। यह एक बहस का मुद्दा है। इसके लिए मैं श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित 'संविधान' की सीरीज़ देखने का सुझाव दूँगा। उसमें संविधान के इस हिस्से पर बहुत गम्भीर बहस है कि अगर हम कुछ विशेष जाति आदि को विशेष सुविधाएँ देंगे तो कुछ लोग अपने साथ भेदभाव को महसूस करेंगे, लेकिन साथ ही इस सीरीज़ में यह तर्क भी आते हैं कि क्या पहले से चला आ रहा भेदभाव ख़त्म हो गया है? नहीं हुआ है। आज भी समाज में लड़की और लड़के के साथ अलग-अलग तरह का व्यवहार किया जाता है। लड़के को निजी स्कूल में और लड़की को राजकीय स्कूल में पढ़ाए जाने के उदाहरण हैं। छोटा भाई है तो लड़की ही घर पर रुककर उसका ध्यान रखती है और लड़का स्कूल जाता है। समाज में इस तरह के पक्षपात हैं तो सकारात्मक पक्षपात से ही इनको कैसे ख़त्म किया जा सकता है। इस तरह के लाभ

देना एक तरह के प्रयास हैं उनकी स्थिति में सुधार करने के लिए। इसके अलावा कोई राह दिखती भी नहीं है।

प्रश्न : क्या भारतीय समाज संवैधानिक मूल्यों को इसलिए आत्मसात नहीं कर पा रहा, क्योंकि हज़ारों सालों की धार्मिक शिक्षा से निकल नहीं पाया है?

कैलाश कांडपाल : मेरा मानना है कि ऐसा है। इन मूल्यों को आत्मसात करने के लिए इसका हल सार्वजनिक शिक्षा से ही निकलेगा। औपचारिक शिक्षा किस तरह से दी जा रही है? क्या शिक्षा इन संवैधानिक मूल्यों को अपने में समाहित कर पाई है? जहाँ तक धर्म के प्रभाव की बात है तो यह एक बड़ी बहस है। संवैधानिक विचार तार्किक आधार पर बात करते हैं।

प्रश्न : हम कई बार इस तरह का पक्षपात बच्चों के बीच लाते हैं, जब कह रहे होते हैं कि ये बच्चे अनुसूचित जाति के हैं और उसी के आधार पर नि:शुल्क गणवेश दिया जाता है। इससे भी पक्षपात पैदा होता दिखता है। इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

कैलाश कांडपाल : सकारात्मक पक्षपात के नज़रिए से ऐसा किया जाए तो ठीक है। उसके आधार पर कुछ सुविधाएँ दी जाती हैं तो ठीक है। लोग सोचते हैं कि ऐसा कुछ है नहीं, हमने बस इसका हव्वा बना रखा है। मैं उनसे सवाल करता हूँ कि क्या वर्तमान समय में अन्तर-जातीय विवाह आसानी से हो जाएगा? तो इसका उत्तर है, नहीं होगा। समानता की धारणा कब आएगी? यह तब आएगी, जब हम इस स्तर पर चीज़ों को देखने लगें। उदाहरण के लिए, मैं ब्राह्मण हूँ, चाहे मैं ग़रीब भी होता, तो भी मेरे पास कहीं भी प्रवेश करने का अधिकार होता। मैं किसी मन्दिर में जा सकता था, किसी भी नल से पानी पी सकता था। मेरे पास सामाजिक पूँजी है। अब जब यह पूँजी किसी व्यक्ति के पास नहीं है, उस व्यक्ति को इस स्तर तक लाना है या यह पूँजी उसको देनी है, तो हमें उसको आर्थिक, सामाजिक रूप से सुदृढ़ करना होगा ताकि वह व्यक्ति सामाजिक पूँजी पा जाए। समाज में इस तरह की बहस भी उभरती हैं कि इस तरह के लोग जो अब आर्थिक रूप से बेहतर स्थिति में हैं, फिर भी वे इसका लाभ लेते हैं, तो यह सही बात नहीं है। इस तरह की चीज़ें रहेंगी, लेकिन हमें सोचना होगा कि क्या यह पूरी तरह से समाप्त हो गया है? मुझे लगता है कि अभी इस प्रक्रिया को कुछ समय तक जारी रखना होगा, जब तक यह विभेद पूरी तरह से ख़त्म न हो जाए।

प्रश्न : क्या भारत के अलावा किसी और विकासशील देश में भी इस तरह के आरक्षण की व्यवस्था है? क्या विकसित देशों में भी इस तरह की प्रक्रिया रही है?

कैलाश कांडपाल : इस बारे में मैंने अध्ययन नहीं किया है। महिलाओं के अधिकारों को लेकर सकारात्मक पक्षपात कई देशों में रहा है। हमारा सन्दर्भ अलग है और अमरीका, इंग्लैंड या अन्य देशों का सन्दर्भ अलग है। हम अपने सन्दर्भों में चीज़ों को समझने की कोशिश करें। हमारे सन्दर्भ में हमारा एक इतिहास है और हमारे इतिहास में हमको यह दिखता है कि असमानताएँ हैं जिनके बारे में संविधान सभा में बहस हुईं, चाहे वे जाति, वर्ग, जेंडर या धर्म की असमानताएँ हों, वे अभी भी हैं।

प्रश्न : आज के समय में देशभक्ति की भावना कम देखने को मिलती है। इस समस्या को कैसे दूर किया जा सकता है?

कैलाश कांडपाल : देशभक्ति को कैसे देखा जाए? यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इसके मायने क्या हैं? अगर मैं एक ज़िम्मेदार नागरिक के तौर पर देश की प्रगति के लिए अपना काम करता हूँ, तो मेरी समझ में वह देशभक्ति है। देशभक्ति के मायने केवल देश के दुश्मन को या गद्दारों को मारने से नहीं हैं। ज़िम्मेदार नागरिक के तौर पर देश के विकास और हित में मेरा योगदान भी देशभक्ति है। देशभक्ति एक बड़ा फ़लक है। देशभक्ति बहुत छोटी-छोटी चीज़ें

नहीं है कि कोई देश के ख़िलाफ़ बोलेगा, तो मैं भी उसके ख़िलाफ़ बोलूँगा, जैसा आजकल सोशल मीडिया में देखा जाता है। मैं अपनी कक्षा में पाठ्यक्रम या पाठ्यचर्या का संचालन सही तरह से करता हूँ तो वह भी देशभक्ति है। मैं सोशल मीडिया के द्वारा देश को तोड़ने की बात नहीं करता हूँ तो वह भी देशभक्ति है। पाठ्यपुस्तक में देशभक्ति पर कोई पाठ रखनेभर से देशभक्ति नहीं होगी। हमारी पाठ्यपुस्तकें भी सामान्य तौर पर देशभक्ति की बात करती हैं। मेरे हिसाब से, एक ऐसा देश जहाँ सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक न्याय हो, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो और हैसियत एवं अवसर की समानता हो, भाईचारा एवं सम्मान हो, एकता व अखण्डता हो, वही देशभक्ति है।

प्रश्न : राजनीति किस प्रकार संविधान की प्रस्तावना के ख़िलाफ़ पाठ्यचर्या को प्रभावित कर रही है?

कैलाश कांडपाल : इस तरह की चीज़ें चलती रहती हैं। राजनीतिक पार्टियों की अपनी-अपनी विचारधाराएँ होती हैं। कई बार किसी पार्टी को लगता है कि प्रस्तावना में कोई गड़बड़ है। कोई समझता है कि धर्मनिरपेक्ष शब्द में ही समस्या है, यही फ़साद की जड़ है। कई बार किसी को लगता है कि कोई धारणा या मूल्य गड़बड़ है। पाठ्यचर्या तो कोई नहीं बदल सकता, परन्तु पाठ्यपुस्तकों में कई बार छेड़छाड़ होती है। लेकिन लोग जागरूक हैं। वे समझते हैं। शिक्षाविद् समझते हैं। जब भी छेड़छाड़ का ऐसा कोई प्रयास होता है, तो उसपर बहस होती है। बहुत आसान नहीं होता पाठ्यचर्या में छेड़छाड़ करना।

प्रश्न : एक तरफ़ हम समतामूलक और न्यायमूलक समाज की बात करते हैं, लेकिन दूसरी तरफ़ प्रतियोगिताओं का चलन भी बढ़ रहा है। इसको हम कैसे देखें? सामाजिक पूँजी के मायने क्या हैं?

कैलाश कांडपाल : सामाजिक पूँजी के बारे में मैंने उदाहरण दिया था कि मैं कैलाश कांडपाल हूँ, जो कि एक ब्राह्मण है। यदि मैं निर्धन परिवार में भी जन्म लेता हूँ तो भी समाज में मेरा एक स्थान है। यह मेरी सामाजिक पूँजी है। मैं बहुत आराम से किसी मन्दिर में जा सकता हूँ, मेरे हाथ से कोई भी पानी पी लेगा। यह सामाजिक पूँजी है।

ऐसा नहीं है कि प्रतियोगिता नहीं होनी चाहिए। हम खेल या ओलंपिक्स ख़त्म कर दें क्या? ये चीज़ें अपनी जगह बनी रहेंगी। लेकिन उसमें भावना क्या लाई जा रही है, यह समझना महत्त्वपूर्ण है। हक़ीक़त में खेल आदि जो प्रतियोगिताएँ हैं, वे इंसान को और बेहतर बनाती हैं। हार और जीत को किस तरह से लेना है, इसमें एक जीवन दर्शन मिलता है, सीखने के लिए। प्रतियोगिताओं का अपना एक मूल्य रहेगा। मुझे नहीं लगता कि इससे असमानता आती है। इससे बच्चे को जीवन दर्शन मिलेगा कि मैं हार भी सकता हूँ और जीतने के लिए बार-बार प्रयास करना पड़ेगा।

प्रश्न : आमतौर पर विषय और मूल्यों की शिक्षा को अलग-अलग करके देखा जाता है। फ़ोकस मुख्य रूप से विषयों पर होता है और मूल्य पीछे छूट जाते हैं। इससे हम शिक्षा के उद्देश्यों से भटकते हुए दिखते हैं, इसको लेकर आपका क्या विचार है?

कैलाश कांडपाल : आपकी बात से सहमति है। मैंने अपने वक्तव्य में कहा था कि अगर हम शिक्षा में मूल्य नहीं दे पा रहे हैं तो हम वास्तविक शिक्षा से भटक रहे हैं। जैसा कि मैंने पहले बताया, पाठ्यपुस्तकें भी आपकी सहयोगी हैं, लेकिन समस्या यह है कि हम लोग पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण नहीं कर रहे हैं। शिक्षक जिस भी कक्षा को पढ़ाते हैं, उनको अपनी पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण करना चाहिए कि पाठ्यपुस्तकें क्या सोचकर लिखी गई हैं। समस्या यह है कि अगर हमें यह पता नहीं है कि कोई पाठ किस उद्देश्य से लिखा गया है तो दिक़्क़त हो जाती है। मेरी तो इसमें यही समझ है कि विषय और मूल्यों की शिक्षा अलग-अलग नहीं है। अगर हमको यह स्पष्ट है कि पाठ किस उद्देश्य से लिखा गया है, इसमें शब्दों का चुनाव किस तरह का है, इन शब्दों के मायने क्या हैं, तो उसका अन्तरण आसान होगा। फिर हम उसी तरह से शिक्षण कर रहे होंगे जो अपेक्षित है।

प्रश्न : बच्चा स्कूल में जो सीखता है और समाज में जो देखता या अनुभव करता है, उसमें अन्तर दिखाई देता है। इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

कैलाश कांडपाल : यह द्वन्द्व तो रहेगा क्योंकि जो बात स्कूल में कही जा रही है, वह समाज में तो है ही नहीं। स्कूल में जेंडर की समानता की बात होती है और घर में पितृसत्ता है। यह एक दिन में बदलने वाली चीज़ नहीं है कि आज हमने बच्चे को जेंडर समानता के बारे में बता दिया और वैसा ही तुरन्त उसके घर में होने लगेगा। एकदम से ऐसा नहीं होगा। इस तरह के बदलाव होने में समय लगता है। मानसिकता इतनी आसानी से बदलती नहीं है। 'निर्भया' जैसी घटना देखकर विश्वास नहीं होता कि कोई ऐसा कैसे कर सकता है? समाज में विसंगतियाँ हैं और लगातार यह द्वन्द्व चलेगा और शिक्षा उससे लड़ती रहेगी।

प्रश्न : छोटी कक्षा में जो पाठ्यपुस्तकें हैं, उसमें संविधान की प्रस्तावना को छापने का क्या महत्त्व है? वह बच्चों की समझ में आने वाली चीज़ नहीं है।

कैलाश कांडपाल : वह प्रस्तावना शिक्षक के लिए है। बच्चे के लिए यह सभी गूढ़ अवधारणाएँ हैं। शिक्षक जब भी कक्षा में पाठ्यपुस्तक का अन्तरण करे, उसको इस प्रस्तावना की कसौटी में कसे और कक्षा के बाद विचार करे कि आज मैं इन मूल्यों को लेकर अपनी कक्षा में क्या काम कर पाई या कर पाया। शिक्षक को अपनी कक्षाओं को इस प्रस्तावना के आधार पर ही परखना है।

प्रश्न : बच्चों में शिक्षकों के प्रति कोई सम्मान नहीं बचा है। इसके कारण क्या हो सकते हैं?

कैलाश कांडपाल : इसको समझने के लिए पहले हमें सम्मान को परिभाषित करना पड़ेगा। एक शिक्षक के पैर छूना, उसको देखते ही डर जाना या छिप जाना, अगर इसको हम सम्मान समझ रहे हैं तो इसको अभी और समझना होगा। जब मैं छोटा था और मेरे शिक्षक कहीं से गुज़रते थे, मेरी कोशिश रहती थी कि मैं उनके सामने न पड़ूँ। अगर मेरे पिताजी से बात करते हुए दिखते थे, मैं सोचता था कि पता नहीं क्या बात कर रहे होंगे? वह सम्मान था या एक डर था? यह मुझको समझना होगा। मेरी समझ में सम्मान यह है कि बच्चा शिक्षक को एक क्रूर व्यक्ति के बजाय एक रोल मॉडल की तरह देखे, तब शायद सम्मान दिखेगा। जब मैं शिक्षक से डरकर छिपता था तो उनको अपना रोल मॉडल नहीं देखता था। मैं उनको एक क्रूर व्यक्ति के तौर पर देखता था, या यह देखता था कि वह मेरी ज़िन्दगी में केवल हस्तक्षेप ही करते हैं और कुछ नहीं। हम सम्मान को इस तरह से देख रहे हैं कि बच्चा शिक्षक में अपने रोल मॉडल को देख रहा है, तब शायद ऐसा समाज दिखेगा। हम जिस पीढ़ी से आए हैं, और जिस समय में आज के बच्चे रह रहे हैं, इसमें बहुत अन्तर आ गया है। ऐसा हमेशा ही रहता है। मैं कहीं एक कथन पढ़ रहा था कि 'आज के बच्चे अपने मन की करते हैं। अपने माता-पिता

की आज्ञा नहीं मानते।' उसके नीचे लिखा था कि यह किसका कथन है? पता चला यह कथन अरस्तु का था। पीढ़ी का अन्तर तो रहेगा, परन्तु आज के समय में यह अन्तर एकदम से बढ़ा है। सूचना प्रौद्योगिकी का जो बूम हुआ है, जिस तरह से आज बच्चे के हाथ में पूरी जानकारी है, ऐसे में यह एकदम से बढ़ेगा। हमको लगेगा कि बच्चे सम्मान करना भूल गए हैं। दरअसल वो पीढ़ी का अन्तर है और हमें उस अन्तर को भी समझना होगा। मैं दो बातें कह रहा हूँ, एक तो सम्मान को परिभाषित करना होगा कि किसको हम सम्मान कह रहे हैं। मेरे अनुसार, रोल मॉडल बनना सम्मान होगा। दूसरा, जो पीढ़ियों का अन्तर बढ़ा है, यह इस पीढ़ी के सामने ज़्यादा है। अगर हम उस चैलेंज को समझते हुए काम करें तो यह समस्याएँ कम होंगी। हर पीढ़ी को लगता है कि उनकी जनरेशन बेहतर थी और आगे आने वाली जनरेशन गड़बड़ है। ऐसा ही शायद आने वाली पीढ़ी को भी अपनी आगे की पीढ़ी के बारे में लगेगा।

प्रश्न : समता-समानता की जो बात हुई है, इसको शिक्षक कक्षा में कैसे लाएँ? पठन-पाठन के साथ लोकतांत्रिक और नैतिक मूल्यों का विकास कैसे करें? इसके लिए क्या करना होगा?

कैलाश कांडपाल : हमें देखना होगा कि हम बच्चों से बातचीत कितनी करते हैं। भाषा शिक्षण में बातचीत का बहुत महत्त्वपूर्ण रोल है। हम कितना बच्चों को समझते हैं? बच्चे हमको कितना समझते हैं? बच्चों का दुनिया को देखने का नज़रिया क्या है? अलग-अलग तरह का बचपन होता है। हमें बच्चे के बचपन को समझना होगा, उसके सन्दर्भ को समझना होगा। इसको समझने के लिए बच्चों से बहुत बातचीत करनी होगी। दूसरा, मुझे लगता है कि कक्षा में जिस लोकतांत्रिक प्रक्रिया की बात की जाती है, वह बहुत मदद करती है। मैंने कुछ स्कूल देखे हैं जो बहुत लोकतांत्रिक होते हैं। वहाँ पर बच्चे स्वयं बैठकर तय करते हैं कि आज क्या पढ़ेंगे। फिर शिक्षक उसको पढ़ाते हैं और बातचीत करते हैं। इसमें बहुत ज़्यादा स्वच्छन्दता भी नहीं होती है, बल्कि अपना एक अनुशासन होता है। कक्षा प्रक्रिया ऐसी हो कि बच्चे कुछ निर्णय ले सकें। अगर कोई बच्चा किसी दूसरे बच्चे की शिकायत लेकर आ रहा है तो मैं एक शिक्षक के तौर पर अपनी सत्ता या ताक़त का उपयोग करते हुए कोई प्रतिक्रिया न करूँ। अकसर ऐसा देखने में आता है कि कोई बच्चा किसी दूसरे बच्चे की शिकायत लेकर आया और शिक्षक ने जाकर उस बच्चे को तमाचा मार दिया। इससे हुआ यह कि न्याय अस्वीकृत हो गया। इससे न्याय की धारणा ही ख़त्म हो गई। कक्षा में जब कोई बच्चा किसी की शिकायत लेकर आ रहा हो, तो क्या हम उसपर कक्षा में बच्चों के साथ बातचीत कर सकते हैं कि बच्चे ने ठीक किया या ग़लत? क्या किया? इससे बच्चे को तर्क करने, सोचने में मदद मिलेगी और यह प्रक्रिया शिक्षण में भी मदद करेगी।

जब हम किसी बच्चे को शारीरिक दण्ड देते हैं, इससे बच्चे को शायद 12 दूनी 24 तो याद हो जाएगा, लेकिन हम उसको दो चीज़ें और पकड़ा देते हैं। एक, अगर हम सत्ता में हैं तो किसी का शोषण कर सकते हैं। दूसरा, बच्चा यह समझेगा कि हिंसा काम करती है और वह भी हिंसा करेगा। अगर कोई भी शिक्षक संवैधानिक मूल्यों की समझ रखता है, तो वह कभी भी शारीरिक दण्ड का इस्तेमाल नहीं करेगा। वह नहीं चाहेगा कि उसका बच्चा हिंसात्मक या शोषित हो। अगर वह ख़ुद शोषित होगा, तो किसी और का भी शोषण करेगा। हम समाज के किसी दूसरे के बच्चे के साथ हिंसा करेंगे तो वह हिंसा हमारे बच्चे तक भी पहुँचेगी।

प्रश्न : शिक्षक की भूमिका केवल कक्षा में ही नहीं है, समाज में भी है। समाज में शिक्षक के बारे में जो मानसिकता चल रही है, शिक्षक स्वयं उसको कैसे बदले?

कैलाश कांडपाल : शिक्षक की अपनी सीमितता है। समाज के तौर पर अगर हम अपनी कक्षा में केवल बच्चों की बात कर रहे हैं, तो ठीक है, लेकिन एक शिक्षक सामाजिक तौर

पर क्रान्तिकारी बदलाव ला पाए ऐसा सम्भव तो है पर बहुत मुश्किल है, क्योंकि शिक्षक एक सिस्टम का हिस्सा है। वह अपनी कक्षा में बच्चों के साथ इस दिशा में काम कर सकता है। इसलिए कक्षा में बच्चों और उनके अभिभावकों के साथ ही काम करे तो समय के साथ चीज़ें बदलेंगी। अपने स्तर पर कोशिश ज़रूर करनी चाहिए, लेकिन यह बहुत बड़ा काम है। अगर शिक्षक अपने बच्चों के साथ ही न्याय कर ले या उनके अभिभावकों के साथ ही काम कर ले, तो यह भी बहुत बड़ा काम होगा।

प्रश्न : संवैधानिक मूल्यों के पोषण में शिक्षा में काम कर रही ग़ैर-सरकारी संस्थाओं की क्या भूमिका देख रहे हैं?

कैलाश कांडपाल : कोई भी ग़ैर-सरकारी संस्था जो शिक्षा में काम कर रही है, वह पाठ्यचर्या के आदर्शों को समझे, संवैधानिक मूल्यों को समझे और उसी को आधार बनाते हुए काम करे, तो वह सही तरह की ग़ैर-सरकारी संस्था है। स्कूली शिक्षा का उद्देश्य है, एक वांछित समाज का निर्माण करना। ऐसा समाज जो संवैधानिक मूल्यों में आस्था रखता हो।

प्रश्न : हमारे समाज में आर्थिक हैसियत के अनुसार अलग-अलग स्कूल बने हैं। शिक्षा में हम जिस समानता की बात कर रहे हैं, इससे वह थोड़ा ख़त्म-सी होती दिखती है। इस बारे में आपका क्या सोचना है?

कैलाश कांडपाल : जितने भी अलग-अलग तरह के स्कूल हैं, चाहे वह एक बड़ा निजी स्कूल हो, कम फ़ीस वाला निजी स्कूल हो या कोई सरकारी स्कूल हो, इस बात की स्पष्टता होनी चाहिए कि हम एक ही पाठ्यचर्या से गाइड हो रहे हैं। बच्चा किसी भी स्कूल में पढ़ रहा हो, विचार तो एक-सा ही लेकर आएगा। ग़ैर-सरकारी संस्था के तौर पर अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का कहना है कि सरकारी स्कूल सुदृढ़ हो पाएँगे, तभी देश प्रगति के पथ पर आगे बढ़ेगा। आज जो कोविड-19 का समय चल रहा है, ऐसे में ज़्यादा पैसे वाले स्कूल के बच्चे या उनके अभिभावक स्मार्टफ़ोन वहन कर सकते हैं। इस वजह से वहाँ ऑनलाइन शिक्षा ठीक-ठाक चल रही है। हमारे सरकारी स्कूलों को इस दिशा में संघर्ष या चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। इस तरह की असमानता साफ़तौर पर दिखाई देती है। हमारा सोचना है कि हमारे सरकारी स्कूल सुदृढ़ हों और इनको बेहतर बनाया जाए। विकसित देशों में सरकारी स्कूल सिस्टम बहुत मज़बूत है। कई बार संसाधनों की असमानता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हमें इस विभेद को कम करना है तो हमें सरकारी स्कूलों में ज़्यादा निवेश करना चाहिए और यहाँ के भौतिक संसाधनों को समृद्ध करना चाहिए। जैसा कि सिफ़ारिश की जाती है कि शिक्षा में जीडीपी का 6 फ़ीसदी ख़र्च करना चाहिए।

कैलाश कांडपाल कृषि विज्ञान और शिक्षा में स्नातकोत्तर हैं। पढ़ाई के दौरान ऑल इंडिया प्यूपिल साइंस नेटवर्क और साक्षरता अभियान से जुड़ाव रहा है। वे बारहवीं कक्षा तक संचालित एक प्रतिष्ठित विद्यालय के निदेशक भी रहे हैं। 15 वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम कर रहे हैं और वर्तमान में राज्य संस्थान उत्तराखंड के राज्य प्रमुख हैं। आप संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं *प्रवाह* और *उम्मीद जगाते शिक्षक* के सम्पादक हैं।

सम्पर्क : kandpal@azimpremjifoundation.org

मौअज़्ज़म अली 1993 से थिएटर, ड्रामा और कला के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। आपने नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के थिएटर इन एजुकेशन में कलाकार के रूप में काम किया है। फ़िलहाल 2012 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में स्रोत व्यक्ति के रूप में जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : mozzam.ali@azimpremjifoundation.org

शैक्षिक संवाद : सम्भावनाएँ अपार

कालू राम शर्मा

शिक्षकों की प्रोफ़ेशनल तैयारी के लिए विभिन्न प्रयास किए जाते रहे हैं। इस लेख में ऐसे ही एक प्रयास के तहत संकल्पित 'शैक्षिक संवाद' कार्यक्रम, उसकी मूल दृष्टि और चलाए जाने के अनुभव हैं। लेख बताता है कि शिक्षकों की तैयारी के लिए बनाए गए किसी भी कार्यक्रम के लिए यह ज़रूरी है कि वह न केवल स्कूल और कक्षा में हुए उनके अनुभवों, सामने आई चुनौतियों को साझा करने की ऐसी जगह उपलब्ध करवाए जहाँ उनके इन अनुभवों को ध्यान से सुना जाए, उनके सन्दर्भ और परिस्थितियों को समझा जाए व फिर चर्चा की जाए, ताकि सही मायने में उनको मदद मिल पाए। इस संवाद कार्यक्रम के तहत शिक्षकों के साथ किन-किन विषयों पर और कैसे काम किया गया, इसके उदाहरण भी लेख में दिए गए हैं। सं.

मध्यप्रदेश में जन शिक्षा केन्द्र (क्लस्टर रिसोर्स सेंटर) स्तर पर शिक्षकों की शैक्षिक तैयारी के लिए 'शैक्षिक संवाद' कार्यक्रम चलाया जा रहा है। 'शैक्षिक संवाद' कार्यक्रम के तहत सोच यह है कि शिक्षक जन शिक्षा केन्द्रों पर एकत्र हों, कक्षा-कक्ष में सीखने-सिखाने को लेकर अपने अनुभव साझा करें, और अपनी तैयारी करें ताकि कक्षाओं में शैक्षिक समृद्धता स्थापित की जा सके।

उल्लेखनीय है कि शिक्षकों की शैक्षिक तैयारी की जड़ें कोठारी आयोग (1964-66) में समाई हुई हैं। जहाँ शिक्षकों के अलगाव को दूर करते हुए उनकी पेशेवर तैयारी इस तरह से की जा सके कि वे कक्षाओं में सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं को बेहतरी से अंजाम दे सकें। इसके लिए कोठारी आयोग ने शाला संकुल (स्कूल कॉम्पलेक्स) का विचार रखा था जहाँ एक उच्चतर माध्यमिक स्कूल के इर्द-गिर्द के प्राथमिक व माध्यमिक स्कूलों में सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं में जान फूँकी जा सके। तब स्कूली शिक्षा में शिक्षकों की पेशेवर तैयारी के मामले में इसे एक नवाचार के रूप में देखा गया था।

लिहाज़ा, शैक्षिक संवाद को सेवाकालीन प्रशिक्षण के एक सतत हिस्से के रूप में देखा जा रहा है जहाँ शिक्षकों को एकमुश्त प्रशिक्षण के अलावा जन शिक्षा केन्द्र स्तर (भौगोलिक रूप से शाला संकुल का ही एक स्वरूप) पर लगातार अकादमिक चर्चाओं के अवसर प्राप्त हों। सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण का स्वरूप हमारे यहाँ एकमुश्त तासीर का रहा है जहाँ ये ज़िला व विकासखण्ड स्तर पर अमूमन ग्रीष्मकालीन अवकाश की समाप्ति से लगाकर स्कूल खुलने के पहले-दूसरे महीने में आयोजित होते हैं। इस प्रकार जन शिक्षा केन्द्र स्तर पर शिक्षकों की पेशेवर तैयारी सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण का ही एक विस्तारित रूप है। जन शिक्षा केन्द्र पर शिक्षकों की बैठकों का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि यहाँ शिक्षकों की अपनी कक्षाओं में शिक्षण की रोज़मर्रा की तैयारी और समस्याओं पर बातचीत होती है।

कुल मिलाकर शिक्षक उन प्रक्रियाओं से गुज़रें जो उन्हें अपनी-अपनी कक्षाओं में प्रतिबिम्बित करना है। बेशक, शिक्षकों की सतत तैयारी मायने रखती है।

दरअसल, पिछले कुछ दशकों में शिक्षकों की पेशेवर तैयारी को भारत समेत कई देशों ने तो पहचाना लेकिन इसे विडम्बना कहें कि भारत में शिक्षकों की तैयारी के रास्ते में सबसे बड़ी अड़चन इसका टॉप डाउन होना है।

हमारे देश में शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था सोपानी (कैस्केड) मोड में चलती है। प्रदेश स्तर पर विशेषज्ञों का समूह होता है जो ज़िले के प्रशिक्षकों को तैयार करता है। फिर वे ज़िले में शिक्षकों को प्रशिक्षित करते हैं। अन्तिम रूप में जो शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त करता है वह बच्चों के साथ कार्य करता है। ज़ाहिर है कि कैस्केड मोड में दुर्बलता की प्रबल सम्भावनाएँ होती हैं। और दरअसल, ऐसा होता भी रहा है। एक वजह यह भी पहचानी गई है कि शिक्षक प्रशिक्षणों में जो कुछ भी होता है वह कक्षाओं के कारोबार से कम ताल्लुक रखता है। शिक्षक प्रशिक्षण, शिक्षकों को ऐसे सहयोगी के रूप में नहीं देखता जो बच्चों को अर्थपूर्ण सीखने की ओर प्रेरित कर सके।

शैक्षिक संवाद : असल धरातल पर

एक जन शिक्षा केन्द्र में लगभग 20-25 प्राथमिक स्कूल व लगभग 10-12 मिडिल स्कूल होते हैं। इनकी शैक्षिक व्यवस्था की ज़िम्मेदारी जन शिक्षा केन्द्र की होती है। इन केन्द्रों पर आयोजित बैठकों में काम करते हुए समझ में आया कि यह एक ऐसी उपजाऊ ज़मीन है जहाँ शिक्षकों के साथ स्कूली शिक्षा के बरअक्स विविधतापूर्ण और सार्थक कार्य किए जा सकते हैं। एक तो शिक्षकों का जो भागीदार समूह होता है वह एक ही क्षेत्र के आसपास के स्कूलों के शिक्षकों का होता है। दूसरा, जन शिक्षा केन्द्र एक ऐसी जगह होती है जो शिक्षकों के लिए बेगानी नहीं होती। तीसरी बात यह कि यहाँ के स्थानीय संसाधनों, जिसमें

होशंगाबाद विज्ञान

शाला संगम केन्द्र का धरातल पर क्रियान्वयन

स्कूल कॉम्पलेक्स का सपना भारत में पूरी तरह से हक़ीक़त में तब्दील नहीं हो सका लेकिन एक कोशिश 1972 में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका) के ज़रिए हुई जिसका असर भी देखने में आया।

होविशिका, मिडिल स्कूलों में विज्ञान शिक्षण का एक कार्यक्रम था जहाँ बच्चे विज्ञान को रटने के बजाय प्रयोग करके सीखें। खोज व पर्यावरण पर आधारित इस कार्यक्रम में बच्चे अपने पर्यावरण से अन्तर्क्रिया करते हुए प्रयोग करके ऐसी परिकल्पनाएँ गढ़ते थे कि वे ख़ुद जाँच सकें। इस कार्यक्रम के केन्द्र में शिक्षक की पेशेवर तैयारी को अहम माना गया था। विज्ञान शिक्षकों को एकमुश्त प्रशिक्षण (21 दिनों का) दिया जाता था। यह भी तय किया गया कि शिक्षकों की रोज़मर्रा की तैयारी के लिए क्षेत्रीय स्तर पर मासिक बैठकों का आयोजन आवश्यक है। इनका प्रयोजन एकमुश्त सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण में शिक्षकों को विज्ञान शिक्षण के पाठ्यक्रम की बारीक़ियों जैसे— विषयगत समझ, प्रयोग करना, प्रयोगों से निष्कर्ष निकालना, परिभ्रमण पर जाना और इसके महत्त्व की समझ व तैयारी से लगाकर शिक्षण की विधि से लैस करना होता है।

(अगर इस कार्यक्रम के बारे में और अधिक जानना हो तो सुशील जोशी द्वारा लिखित व एकलव्य द्वारा प्रकाशित *जश्न-ए-तालीम* को सन्दर्भित किया जा सकता है।)

आसपास का परिवेश– जल, जंगल, खेती-बाड़ी, नदी-तालाब, स्थानीय ऐतिहासिक व प्राकृतिक स्थल शामिल हैं, का परिभ्रमण कर इन्हें सीखने-सिखाने का ज़रिया बनाया जा सकता है जो असल में कक्षा शिक्षण में प्रतिबिम्बित किए जाने की आज की ज़रूरत है।

मध्यप्रदेश के निमाड़ अंचल के आदिवासी ज़िले खरगौन में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन की भागीदारी शिक्षकों को शैक्षिक सम्बल प्रदान करने को लेकर प्रारम्भ से ही रही है। इस दौरान जन शिक्षा केन्द्रों पर शिक्षकों के साथ शैक्षिक विमर्श की क्या सम्भावनाएँ हो सकती हैं और इसे कैसे एक जीवन्त मॉडल के रूप में विकसित किया जा सकता है, इसकी कुछ समझ बनाई जा सकी।

विकासखण्ड स्रोत समन्वयक व जन शिक्षकों के साथ बैठकों में साझी समझ बनी कि मासिक बैठकों में शिक्षकों को अपने अनुभवों व विचारों को व्यक्त करने के अधिक-से-अधिक मौक़े मिलें, उनकी बातों को शिद्दत से सुना जाए, और उन्हें सम्मान मिले। शिक्षकों को अपनी कक्षाओं में क्या पढ़ाना है और उन्होंने पिछले दिनों में क्या पढ़ाया, इसकी समीक्षा करने की गुंजाइश हो। वास्तव में, जन शिक्षा केन्द्र की संकल्पना में यह शामिल है कि ये शिक्षकों के लिए संसाधन केन्द्र हैं जहाँ वे अपने संगी-साथियों के साथ शैक्षिक विमर्श कर सकेंगे। शिक्षकों की शैक्षिक तैयारी के लिए 'शैक्षिक संवाद' मंच की सार्थकता और उपयोगिता के कुछ उदाहरण यहाँ उल्लेखनीय हैं।

पर्यावरण का पाठ

पर्यावरण अध्ययन के लिए यह ज़रूरी है कि शिक्षक बच्चों को कक्षा से बाहर ले जाएँ और उन्हें अपने परिवेश को समझने के मौक़े उपलब्ध कराएँ। इस लिहाज़ से यह ज़रूरी समझा गया कि शिक्षकों को इस प्रक्रिया से गुज़ारा जाए।

पक्षियों से जान पहचान

जन शिक्षा केन्द्र पर शिक्षकों के समूह ने एक तालाब के किनारे की ओर क़दम बढ़ाए। यहाँ उन्होंने पक्षियों का अवलोकन किया और पक्षियों की पहचान, व्यवहार, उड़ान, आवाज़ को क़रीब से निहारा। उल्लेखनीय है कि पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तक में पक्षियों पर एक अध्याय शामिल किया गया है। शिक्षकों को पक्षी दर्शन की प्रक्रिया से गुज़ारा गया ताकि वे अपनी कक्षा के बच्चों को अपने आसपास के पक्षियों का अवलोकन करने के लिए प्रेरित कर सकें।

अवलोकन के बाद कक्षा में लौटकर आए और पक्षियों को लेकर सवाल-जवाब हुए। जैसे– टिटहरी पेड़ों पर क्यों नहीं बैठ पाती? क्या कौआ काणा होता है? इत्यादि।

पाठ्यपुस्तक के अध्याय ('चीं, चीं करती आई चिड़िया', कक्षा चौथी) को पढ़ा गया व एक कार्ययोजना तैयार की गई कि हम बच्चों के साथ कैसे इस कार्य को अंजाम दे सकते हैं। इस कार्ययोजना में प्रमुखता से यह बात उभरी कि बच्चों को अपने आसपास पक्षियों के अवलोकन करने के लिए सैर पर ले जाया जाए। साथ ही

बच्चों के अपने परिवेश के पक्षियों के अवलोकनों को साझा करने पर ज़ोर दिया जाए।

पेड़–पौधों का अवलोकन

एक जन शिक्षा केन्द्र पर शिक्षकों के साथ पेड़-पौधों के अध्ययन का सत्र आयोजित किया गया। पेड़-पौधों के अवलोकन के लिए परिभ्रमण पर सभी शिक्षक गए। शिक्षकों ने पेड़ों की पत्तियों, फूलों, जड़ों आदि का अवलोकन किया।

शिक्षकों ने पत्तियों की जमावट का अवलोकन किया कि वे किस तरह से शाखा या तने पर जमी होती हैं।

इसी दौरान अवलोकन पर आधारित एक और प्रश्न उभरा कि पेड़-पौधों में नई कोंपलें लाल या मेहरून रंग की ही क्यों होती हैं? इस प्रश्न पर कक्षा में आकर चर्चा की गई।

भाषाई कौशलों के विकास के लिए रीडिंग कार्नर

बच्चों को पढ़ने-लिखने के अधिक-से-अधिक अवसर उपलब्ध कराने के लिए रीडिंग कार्नर की स्थापना और उसकी कार्यप्रणाली पर बातचीत की गई। शिक्षकों के साथ काम करने के दौरान देखने को मिला कि अधिकांश स्कूलों में बाल साहित्य के तहत एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित *बरखा* सीरीज़ की किताबों के सेट के अलावा अन्य बाल साहित्य की किताबें भी मौजूद हैं। लेकिन इनका इस्तेमाल बच्चों की पढ़ने की क्षमताओं को विकसित करने के लिए उचित ढंग से नहीं हो पा रहा है। आमतौर पर सप्ताह में एक दिन अन्य किताबों को पढ़ने का पीरियड भर लगा दिया जाता है। शिक्षकों ने शैक्षिक संवाद की बैठक में तय किया कि इसे सप्ताह में एक पीरियड में बाँधने के बजाय भाषा शिक्षण की कक्षा का केन्द्रीय बिन्दु बनाया जाए। अगर बच्चों को पढ़ना सिखाना है तो उन्हें उनकी दिलचस्पी की अधिक-से-अधिक और विविधतापूर्ण किताबें उपलब्ध करवाने की हम कोशिश करेंगे।

कक्षा में प्रिंट रिच माहौल बनाने के लिए कार्य किया गया। बाल कविताओं व कहानियों के पोस्टर्स बनाए गए ताकि कक्षाओं में उनका इस्तेमाल किया जाए।

बैठकों में किए गए काम का असर हुआ और अगली बैठकों में शिक्षकों ने अनुभव साझा किए कि उन्होंने अपनी कक्षाओं में बाल साहित्य उपलब्ध करवाया व अमुक पुस्तक पर बच्चों के साथ पढ़ना सीखने के लिए कार्य किया।

गांधी व प्रेमचंद के बरअक्स

एक जन शिक्षा केन्द्र में प्रेमचंद जयन्ती पर प्रेमचंद की कहानियों पर शिक्षकों से बातचीत की गई। स्कूली पाठ्यक्रम में प्रेमचंद की जानी-पहचानी कहानी 'ईदगाह' पर बातचीत की गई। 'बड़े भाई साहब' कहानी के नाट्य रूपान्तरण का वीडियो दिखाया गया व प्रेमचंद के साहित्य में योगदान पर बातचीत हुई। बातचीत यह भी हुई कि पाठ्यक्रम में कहानियों को शामिल करने का क्या महत्त्व है और इनपर हम कैसे कक्षाओं में बच्चों के साथ काम कर सकते हैं।

ये कुछ मिसालें हैं जो जन शिक्षा केन्द्र स्तर पर शिक्षकों को बाँधकर रख सकी थीं। शिक्षकों द्वारा सीखने-सिखाने को लेकर बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने का परिणाम यह भी हुआ कि कुछ जन शिक्षा केन्द्रों पर दो दिवसीय कार्यशालाओं का आयोजन भी किया जा सका।

इस पूरी प्रक्रिया में बच्चों की बैठक व्यवस्था से लगाकर कई फुटकर मगर अहम मसलों पर भी बातचीत हो सकी। मसलन, कक्षा में बैठक व्यवस्था कैसी होनी चाहिए? क्या यह उचित है कि कक्षा में बच्चों को क़तारबद्ध बैठाया जाए? कक्षा में बच्चों को क़तारबद्ध बैठाने की बजाय अगर गोल घेरे में बैठाया जाए तो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पर क्या असर पड़ेगा आदि को शिक्षकों ने समझने की कोशिश की।

स्कूल कॉम्पलेक्स और राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020

कोठारी आयोग के गठन के बाद तमाम शिक्षा नीतियाँ शिक्षकों की शैक्षिक हैसियत को समृद्ध बनाने की सिफ़ारिशें करती रही हैं। शिक्षकों की सतत शैक्षिक तैयारी की पहचान तो हो सकी मगर सरकारें इसे सही मायनों में धरातल पर उतार पाने में नाकामयाब रही हैं। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2019* के ड्राफ़्ट मसौदे में भी स्कूल कॉम्पलेक्स को सशक्त बनाने की बात को पुन: तल्ख़ी से रेखांकित किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि स्कूलों के समूहों को स्कूल कॉम्पलेक्स का रूप दिया जाए जिससे संसाधनों का साझा उपयोग सुगम बने और स्थानीय स्तर पर कुशल एवं प्रभावी गवर्नेंस सुनिश्चित हो। नई शिक्षा नीति चिन्ता व्यक्त करती है कि भारत ने प्राथमिक स्तर पर लगभग शत प्रतिशत नामांकन हासिल कर लिया है। इस सन्दर्भ में यह प्रशंसनीय उपलब्धि है मगर काम अभी पूरा नहीं हुआ है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, कोठारी आयोग की ही उस बात को कहती है कि स्कूल कॉम्पलेक्स का उपयोग उस घोर अलगाव को समाप्त करने में किया जाएगा जिसमें छोटे स्कूलों के शिक्षक आज काम करते हैं। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* यह भी कहती है कि स्कूल कॉम्पलेक्स की मुख्य ज़िम्मेदारी शिक्षकों की सतत पेशेवर तैयारी का केन्द्र होगी।

उपसंहार में यही कहा जा सकता है कि जन शिक्षा केन्द्रों पर शिक्षकों के साथ शैक्षिक विमर्श के अनुभव उम्मीद जगाते हैं। शिक्षक अपनी कक्षाओं में बेहतर शिक्षण करना चाहते हैं। जन शिक्षा केन्द्र पर कार्य करने के मेरे अनुभव सीमित ही कहे जा सकते हैं। लेकिन अनुभवों से समझ में आया कि स्थानीय स्तर पर जन शिक्षा केन्द्रों पर शैक्षिक विमर्श काफ़ी सार्थक होता है।

कालू राम शर्मा ने लगभग तीन दशक तक शैक्षिक संस्था एकलव्य और विद्या भवन सोसायटी के साथ काम किया है। वे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण और सामाजिक सरोकारों के विषयों पर निरन्तर लिखते रहते हैं। आपने *बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश* व *खोजबीन* पत्रिकाओं का सम्पादन किया है। आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें *खोजबीन का आनन्द, अंडे ही अंडे, छोटे जीवों से जान पहचान* और नव साक्षरों के लिए लिखी किताबें प्रमुख हैं। विगत 9 वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम कर रहे हैं।

सम्पर्क : kr.sharma@azimpremjifoundation.org

विज्ञान किताबों में और किताबों के बाहर... कुछ अनुभव

एन सरिता

अपेक्षा की जाती है कि बच्चों के लिए विज्ञान की पढ़ाई के तरीक़े और प्रक्रियाएँ उनकी जिज्ञासा और रचनात्मकता पोषित करने वाली होनी चाहिए। इस लेख में विज्ञान शिक्षण के कुछ ऐसे ही कक्षा अनुभव आधारित सार्थक प्रयासों की चर्चा की गई है। लेख में शिक्षक द्वारा कक्षा 6 से 8 की विज्ञान किताबों में दी गई विषयवस्तु को पढ़ाने के लिए उपयोग की गई शिक्षण सामग्री और प्रक्रियाओं के कई उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। यह उदाहरण पाठ्यपुस्तक में दर्ज ज्ञान को बच्चों के परिवेश, पर्यावरण और आम जीवन से रोचकता से जोड़ते हैं। लेख विज्ञान की अच्छी पढ़ाई में पाठ्यपुस्तक की सीमाओं पर भी प्रश्न उठाता है।

पिछले पाँच सालों से मैं राजस्थान के प्रतापगढ़ ज़िले में विज्ञान शिक्षक के रूप में कार्य कर रही हूँ। कक्षा 6 से 8 में बच्चों के साथ विज्ञान विषय का शिक्षण करवाते हुए बहुत-से अनुभव हुए जिनके द्वारा मुझे हर बार अपने शिक्षण के तरीक़ों पर सोचने और कुछ नया करने की प्रेरणा मिली।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 को पढ़कर समझ बनी कि विज्ञान शिक्षण के दौरान बच्चों को ऐसा माहौल मिले जिसमें उन्हें चीज़ों और घटनाओं को बारीक़ी से देखने, समझने, आँकड़े जुटाने, अवधारणाओं पर सवाल कर उन्हें जाँचने हेतु प्रयोग करने के साथ ही विज्ञान के तथ्यों को अपने परिवेश, समाज से जोड़कर देखने, समझ पाने, सवाल उठाने हेतु ख़ुद को तैयार कर पाने के मौक़े मिलें। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए कुछ प्रयास मैंने अपने स्कूल में बच्चों के साथ किए जिनमें से कुछ आपके साथ साझा हैं।

विषयवस्तु का परिवेश से जुड़ाव

कक्षा 6 व 8 की विज्ञान पाठ्यपुस्तक में प्राकृतिक और संश्लेषित रेशों वाले अध्याय में रेशों की समझ के लिए मैंने बच्चों को घर से कुछ पुराने कपड़ों (जो उपयोग में नहीं आ रहें हों) या कपड़ों की कतरन लाने को कहा। बच्चे अगले दिन बहुत-से कपड़ों की कतरन एवं टुकड़े ले आए। बच्चों को समूहों में हर कपड़े को बारीक़ी से देखकर, इसके रेशों को निकालकर इनके प्रकार, अर्थात सूती, रेशमी, ऊनी एवं प्राप्ति स्रोतों पर बात की गई साथ ही पाठ्यपुस्तक से इन बातों को जोड़कर पढ़ाया गया। बच्चों ने इन कतरनों को चार्ट पर चिपकाया और सम्बन्धित रेशों को उनके नीचे लिखते हुए चार्ट को कक्षा में लगा दिया। बच्चे अब पाठ की विषयवस्तु को अपने पहने और घर पर रखे कपड़ों से सीधे जोड़कर देख रहे थे।

विभिन्न रेशों के नमूनों को चार्ट में चिपकाकर प्रस्तुति

इस पूरी प्रक्रिया में कक्षा 6 के छोटे बच्चों की, जिन्हें इन कतरनों को चिपकाने में दिक़्क़त आ रही थी, उनके साथियों ने मदद की। यहाँ अनायास ही एक सहयोग की भावना बच्चों में देखने को मिली कि किस प्रकार बच्चे सहयोग की महत्ता और आवश्यकता समझते हैं।

करके देखना, समझना

कक्षा 6 की पाठ्यपुस्तक के अध्याय 'पौधों के प्रकार एवं भाग' एवं कक्षा 8 में 'पौधों में जनन' में पौधों के विभिन्न भागों एवं प्रजनन को
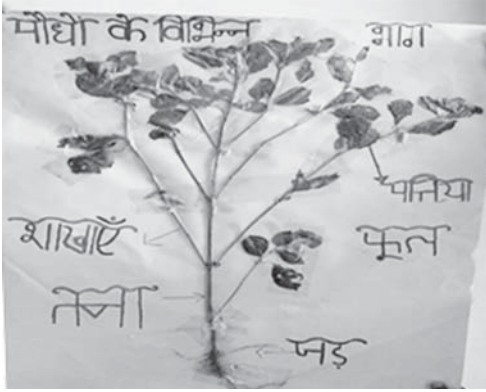
पौधों के विभिन्न भागों कों दर्शाता चार्ट

समझाने के लिए मुझे सिर्फ़ किताब और बोर्ड का सहारा लेना उचित नहीं लगा, सो अंकुरण एवं कायिक जनन को समझाने के लिए मैंने बच्चों से विद्यालय के बग़ीचे में बीज बोने को कहा साथ ही आलू को बो कर पौधा उगने की पूरी प्रक्रिया से बच्चों को गुज़ारा। हालाँकि प्रक्रिया थोड़ी लम्बी थी पर अवधारणा को समझने की इस जुगत में बच्चे हर बारीक़ी को समझते और मनोयोग से जुटे रहते।

ऐसे ही पौधों के भागों को समझने के लिए बाहर लगे कुछ पौधों को उखाड़कर बच्चों को विभिन्न प्रकार की जड़, पत्तियों आदि के बारे में बताया। बच्चे अगले दिन अपने घर के आसपास से मूली व कुछ दूसरे पौधों को उखाड़कर लाए और उनकी जड़ों, पत्तियों के बारे में आनन्द के साथ बताया। किताब में पौधे के नामांकित चित्र को देखकर बच्चों ने साथ लाए पौधों को चार्ट पर चिपकाया और इसके भागों को नामांकित कर कक्षा में भी लगाया।

ज़रूरत है बच्चों पर विश्वास जताने की

बच्चों के साथ एक बार कक्षा 6 के पाठ 'सूक्ष्मजीव' एवं 'कोशिका' पर काम करते हुए मैंने उनको सूक्ष्मदर्शी बताया। बच्चों ने पहले थोड़ा सकुचाते हुए उसे छुआ। शायद बच्चों को इसके महँगा होने का अन्देशा था, सो वे इसे बहुत सावधानी से छू एवं देख रहे थे। मेरे द्वारा आराम से देखने की निश्चिन्तता को भाँपते हुए सभी बच्चों ने इसे एवं इसके भागों को ध्यान से देखा व मुझसे समझा। जब बच्चों ने इसमें वस्तुओं को बड़े आकार में देखा तो मैं उनके चेहरों पर ख़ुशी और आश्चर्य साफ़ देख पा रही थी। वे एक दूसरे को उत्सुकता से बता भी रहे थे। बच्चों को मैंने इसमें प्याज़ की झिल्ली दिखाई और किताब के चित्र से उसकी तुलना करने को कहा। बच्चों ने कहा, 'अरे ये तो बिलकुल ऐसा ही दिख रहा है'। बच्चों को जब बाहर टाँके के पुराने पानी की बूँदें इसमें दिखाईं तो उन्होंने कहा कि इसमें

सूक्ष्मदर्शी की सहायता से पानी की बूँद में सूक्ष्मजीवों का अवलोकन करती छात्राएँ

गुब्बारे एवं नलिकाओं द्वारा मानव उत्सर्जन तंत्र को दर्शाता चार्ट मॉडल

कुछ छोटी-छोटी चीज़ें दिख रही हैं जो हिल भी रही हैं। यहाँ बच्चों के साथ मैंने सूक्ष्मजीवों पर बात की जिसके बाद तो देखने की एक होड़-सी लग गई। मैं ख़ुश थी, बच्चे रुचि के साथ इसे देख समझ रहे थे।

कक्षा 7 के कुछ टॉपिकों अर्थात उत्सर्जन तंत्र, कंकाल तंत्र आदि को पढ़ाने के लिए एक तरीक़ा अपनाया जिसमें इन तंत्रों को पढ़ाने के

पुरानी वस्तुओं और गत्ते की मदद से बना मोटर साइकिल का छोटा मॉडल

साथ-साथ बच्चों से कुछ सृजनात्मक कार्य भी करवाए। इनमें गुब्बारों, पुरानी नलियों से चार्ट पर इन तंत्रों के मॉडल बनाना ताकि विभिन्न अंगों की स्थिति के साथ उनकी संरचना, उनके काम पर भी समझ बने। बच्चों का थोड़ा मार्गदर्शन किया गया जिसमें कुछ बच्चे चार्ट पर सम्बन्धित तंत्र का चित्र बनाते और फिर समूह में बाक़ी बच्चे नलिकाओं, अंगों के प्रतिरूप के रूप में स्ट्रॉ एवं गुब्बारे इत्यादि लगाते। बच्चों के लिए इन चार्टों को बनाते समय अंगों की संरचना को समझना और प्रतीकात्मक रूप से इसे प्रदर्शित करना रुचिकर तो था ही, साथ ही इसके बारे में जानने की जिज्ञासा भी उनमें देख पा रही थी।

मुझे लगने लगा था कि बच्चे विज्ञान को पढ़ने में थोड़ा आनन्द लेने लगे हैं और खुलकर बात करने लगे हैं। मैंने कुछ और गतिविधियाँ भी उनके साथ कीं। पाठ को पढ़ने के लिए उनमें एक उत्सुकता रहने लगी थी। इसी उत्सुकता एवं सहजता के चलते बच्चों से कुछ नाटक करवाए।

सामाजिक मान्यताएँ और विज्ञान

बच्चे अपने आसपास के समाज में घट रही चीज़ों को समझें और तर्क करें इसको लेकर कुछ बीमारियों जैसे– चेचक को लेकर बच्चों से रोल प्ले करवाया। बच्चों ने अपने किरदारों द्वारा बीमारियों को लेकर झाड़-फूँक, अस्पताल न जाना जैसे मुद्दों को काफ़ी रुचि एवं जीवन्तता से प्रस्तुत किया। शायद ये उनके द्वारा परिवेश से अनुभवजन्य था। बच्चों के साथ बीमारियों के वैज्ञानिक पहलुओं एवं सामाजिक धारणाओं, अन्धविश्वासों पर बात करने का मुझे यह एक बेहतर मंच लगा।

कोरोना काल में ऑनलाइन मंच का उपयोग

कोरोना संक्रमण के समय जब स्कूल बन्द थे तब बच्चों की पढ़ाई सम्बन्धी कुछ करने की बात मन में आ रही थी। घर के बग़ीचे में काम करते समय मन में ख़्याल आया कि क्यों न कक्षा 6 से 8 की विषयवस्तु 'पेड़-पौधों के अध्ययन' का वीडियो बनाकर बच्चों तक पहुँचाया जाए। आमतौर पर स्थानीय सन्दर्भ के

बीपी उपकरण से बच्चों का रक्तचाप मापन करती शिक्षिका

पत्तियों से बनी विभिन्न पशु-पक्षियों की आकृति

अनुसार ऑनलाइन वीडियो मिलने मुश्किल होते हैं या कई बार ज़्यादा अँग्रेज़ी टर्म प्रतापगढ़ जैसे ज़िले के बच्चों, जिनका एक्सपोज़र कम हो, को विषयवस्तु समझने में समस्या पैदा करती हैं।

मेरी बिटिया ने वीडियो बनाने में मेरी मदद की और हमने बग़ीचे व आसपास के पौधों के विभिन्न भागों पर आधारित वीडियो बनाया और यू-ट्यूब चैनल के माध्यम से बच्चों तक पहुँचाया, ताकि बच्चे पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु को पढ़कर एवं वीडियो द्वारा समझ बना सकें। बच्चों ने इसे देखा और समझा। हालाँकि इस वीडियो की पहुँच सभी बच्चों तक नहीं हो पाई जिसके लिए अभी मैं प्रयासरत हूँ।

पहल को मिला साथ

चूँकि विद्यालय में सहायक सामग्री, स्टेशनरी आदि का सीमित बजट होता है, सो शुरू में बच्चों के लिए कई बार गोंद, चार्ट, काग़ज़, रंग आदि को मैंने अपने पैसों से भी

पुष्प के जननांगों का चित्रण दर्शाता चार्ट

चार्ट के माध्यम से समूह को पुष्प के जननांगों के बारे में बताती छात्राएँ

ख़रीदा और बच्चों के साथ काम किया। बाद में हमारे पंचायत प्रारम्भिक शिक्षा अधिकारी (पीईईओ) सर द्वारा न सिर्फ़ मेरी इस पहल को सराहा गया बल्कि आगे इन गतिविधियों के लिए उन्होंने, बजट मुद्दा नहीं रहेगा, इस हेतु आश्वस्त किया।

कक्षा में काम और चुनौतियाँ

समझ के भिन्न स्तर

कक्षा में विज्ञान पढ़ाते समय मुझे यह अनुभव हुआ कि कई बार किसी विषयवस्तु को मैंने बहुत लगन से पढ़ाया, पर आकलन करने पर ऐसा नहीं लगा कि सभी बच्चे उसे वैसा ही समझ पाए। कई बार बच्चे विषयवस्तु पर अपनी एक समझ बना लेते जो मूल अवधारणा से मेल नहीं खाती थी। यहाँ से एक बात समझ आ रही थी कि सभी बच्चों को समझ के स्तर पर एक जैसा मानकर शिक्षण करवाना न्यायपूर्ण नहीं है।

पाठ्यपुस्तक, उदाहरण एवं परिवेश

पाठ्यपुस्तक में विषयवस्तु की समझ को लेकर बहुत बार पर्याप्त उदाहरण नहीं होते या गिने चुने उदाहरण ही होते हैं, जिससे बच्चे इसे अमूर्त मान लेते हैं और अपने परिवेश से जोड़कर देख नहीं पाते। यहाँ मुझे अनुभव हुआ कि पढ़ाए जाने वाले अवधारणा बिन्दुओं को पाठ्यपुस्तक के उदाहरण के साथ-साथ बच्चों के परिवेश से लिए गए अन्य उदाहरणों से जोड़कर बताना

होगा, ताकि वे विज्ञान को पाठ्यपुस्तक के बाहर अपने आसपास भी देख, समझ सकें।

शिक्षण प्रक्रिया बोझिल तो नहीं हो रही

कक्षा में काम करते हुए यह समझ आया कि जब मैं बच्चों को हाथ से कुछ करने, बाहर मैदान में जाकर पौधों को देखने छूने, घर से कुछ चीज़ें बनाकर लाने जैसे क्रियाकलाप उनके साथ करती या करने के अवसर देती, बच्चे ज़्यादा सतर्क, सक्रिय व कक्षा में भागीदार रहते। किताब की विषयवस्तु को सीधा या ब्लैकबोर्ड पर पढ़कर बताने की तुलना में इस तरह से करवाने में उनमें रुचि भी अधिक आती है। मुझे यह भी समझ आया कि सीखने के दौरान बच्चे अपनी सभी ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करते हैं तो इससे रोचकता होने के साथ ज्ञान स्थाई भी होता है। किताब की विषयवस्तु को एक ही तरीक़े से लगातार पढ़कर बता देना शिक्षण प्रक्रिया को बोझिल बना देता है।

इन छोटे-छोटे प्रयासों द्वारा मेरी कोशिश है कि विज्ञान को सिर्फ़ पाठ्यपुस्तक एवं तथ्यों को रटने तक सीमित न मानकर बच्चे करके सीखें, अपने आसपास इन अवधारणाओं का जुड़ाव महसूस करें और सामाजिक दायित्वों को समझें व तर्क करें। हालाँकि इसमें मैं अभी पूर्णतः सफल नहीं हो पाई हूँ, पर मेरे प्रयास जारी हैं।
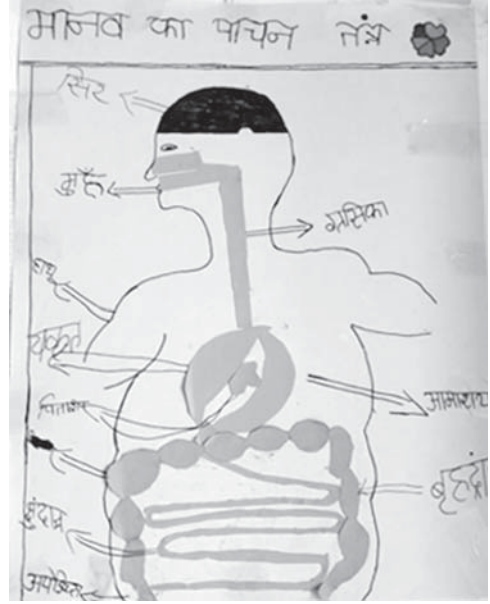
मानव पाचन तंत्र को दर्शाता गत्ते से बना चार्ट मॉडल

एन सरिता को प्रारम्भिक कक्षाओं में पढ़ाने का 12 वर्षों का अनुभव है। वर्तमान में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय असावत, प्रतापगढ़ (राजस्थान) में शिक्षक हैं। वे कक्षा 6 से 8 के बच्चों को विज्ञान पढ़ाती हैं। बच्चों की पढ़ाई के लिए विज्ञान मॉडल बनाने में उनकी विशेष रुचि है।

सम्पर्क : nandgopalsarita001@gmail.com

बाल शोध प्रक्रिया, कक्षा अवलोकन : एक अनुभव

शिशिर चन्द्र नायक

एक शिक्षक द्वारा अपनी कक्षा में कुछ नया करने के प्रयास के बारे में है, यह लेख। लेखक बताते हैं कि कैसे उन्होंने और शिक्षक ने मिलकर इस नई कोशिश के बारे में सोचा, इस कोशिश को क्रियान्वित करने की तैयारी की। लेख विस्तार से एक उदाहरण प्रस्तुत करता है कि एक थीम को लेते हुए शिक्षक कक्षा में विभिन्न विषयों पर किस तरह काम कर सकते हैं। साथ ही यह भी कि बच्चों के साथ काम करने का तरीक़ा क्या हो, कैसे उनके सामने अवधारणा को प्रस्तुत किया जाए, यह सोचना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह इस बात से सीधा जुड़ता है कि बच्चे एक कक्षा में क्या-क्या सीख सकते हैं। सं.

बहुत-से शिक्षक अपनी समझ से बच्चों के साथ लगातार सीखने-सिखाने के कार्य में लगे रहते हैं। वे अपने काम को बेहतर करने के लिए नए-नए मौक़े तलाशते रहते हैं। यदि ऐसे शिक्षकों को थोड़ा सहयोग और सही मार्गदर्शन मिल जाए तो वे बहुत कुछ कर सकते हैं। इस लेख में ऐसे ही एक शिक्षक के साथ कार्य करने और उनकी कक्षा के अवलोकन के आधार पर हुए अनुभव को प्रस्तुत किया जा रहा है।

नवीन शासकीय प्राथमिक शाला, वार्ड नम्बर 4 बेमेतरा में कार्यरत एक शिक्षक हमेशा अपनी कक्षा में कुछ-न-कुछ नवाचार करते रहते हैं। उनका कहना है कि अगर हम विषय की प्रकृति के अनुरूप और बच्चों के पूर्व ज्ञान व सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए शिक्षण विधि का चयन करें, तो वे किसी भी अवधारणा को बेहतर समझ के साथ सीख सकते हैं। यहाँ उन्हें यह महसूस हुआ कि बाल शोध विधि से वे बच्चों के साथ नए तरीक़े से कार्य कर सकते हैं, जिसमें बच्चों को स्वयं करके सीखने, प्रश्न पूछने एवं खोजने के अवसर मिल सकते हैं। इसके साथ ही, बच्चों में बुनियादी दक्षता और कौशल जैसे– अवलोकन, खोजबीन, तर्क करना, अनुमान लगाना, विश्लेषण करना आदि भी विकसित हो पाएँगे।

इसके लिए शिक्षक ने हमसे मिलकर कार्य करने का आग्रह किया। हमने मिलकर पाठ्यपुस्तक में 'पानी' थीम से सम्बन्धित पाठों का विश्लेषण करने और शिक्षण योजना बनाने का काम किया। कुल 20 दिनों की योजना बनाई। जैसा योजना में तय हुआ था शुरुआती चार दिन तक हमने साथ मिलकर कक्षा संचालन किया। उसके उपरान्त वे स्वयं गतिविधियाँ कराने लगे, इस बीच वे रोज़ शाम को अपना अनुभव सुनाते और सुझाव माँगते रहे। इस पूरी प्रक्रिया के कुछ अंशों का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :

सबसे पहले चौथी कक्षा के 18 उपस्थित बच्चों से इस बारे में चर्चा की गई। उनके साथ मिलकर उनकी रुचि, इच्छा और ज़रूरत को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण अध्ययन अन्तर्गत 'पानी' थीम का चयन किया।

थीम चयन के बाद छत्तीसगढ़ राज्य में चल रही कक्षा 4 के लिए पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तक में पाठों को देखा गया कि

कौन-कौन से 'पानी' थीम से सम्बन्धित हैं। वे पाठ हैं– 'पानी रे पानी', 'नाव चली भाई नाव चली', 'पानी की ख़ासियत' और 'कौन मिलेगा कहाँ'। इस दिशा में कार्य करते हुए इन पाठों की अवधारणा, कौशलों और मूल्यों के विकास को ध्यान में रखते हुए आगामी कार्य योजना तैयार की गई।

इन सभी पाठों के उद्देश्यों को मिलाकर प्रमुख उद्देश्य तय किए गए, जो इस प्रकार थे :

- बच्चे अपने परिवेश में उपलब्ध पानी के प्राकृतिक स्रोतों की पहचान कर सकें।
- दैनिक जीवन में पानी के सही उपयोग और महत्त्व को समझ सकें।
- मानव सभ्यता के विकास में पानी के महत्त्वपूर्ण योगदान को समझ सकें। साथ ही, पानी पर चलने वाली नाव एवं अन्य वाहनों के बारे में समझ विकसित कर सकें।
- प्राकृतिक संसाधनों के बचाव, उनसे सम्बन्धित प्रदूषण और उसके बुरे प्रभावों के बारे में समझ बना सकें।
- प्रयोग करते हुए पानी के गुणधर्म के बारे में विचार कर सकें।
- 100 परिवारों का सर्वे करते हुए बच्चे डाटा एकत्रित करना सीख सकें, डाटा को विश्लेषित करने और निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया में सक्रियता से जुड़ सकें। साथ ही, पानी के प्रति संवेदनशील हो सकें।
- बच्चों को मिल-जुल कर काम करने, आपसी सहयोग, बन्धुत्व, परोपकार, न्याय, समानता जैसे मूल्यों से परिचित कराना, ताकि वे इन मूल्यों को अपने व्यावहारिक जीवन में उपयोग में ला सकें।
- पानी को मापते हुए बच्चों को मापन की इकाइयों को समझने में मदद करना।

उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शिक्षक कक्षाएँ आयोजित करने लगे, जिनमें पानी के स्रोत, उपयोगिता, पानी में चलने वाले वाहन, पानी से सम्बन्धित सवालों का निर्माण करना, प्रयोग करते हुए पानी के गुणधर्म समझना आदि बिन्दुओं पर चर्चा की गई थी। जैसे कि कक्षा के पहले दिन के शिक्षण का उद्देश्य था बच्चों के पानी के स्रोत एवं उपयोग से सम्बन्धित उनके पूर्व ज्ञान को जानना जिस हेतु हमने बच्चों से प्रश्नोत्तर व कार्यपत्रक के माध्यम से बच्चों से कुछ सवाल पूछे जैसे– (1) हमारे आसपास पानी के स्रोत कहाँ-कहाँ दिखाई देते हैं, और (2) हम पानी का उपयोग कहाँ-कहाँ और कितनी मात्रा में करते हैं।

बच्चों ने अनुभव व सन्दर्भ के अनुसार अपनी प्रतिक्रियाएँ दीं जैसे कि उनके आसपास उपलब्ध पानी के स्रोत कुआँ, तालाब, नदी को ही वे जानते थे पर सागर, महासागर, झरना जैसे स्रोतों से वे अनभिज्ञ थे। इससे परिचित कराने के लिए हमने बिग बुक के माध्यम से उपरोक्त स्रोतों के फ़ोटो दिखाए व यू-ट्यूब के माध्यम से कुछ वीडियो दिखाए गए और पानी के कुछ और स्रोतों के फ़ोटो दिखाकर उन्हें समूह में चर्चा करने के लिए कहा गया। कुछ समय बाद उन्हें इसका प्रस्तुतीकरण देना था जिसमें फ़ोटो में दिख रही गतिविधियों, उस स्रोत से सम्बन्धित उनके ज्ञान, उपयोग, संरक्षण आदि से सम्बन्धित अपनी बातों को रखना था।

दूसरे दिन की गतिविधि का उद्देश्य बच्चों को पानी की उपयोगिता व संरक्षण के सम्बन्ध में संवेदनशील बनाना था अतः इस कार्य के लिए हमने कार्यपत्रक बनाया :

बच्चों ने इस कार्यपत्रक को आधार बनाकर अपने परिवार के सदस्यों द्वारा किए जाने वाले जल उपयोग से सम्बन्धित आँकड़े एकत्र किए। समूह में चर्चा और आँकड़ों का विश्लेषण कर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि धरती पर मौजूद पानी एक बहुमूल्य सम्पदा है जिसका हमें आवश्यकतानुसार ही उपयोग करना चाहिए

परिवार के सदस्यों के नाम	कुल सदस्य				
नाम		(साधन / कहाँ से / स्रोत)	कितना पानी पूरे परिवार के लिए	घर से स्रोत की दूरी	गर्मियों में पानी प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है?
लिंग : महिला / पुरुष	पीने के लिए				
उम्र :	नहाने के लिए				
	कपड़े धोने के लिए				
	खाना पकाने के लिए				
	अन्य कार्यों के लिए				
	जानवरों के पीने के लिए				
	खेती के लिए				

और उसके संरक्षण की दिशा में सदैव प्रयासरत रहना चाहिए।

इसी तरह आगे के 10–12 दिन पानी की ही थीम से सम्बन्धित अन्य अवधारणाओं पर कार्य किया गया। लेख में आगे इसी थीम पर हुई एक कक्षा के अवलोकन का विस्तार से वर्णन है।

कक्षा–कक्ष प्रक्रिया का अवलोकन

आज शिक्षक की योजना बच्चों में मापन की अवधारणा को स्पष्ट करने एवं समूह में कार्य करने के कौशल विकसित करने की थी। मैंने पाया कि वे बच्चों के साथ इन बिन्दुओं पर काम कर रहे हैं :

- विभिन्न वस्तुओं में पानी की मात्रा का अन्दाज़ लगाना; और
- दैनिक जीवन में वस्तुओं की निश्चित या अनिश्चित मात्रा की उपयोगिता का पता करना, मापक बनाना और सही उपयोग को समझना।

इस दौरान वे जिन सहायक शिक्षण सामग्रियों का उपयोग कर रहे थे, निम्नानुसार थीं :

ड्रॉपर, गिलास, मापक बर्तन, कटोरी, चम्मच 1 मिली, 5 मिली, 10 मिली, 15 मिली (लिक्विड दवाई के इस्तेमाल में प्रयुक्त होने वाली), 250 मिली एवं 500 मिली और 1 लीटर की बॉटल (कोल्ड ड्रिंक की)

सबसे पहले शिक्षक ने बच्चों के पूर्व ज्ञान को समझने के लिए मापन से सम्बन्धित कुछ सवाल पूछे, जैसे :

- नाक या कान में डालने वाली दवा को किससे मापते हैं?
- क्या पीने वाली दवा निश्चित मात्रा में ली जाती है? उसे कैसे मापते हैं?
- यदि दवा की मात्रा कम या ज़्यादा हो जाए तो क्या होगा?
- 1 किग्रा आटे को गूँथने के लिए कितनी मात्रा में पानी चाहिए? अगर पानी कम या ज़्यादा हो जाए तो क्या होगा?
- 5 मिली को कैसे दिखाएँगे?
- 1 लीटर में कितने मिली होते हैं?

बच्चों के जवाब से एक चीज़ जो समझ में आ रही थी कि मिली (मिलीलीटर) एवं लीटर को समझने में बच्चों को परेशानी हो रही थी। बच्चों की ओर से जो भी जवाब आ रहे थे, मात्र जानकारी तक सीमित थे; जैसे– दवाई लेने के दौरान मम्मी कहती हैं कि आपको बुख़ार है, 5 मिली दवाई लेना है। लेकिन वास्तव बच्चे ने कभी बारीक़ी से उस मात्रा को देखा नहीं था। उसका अवलोकन नहीं कर पाए थे। इसी तरह जब दूध लेने के लिए दुकान जाते हैं तो ½ लीटर दूध लेकर आते हैं। लेकिन ½ लीटर में कितना मिली होता है? इसका भी कोई जवाब नहीं था।

इसके बारे में समझ बनाने के लिए शिक्षक ने कक्षा के बच्चों को 4 समूहों में बाँट दिया। दो समूहों में 4-4 और अन्य दो समूहों में 5-5 बच्चे थे। हरेक समूह को सहायक शिक्षण सामग्री; जैसे– ड्रॉपर, चम्मच, कोल्ड ड्रिंक्स की बॉटल आदि दी। फिर उन्होंने सभी समूहों को 1 मिली वाले ड्रॉपर में पानी भरने कहा। सभी बच्चों ने उसे जल्दी से भर लिया।

शिक्षक ने फिर से सवाल किया कि जो पानी ड्रॉपर में भरा है वह 1 मिली है तो ड्रॉपर में कितनी बूँद पानी होगा? सभी बच्चे सोचकर अपना तर्क दे रहे थे; जैसे– 1 बूँद, 4 बूँद, 5 बूँद, 10 बूँद आदि। फिर शिक्षक ने सभी के सामने ड्रॉपर में 1 मिली पानी लिया और ड्रॉपर से पानी की एक-एक बूँद को नीचे गिराना शुरू किया। उन्होंने बच्चों से गिनने कहा। बच्चे गिनने लगे। इस तरह पता चला कि 1 मिली में कुल 15 बूँद पानी था।

इसकी अगली कड़ी में शिक्षक ने बच्चों को 5 मिली के चम्मच का अवलोकन करने को कहा। शिक्षक ने बच्चों से चम्मच में जहाँ 5 एमएल लिखा है, वहाँ तक पानी भरने को कहा। सभी समूहों के बच्चों ने 5 एमएल तक पानी डालकर देखा। फिर इसी तरह शिक्षक ने बच्चों को समूह में क्रमशः 10, 15, 20, 40, 50 एवं 100 एमएल तक पानी भर प्रायोगिक रूप से अपने अनुभव से मिली की समझ विकसित करने का पर्याप्त

अवसर दिया। तत्पश्चात 250, 500 एमएल और 1 लीटर के सम्बन्ध में प्रायोगिक रूप से समझ बनाने के लिए कोल्ड ड्रिंक्स की बॉटल का इस्तेमाल किया। जब बच्चे समूह में कार्य कर रहे थे तब एक दूसरे के साथ सहयोग करते हुए काम कर रहे थे। एक बच्चा अगर चम्मच में पानी भर रहा था तो दूसरा बच्चा अवलोकन को नोट कर रहा था कि पानी की मात्रा कितनी है। उसी समूह का तीसरा बच्चा बाक़ी लोगों को समूह के अवलोकन बता रहा था। इस प्रकार बच्चे आपस में एक दूसरे को सहयोग करते और ज़िम्मेदारी बाँटते हुए कार्य कर रहे थे।

इस पूरी प्रक्रिया में बच्चे बहुत ही दिलचस्पी के साथ मापन हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले मानक मिलीलीटर और लीटर की अवधारणा को समझ के साथ सीख रहे थे।

अवलोकन उपरान्त शिक्षक से चर्चा

शिक्षक का कहना है कि बच्चों को जब किसी भी अवधारणा को स्वयं से करके समझने का अवसर मिलता है तो वे सीखने में काफ़ी रुचि लेते हैं और अवधारणा की ठोस समझ बना लेते हैं। प्रायोगिक विधि से और करके सीखने से बच्चों में अनुमान लगाना, अवलोकन करना, विश्लेषण करना, तर्क करना, निष्कर्ष निकालना आदि जैसे कौशल व क्षमता विकसित होते हैं। जैसे– बच्चे ध्यानपूर्वक देख रहे थे कि ड्रॉपर में एक मिली में और 5 मिली में कितनी बूँदें आईं, वे मिली और लीटर में सम्बन्ध भी जोड़ पा रहे थे एवं पानी की मात्रा का भी अनुमान लगा पा रहे थे।

इसके साथ ही जब उपरोक्त गतिविधियाँ की जा रही थीं, तब बच्चे आवश्यकतानुसार एक दूसरे की सहायता कर रहे थे। जैसे– किसी लड़के के पास ड्रॉपर नहीं था तो वह दूसरी लड़की से ड्रॉपर माँगकर गतिविधि कर रहा था, वहीं दूसरी ओर कई जगह बच्चे पूरी प्रक्रिया का दस्तावेज़ीकरण करने में मदद करते हुए दिखाई दे रहे थे। इसी तरह समूह भी एक दूसरे की मदद कर रहे थे। इस प्रकार बच्चे बिना किसी लैंगिक भेदभाव के एक दूसरे का सहयोग करते हुए दिखाई दे रहे थे, जबकि शिक्षक साथी को शुरुआत में बच्चों को समूह में कार्य करवाने में समस्या होती थी।

वे अपने हिसाब से जो साथी थोड़ा नज़दीक हैं, उनके साथ बैठना, बातचीत करना पसन्द करते थे। बच्चे कक्षा में हमेशा उस समूह में जाना चाहते थे जिस समूह के बच्चों को थोड़ा अवधारणात्मक ज्ञान होता था। वे शिक्षक की बातों से यह समझ जाते थे कि किन बच्चों को यह अवधारणात्मक समझ है। जिन बच्चों को शिक्षक कमज़ोर मानते थे, उस समूह में कोई भी जाना नहीं चाहता था। यानी शुरुआत में एक दूसरे के प्रति सहयोग करना, साथ में मिलकर सीखना, एक दूसरे को सम्मान की नज़र से देखना, इत्यादि बच्चों के व्यवहार में नहीं था। लेकिन जैसे-जैसे बच्चों को नियमित रूप से समूह में कार्य करने के अवसर मिलते गए, बच्चे अपने-आप ही धीरे-धीरे समूह में कार्य करने के महत्त्व को समझने लगे। इसके साथ ही, सहयोग करके सीखना, एक दूसरे का सम्मान करना जैसे मूल्यों का भी विकास होता दिखाई दिया।

इसके साथ ही उन्होंने समूह में चर्चा करने के कौशल को भी बख़ूबी ग्रहण किया। समूह में जब भी उन्हें अपनी बात कहनी होती, वे अन्य साथी की बात समाप्त होने का इन्तज़ार करते थे। अगर वे किसी की बात से असहमति रखते, तो उसे सम्मानपूर्वक दर्ज करते थे और अपने विचार स्वतंत्र रूप से रख रहे थे जिससे आगे चलकर किसी भी सामाजिक-राजनीतिक मुद्दे पर उन्हें अपना मत रखने और वाद-विवाद करने में काफ़ी सहायता मिलेगी।

इस प्रकार बच्चों में सहयोग, बन्धुत्व, न्याय और सम्मान जैसे मूल्यों का विकास होता हुआ नज़र आ रहा था।

विषयों की चहारदीवारी से बाहर यानी एकीकृत शिक्षण की झलक

शिक्षक ने महसूस किया कि पूरी प्रक्रिया के दौरान बच्चों में पर्यावरण, गणित व भाषा, तीनों विषयों के कौशल विकसित हो रहे थे। जैसे शुरुआत में बच्चों को पानी विषय से परिचित कराते वक़्त हमने बच्चों को पानी से सम्बन्धित प्रचलित लोककथाओं, कविता व कहानियों को पता करके आने के लिए कहा था और उनपर चर्चा भी की गई थी, इसमें भाषागत कौशल पर ध्यान केन्द्रित करते हुए शिक्षण किया गया जिसमें बच्चों को अपनी बात रखने, तर्क और कल्पना करने के पर्याप्त अवसर मिले। इसी प्रकार मिली व लीटर की अवधारणा समझते समय बच्चों ने गणित विषय में मौजूद मापन की पूरी अवधारणा को समझ लिया जिसके माध्यम से बच्चों में सामान्यीकरण करना, वर्गीकरण करना, अनुमान लगाना, समस्या समाधान आदि कौशलों का विकास होता हुआ दिखाई दिया और इस पूरी प्रक्रिया के दौरान पानी के प्रति संवेदनशीलता तो विकसित हो ही रही थी। इस तरह यदि विषयों के आपसी सम्बन्धों को समझते हुए शिक्षण योजना बनाई जाए तो बच्चों में कई विषयों की क्षमताओं व कौशलों का विकास किया जा सकता है।

शिशिर चन्द्र नायक 13 वर्षों के अपने कार्य के दौरान सामाजिक सेवा से जुड़े हुए हैं। आपने वर्तमान कार्यक्षेत्र में आने से पहले गुजरात में 'जनविकास ट्रस्ट' के साथ मिलकर लोगों के सम्मान और अधिकारों के लिए काम किया है। शिशिर साल 2015 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्य कर रहे हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में ही रायगढ़ ज़िले के धरमजयगढ़ में ब्लॉक समन्वयक के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : sisir.nayak@azimpremjifoundation.org

... और बालेश्वरी आ गई

गट्टासिल्ली नगरी में आयोजित भाषा शिविर का एक अनुभव

श्रीदेवी

बच्चों के साथ अलग-अलग मंचों पर उनके लिए नए तरह के अनुभवों के साथ काम करना और उन्हें समझने की प्रक्रिया निरन्तरता में होती रही है। गर्मी की छुट्टियों में समुदाय के लोग और प्राथमिक शाला के शिक्षकों के साथ मिलकर पढ़ना-लिखना सीखने के लिए 15 दिवसीय भाषा शिविर का आयोजन किया गया। इसकी पूर्व तैयारी का एक स्तर अकादमिक था तो दूसरा समुदाय के साथ नियमित संवाद था। भाषा शिविर में छह साल से 15 साल के बालिका और बालक दोनों शामिल थे। इस शिविर में हम और बच्चे सुबह के तीन घण्टे ही काम करते थे। कई बच्चे मज़दूरी में अपने परिवार की मदद करते थे। हम जैसे ही गाँव पहुँचते कई बच्चे हमारा इन्तज़ार कर रहे दिखते, वहीं शुरू के दो-तीन दिन हमें बच्चों को बुलाने के लिए जाना पड़ा। हमारे द्वारा रोज़ बुलाने के कारण चौथे दिन से लगभग सारे बच्चे रोज़ आने लगे।

शिविर की योजना इस प्रकार थी

पहले घण्टे में सब बच्चों के साथ मिलकर कुछ कविताएँ बोलना, उनके नाम के साथ अलग-अलग तरह की गतिविधियाँ करना जैसे कार्य शामिल थे। दूसरे और तीसरे घण्टे में बच्चे जो काम पसन्द करते उसपर काम किया जाता, जैसे– रंग भरना, बातें करना, कहानी सुनना, थोड़ा-सा पढ़कर लिखना। कुछ बालिकाएँ जो किशोरवय थीं, वे लड़कों के साथ बैठना पसन्द नहीं करती थीं और अकसर मेरे आसपास ही रहतीं। इसे देखते हुए उन बालिकाओं की सुविधा के लिए एक अलग समूह बनाया गया। उस समूह के बच्चों के साथ मैं ही काम करती थी।

इन सब बच्चों में एक बालिका थी, जिसका नाम बालेश्वरी था। वह रोज़ शिविर स्थल के पास लगे महुए के पेड़ की ओट से सारी गतिविधियों को ध्यान से देखती थी। शिविर की उस दिन की कार्यवाही को समाप्त कर जब हम चले जाते, वह अपने साथियों से उन गतिविधियों के बारे में बात करती। ऐसा तीन चार दिन तक चलता रहा। एक दिन हम बैठकर महुए के पेड़ के बारे में बातचीत कर रहे थे। बच्चियाँ, महुए के फूल कब फूलते हैं, उसकी ख़ुशबू, फूल का एकत्रीकरण और इकट्ठे किए गए महुए को बाज़ार ले जाकर कोचिए को बेचना आदि पर विस्तार से बातचीत कर रही थीं। इस बातचीत को सुनकर बालेश्वरी भी हमारे समूह में आई और महुए के बारे में अपना अनुभव सुनाया कि एक बार वह महुए के पेड़ पर चढ़ने की कोशिश कर रही थी, दूर से उसने अपने बाबू यानी पिता को आते हुए देखा और वह पेड़ के ऊपर से कूद गई। उसके कूद जाने के कारण पेड़ से महुए के कुछ और फूल झड़ गए। शुरुआत में वह बहुत धीमी आवाज़ में बोला करती थी। मुझे दो तीन बार उसे अपनी बात को दोहराने के लिए कहना पड़ता था। बाक़ी समूह को उसकी बात मैं ही सुनाकर बताती थी। उस दिन के बाद से बालेश्वरी शिविर में रोज़ आने लगी। जो काम अच्छा लगता, उसे करती और अपनी हर बात कहती। हमने अन्तिम दिन शिविर पर बच्चों से कुछ बातचीत की कि इसमें उनको क्या अच्छा लगा, और क्या होता तो उन्हें अच्छा लगता?

इसपर बालेश्वरी ने कहा, 'तूमन चिढ़ात नई हो', अर्थात आप लोग चिढ़ाते नहीं हो। इसलिए मुझे यहाँ पढ़ना अच्छा लगता है। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात है कि बच्चे अपने सम्मान के प्रति बहुत सचेत होते हैं। विद्यालय की कक्षा हो या कोई अनौपचारिक शिक्षण स्थल, सीखने वाले का सम्मान पहली शर्त है।

शिविर के दौरान अपनी किताबों के बारे में बताते हुए वह कहती है, 'किताब में गाँव के बारे में कुछ नहीं लिखा होता। किताब जैसन कहानी होथे ऐसन हमर डोकरी दाई नई बताए।' अर्थात किताब में जिस तरह की कहानियाँ लिखी होती हैं ऐसी कहानियाँ हमारी दादी हमें नहीं बतातीं। उसकी इस बात में पाठ्यपुस्तकों में लोककथाओं के अभाव को बताने के साथ-साथ बच्चों के जीवन से किताबों का न जुड़ना भी दिख रहा था।

बालेश्वरी के बारे में

बालेश्वरी के माता-पिता भूमिहीन कृषि मज़दूर हैं। मज़दूरी से ही अपना और अपने बच्चों का जीवन यापन करते हैं। सांस्कृतिक रूप से वे गोंड आदिवासी हैं जो प्रकृति से प्राप्त भोजन के पदार्थों का सेवन करते हैं। मौसम के अनुसार उपलब्ध वनोपज को एकत्रित करना और उन्हें स्थानीय बाज़ार के कोचिए (बिचौलिए) को बेच देना, यही उनकी जीवन शैली है।

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

श्रीदेवी ने पण्डित रविशंकर शुक्ल महाविद्यालय से साहित्य और अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई की है। पिछले पन्द्रह वर्षों से प्राथमिक शिक्षा में भाषा शिक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। प्रमुख रूप से शिक्षक-शिक्षा, बाल साहित्य, और प्रारम्भिक साक्षरता में रुचि है।

सम्पर्क : sreedevi@azimpremjifoundation.org

परिचय से शुरू हुआ सीखने का सफ़र

कमला बाजपेई

यह आलेख एक प्राथमिक स्कूल में पहली कक्षा के बच्चों और उस कक्षा के शिक्षक के साथ भाषा शिक्षण पर किए गए काम के अनुभव पर आधारित है। इस आलेख में लेखक ने बच्चों के साथ की गई 'परिचय गतिविधि' से बच्चों के पढ़ने-लिखने के कौशल पर पड़े प्रभाव को दर्ज किया है। आलेख में इस गतिविधि के माध्यम से बच्चों में मिल-जुल कर और एक दूसरे के सहयोग से सीखने के तरीक़ों को आधार बनाया गया है। सं.

परिचय गतिविधि के बारे में हमारी सैद्धान्तिक समझ

कक्षा में बच्चे एक दूसरे से परिचित हों, मिल-जुल कर सीखें, सहज और खुला माहौल हो, कक्षा में आपसी परिचय की विभिन्न गतिविधियों के द्वारा बच्चों को ऐसे अवसर उपलब्ध कराए जाएँ जो बच्चों को कक्षा में सीखने का सहज माहौल एवं सीखने को सक्रिय और अर्थपूर्ण प्रक्रिया में तब्दील करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हों। ये प्रक्रियाएँ स्कूल के भीतर बच्चों को शुरुआत में महसूस होने वाले अजनबीपन को दूर करती हैं, परिचय के माध्यम से उन्हें स्कूल और वहाँ के वातावरण को आत्मसात करने में सहज करने, बच्चों को सहपाठियों और शिक्षकों से परिचित कराने के साथ ही उनके लिए आवश्यक विभिन्न भाषाई और संज्ञानात्मक क्षमताओं के विकास के मार्ग भी प्रशस्त करती हैं। इस गतिविधि में हम भाषा शिक्षण हेतु सहज और भयरहित माहौल के निर्माण और मौखिक भाषा से लिखित भाषा की ओर बढ़ने में आरम्भिक गतिविधियों और परिचय गतिविधि की भूमिका और इससे सम्बन्धित कक्षा प्रक्रियाओं को सहज करने का प्रयास करते हैं।

कक्षा में जो कुछ मैंने देखा

वैसे तो बच्चे अपने आसपास के बच्चों को उनके नाम से जानते हैं, लेकिन कुछ नए बच्चों से जब कक्षा में उनकी मुलाक़ात होती है तो वे उनके बारे में जानकारी जुटाने का प्रयास करते हैं। कई बार बच्चे अपने आसपास के बच्चों के साथ अच्छी दोस्ती रखते हैं लेकिन जिनके बारे में नहीं जानते उनसे दूरी बनाते हैं। यह आपसी दूरी उनके सीखने को प्रभावित करती है। ऐसा ही अनुभव रहा कक्षा में बच्चों के साथ पहले दिन की चर्चा में। बच्चे आपस में अपनी जान पहचान वाले बच्चों के साथ समूह बनाकर बैठे थे, जिन बच्चों को नहीं जानते थे उनसे दूरी बनाए हुए थे। कक्षा दो तीन हिस्सों में बँटी दिखाई दे रही थी। जिन बच्चों की पहचान किसी बच्चे के साथ नहीं हो पाई थी वह पीछे चुपचाप बैठे थे। शिक्षक बच्चों को बोर्ड पर काम देकर कक्षा से चले जाते थे और ऑफ़िस के कुछ दूसरे कामों की भूमिका में जुड़ जाते थे। शिक्षक का नाम बच्चे नहीं जानते थे, पर साहू मैडम के नाम से पूरा स्कूल मैडम को जानता था। बच्चे मैडम को देखते ही सहम जाते थे। कई बार तो कहानी की किताबें मैडम इसीलिए दे देती थीं जिससे वह कक्षा से

बाहर जाकर कुछ दूसरे कामों में जुड़ सकें। बच्चे आपस में एक दूसरे को भी अधिकतर ये रे, वो रे कहकर बुलाते थे। आपस में एक दूसरे के बैग को छुपाना, कापी को छुपाकर रख देना जैसी प्रक्रियाएँ पूरे समय चलती थीं, और मैडम दिनभर शिकायतों के निपटारे करतीं।

शिक्षक के साथ मिलकर परिचय गतिविधि के उद्देश्य और महत्त्व पर चर्चा

हमने अपने इस काम में मुख्य रूप से शिक्षक के साथ मिलकर परिचय गतिविधि के उद्देश्य और इससे बच्चे कैसे आपस में एक दूसरे के सहयोग से सीखते हुए आगे बढ़ेंगे, इसपर चर्चा की। इस गतिविधि की पहली शर्त हमने शिक्षक के साथ यह रखी कि वे पूरे समय कक्षा में बच्चों के साथ रहें। जब पहली शर्त को शिक्षकों ने स्वीकार किया तो आगे कैसे काम करेंगे इस योजना पर काम किया गया। योजना का पहला हिस्सा था, सभी बच्चों के नाम के चार्ट और पट्टियाँ बनाई जाएँ और कक्षा में डिस्प्ले किया जाए और दूसरा हिस्सा था हरेक बच्चे की रुचि की किसी एक वस्तु का उसके कार्ड में पीछे चित्र के साथ नाम लिखा जाए। तीसरा हिस्सा बच्चे के नाम के पहले अक्षर से बहुत सारे शब्दों का एक जाल बनाने का था। शिक्षक इस गतिविधि को कैसे करवाएँगे, साथ ही हर दिन शिक्षक की क्या भूमिका होगी और जिस दिन मैं नहीं जाऊँगी उस दिन शिक्षक की भूमिका क्या होगी, इसपर भी बात की गई। इस गतिविधि में न सिर्फ़ बच्चों के आपसी परिचय की बात होगी बल्कि शिक्षक की भागीदारी और उससे बच्चों का परिचय भी शामिल होगा।

गतिविधि : आपसी परिचय

सबसे पहली आवश्यकता थी कक्षा में बच्चों के बीच आपस में एक दूसरे के साथ घुलने-मिलने और अपने दोस्तों व साथियों को उनकी मौलिकता के साथ स्वीकार्यता और सहजता बनाने की, दूसरी बच्चों के बीच आपसी खुलेपन और सहज माहौल निर्माण की एवं तीसरी आवश्यकता शिक्षकों को बच्चों के साथ इस तरह के काम को करने के लिए तैयार करने की थी। इसके लिए हमें यह गतिविधि काफ़ी उपयुक्त लगी और इसे शिक्षकों के साथ बहुत अलग तरह से करने की योजना बनाई। जैसे– हमारी पहली योजना थी बच्चों के नाम के साथ किसी ऐसी वस्तु को जोड़ना जो उनके परिवेश में और आसपास अधिक समय उपलब्ध रहती हो, यानी जिसके साथ बच्चे अधिक समय गुज़ारते हों और अपने नाम को उस वस्तु के साथ जोड़ने में भी सहज महसूस करें। हमने शिक्षकों के साथ मिलकर बच्चों से चर्चा की कि उन्हें क्या पसन्द है क्या नहीं, और क्या सबसे अधिक पसन्द है। जैसे– दीपक ने बताया कि उसे लाल भाजी पसन्द है, लेकिन लड्डू सबसे ज़्यादा पसन्द हैं। किरण ने कहा कि उसे पूड़ी पसन्द है, लेकिन कुम्हड़ा सब्ज़ी सबसे अधिक पसन्द है। वहीं ज्योति ने बताया कि उसे टीवी देखना पसन्द है, लेकिन डांस करना सबसे अधिक पसन्द है। हमने बोर्ड पर एक कोने में बच्चों के नाम के साथ उनकी पसन्द और नापसन्द को लिखा, साथ ही उसे अलग से दो तीन चार्टों में लिखकर लगा दिया। हमने जो कार्ड बनाए थे वह भी काफ़ी कलरफ़ुल थे। किनारे पर रंगीन चमकीला टेप लगाकर कार्ड के पीछे हमने, जो बच्चों की सबसे पसन्द की चीज़ थी, उसे पूरे शब्द के रूप में लिखा और उस लिखे हुए के नीचे उसी वस्तु का चित्र भी बना दिया। हमने चार्ट पर भी बच्चों के नाम के साथ शब्द को लिखा, चित्र भी बनाया और फिर सभी कार्डों को एक डिब्बे में रख दिया।

अपने कार्ड से हुई दिन की शुरुआत

हरेक दिन सुबह कक्षा में आते ही बच्चे सबसे पहले अपने नाम का कार्ड उठाते और लिखा हुआ पढ़ते। शुरुआत के 15 दिन कई बच्चों ने ग़लत ही पढ़ा लेकिन हमने उन्हें पढ़ने दिया। बच्चे लिखे हुए को जैसे भी पढ़ते, सभी बच्चे उसे दोहराते थे। बच्चों के पढ़ने के बाद मैं, या जिस दिन मैं नहीं जाती, शिक्षक उसे ठीक करके पढ़ते। इससे बच्चे ख़ुद ही यह समझने लगे कि वह जो पढ़ते हैं उसमें कुछ ग़लत कर

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

रहे हैं और 15 दिन में बच्चों ने ख़ुद ही उसे सुधार लिया। अब मैं जो पढ़ती थी, बच्चे उसे ही पढ़ने लगे थे। इसके पहले बच्चे अपना नाम तक नहीं पढ़ पाते थे, लेकिन जो चित्र बना था उसके आधार पर अपना ही नहीं अपने साथी का नाम भी पहचान गए थे।

बदलने लगा मंजर

इस गतिविधि से बच्चे सुबह के दो घण्टे बहुत ख़ुश रहने लगे और कक्षा में उनकी पूरी भागीदारी रहने लगी। अभी इन दो घण्टों में कोई बच्चा इक्की नहीं जाता, साथियों को छेड़ना या एक दूसरे का झोला उठाकर फेंकने जैसी बातें भी नहीं होती हैं। तीसरे सप्ताह से हमने इस गतिविधि के माध्यम से ही बच्चों के पढ़ने के साथ-साथ लिखने के कौशल पर भी काम शुरू किया। इसमें हमने पहले कौशल, बच्चों के नाम में कितनी ध्वनियाँ हैं, पर काम शुरू किया। अब बच्चों के नाम पढ़ने में एक काम और शामिल हो गया। पहले मैं हरेक बच्चे का नाम ध्वनि के साथ बोलती और उसके बाद बच्चा अपने नाम को वैसे ही बोलता। ध्वनि के साथ-साथ नाम के पहले, बीच के और अन्त के अक्षरों पर काम करना शुरू किया। इसके साथ ही हरेक बच्चे के नाम के पहले अक्षर से क्या-क्या शब्द बन सकते हैं उसके शब्द जाल बनाने शुरू किए। एक बात जो इस काम के केन्द्र में थी वह थी, किसी भी काम को मौखिक करके नहीं छोड़ना यानी जो भी काम होता था उसे बोर्ड पर लिखना, फिर चार्ट बनाकर लगाना और चार्ट बनाने में बच्चों को शामिल करना। जैसे– देखो दीपक, लड्डू का चित्र तुम ही बनाओगे और कैसे लिखेंगे उसे अपने कार्ड से देखकर लिखोगे भी। बच्चों को मज़ा आने लगा इस काम में, और कब वह लड्डू को बिना देखे भी लिखने लगे। लड्डू में पहला अक्षर 'ल' है और 'ल' से और क्या-क्या शब्द बन सकते हैं, उन्हें कहीं भी लिखा हुआ देखकर पहचानने लगे। मुझे और शिक्षक को अहसास तो था कि बच्चे सीख रहे हैं, लेकिन वह इतनी जल्दी और इस रफ़्तार से आगे बढ़ेंगे इसका अन्दाज़ा नहीं था। अभी बच्चों के नाम के पीछे जो शब्द लिखा गया था उसे

मिलाकर पढ़ना शुरू कर चुके थे, जबकि हमने अभी इसे शिक्षण में उतनी गहराई से शामिल नहीं किया था। बस सुबह एक बार बच्चों के साथ मिलकर पढ़ते ज़रूर थे। अभी हम सिर्फ़ बच्चों के नाम के अक्षरों और ध्वनियों पर काम कर रहे थे। हर दिन सुबह की गतिविधि में हम सभी बच्चों के नाम और उनकी पसन्द पर लिखे गए शब्द को पढ़ते भी थे और चर्चा भी करते थे।

पसन्द भी बदलने लगी

अभी बहुत रोचक बात यह हो रही थी कि रोज़ बच्चों की पसन्द और बहुत अधिक पसन्द बदल रही थीं। अब बच्चे यह कहने लगे थे कि कार्ड के पीछे में जो उनकी पसन्द लिखी है उसे बदल दिया जाए क्योंकि अभी तो उनको कुछ और पसन्द है। शायद उनको लग रहा होगा कि हम इसे जितनी जल्दी पढ़ना सीख जाएँगे उतनी ही जल्दी ये बदला जा सकेगा। एक सुबह तो बच्चों ने अपने मन की बात ज़ाहिर कर ही दी। मेरा जैसे ही कक्षा में जाना हुआ सबसे पहली फ़रमाइश ज़ोर शोर से सामने आई कि मैडमजी, अभी हमारी पसन्द बदल गई है तो आप हमारे नाम के साथ में जो लिखा है उसे बदल दीजिए, अब तो हमें पढ़ना भी आ गया है। एक-एक कर सभी बच्चे पढ़कर सुनाने लगे। जब बच्चे पढ़ रहे थे, हमें और शिक्षक को समझ में आ रहा था कि कौन-सा बच्चा अन्दाज़े से पढ़ रहा है और कौन पूरे शब्द को सही पढ़ पा रहा है, क्योंकि जब बच्चे पढ़ रहे थे तो बोल कुछ अलग रहे थे और उँगली कहीं और थी। हमने कहा, ठीक है इस सप्ताह और इसी को लिखा रहने देंगे उसके बाद दूसरा कार्ड बनाएँगे।

पढ़ना-लिखना हुआ मज़ेदार

बच्चों की सहमति और साझेदारी से हमने समूह बनाए और कहा कि हमें सिर्फ़ अपना कार्ड नहीं पढ़ना, दूसरे साथी का भी कार्ड पढ़ना है और देख-देख कर लिखना भी है। इस काम को अगले 8 से 10 दिन करेंगे फिर नए कार्ड बनाएँगे। बच्चे सहमत हो गए। इस चर्चा के बाद एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना हुई। बच्चे अभी लंच करने देर से आए और लंच करके एक मिनट भी नहीं रुके और अपने-अपने समूह में जाकर पढ़ना शुरू कर दिया। पूरे 8 दिन तक बच्चे खेल के मैदान में भी अपने कार्ड साथ रखते और एक दूसरे को लिखे हुए शब्द के साथ बुलाते। अब सभी बच्चे उसे न सिर्फ़ अच्छे-से पढ़ने लगे बल्कि हरेक अक्षर को ध्वनि के रूप में पहचानने लगे थे। जैसे— दीपक को लड्डू पसन्द है। दी, प, क तीन ध्वनि हैं और 'द' व 'दी' के अन्तर बताने लगे थे।

अब आई किताब की बारी

इस परिचय गतिविधि के साथ काम करते हुए लगभग तीन महीने होने वाले थे। अभी तक हमने बच्चों से यह नहीं कहा था कि किताब निकालो और इस पाठ को पढ़ो। बच्चों के लंच के बाद एक पीरियड था जिसे हमने 'आओ किताब खोलें, चित्र देखें, चित्र पढ़ें' नाम से तय किया था। इस पीरियड में हम क्लास में होते तो थे लेकिन साइलेंट अवलोकनकर्ता की भूमिका में। हमने देखा कि जब हम परिचय गतिविधि में बच्चों से कक्षा में बात करते थे, बच्चे किताब के उदाहरण ख़ुद ही लाने लगे थे। जैसे— किचन के जो सामान हैं, उसमें बच्चे बताते थे कि गणित की किताब में भी ये पाठ है। किसी बच्चे के नाम के पीछे आम का चित्र बना है तो बच्चे बताते कि 'आम की टोकरी' एक कविता है। कई बच्चे पूरी कविता सुनाते थे, या जब चित्र बनवाते थे जो उनके कार्ड के पीछे बना है, कई बच्चे कहते कि किताब में बना है, उसमें से देखकर बना लें क्या।

हमने कहा, बिलकुल किताब खोल लो और देखकर भी बना सकते हो और बिना देखे भी, आपको जैसा अच्छा लगे। इस पूरे काम में हमने बहुत व्यवस्थित ढंग से और प्लानिंग के साथ स्कूल की लाइब्रेरी और झोला लाइब्रेरी की किताबों को भी उपयोग में लिया। जैसे— बड़े-बड़े चित्र वाली किताबों में अपने नाम का पहला अक्षर व दूसरा अक्षर खोजो और आपके कार्ड में लिखे अक्षर एवं इस खोजे हुए अक्षर में क्या अन्तर है, इसकी पहचान करो।

किताब से दोस्ती

‘हमसे दोस्ती करो’ परिचय गतिविधि की मुख्य गतिविधि थी। इस गतिविधि में बच्चे को किसी एक किताब को अपना दोस्त बनाना था, उसे घर ले जाना था और अपने बड़े भाई-बहन, माँ-पापा के साथ बैठकर पढ़ना था। अगले दिन स्कूल आकर क्या सुना, क्या पढ़ा, उसे बताना था। बच्चे किताबों को देखें, उलटें-पलटें, किताबों से जुड़ें, इसके लिए एक पीरियड तय किया गया था। इस पीरियड में बच्चे लाइब्रेरी में उपलब्ध किताबों को अपनी रुचि के अनुसार उठाते, समूह में पढ़ते और आपस में चर्चा करते। कक्षा में इस समय शिक्षक का होना आवश्यक था, जबकि पहले यह शिक्षकों की प्रेक्टिस में था कि जिस समय बच्चे लाइब्रेरी में होते शिक्षक ऑफ़िस में बैठकर कुछ दूसरे काम कर रहे होते थे, लेकिन अब शिक्षकों की इस प्रेक्टिस में बदलाव हुआ। कक्षा एक के स्तर की किताबों को अलग करके बच्चों की कक्षा में एक कोना बनाया गया, जिसमें लाइब्रेरी की कहानियों के अतिरिक्त *दैनिक भास्कर न्यूज़पेपर* ‘बाल भास्कर’ को भी रखा गया। बाल भास्कर को एक बार तो हमने रखा लेकिन अगली बार से इसे अपने घर से लाने की ज़िम्मेदारी प्रीति नाम की एक बालिका ने ली।

प्रीति न सिर्फ़ बाल भास्कर लाती बल्कि उसमें जो पहेलियाँ होतीं उन्हें कक्षा में सभी बच्चों को सुनाती। वह ख़ुद भी पहेलियों को पढ़ना नहीं सीखी थी लेकिन घर से याद करके आती थी और ‘आज की बातचीत’ में सबसे पहले खड़ी हो जाती पहेली बुझाने के लिए। सभी बच्चे प्रीति का कक्षा में इन्तज़ार करने लगे और ये पहेलियाँ भी बच्चों को आपस में चर्चा करने और मिलकर सीखने का माध्यम बन गईं।

इस काम में हमने जो देखा और पाया

1. बच्चे ख़ुद से पढ़ने-लिखने की तरफ़ आगे बढ़े।
2. लगभग सभी बच्चे एक साथ मिलकर सीखने की कोशिश में शामिल थे।
3. कक्षा में 23 बच्चे थे और सभी पढ़ना-लिखना सीखने में आगे बढ़ रहे थे। यह बात अलग थी कि कुछ बहुत बेहतर मतलब एकदम सही लिखते थे और कुछेक में एक दो अक्षर की ग़लती रहती थी। जैसे– 80 प्रतिशत तुकबन्दी वाले शब्द लिखते थे : आम, जाम, दाम, दीपक, दीमक, कटोरी,

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

तिजोरी, निमोरी, आदि। 80 प्रतिशत बच्चे दीमक को सही लिखते थे लेकिन 20 प्रतिशत बच्चे दीमक को 'दिंमक' लिखते थे। इन बच्चों के साथ आगे 'दी' और 'दि' के अन्तर पर ध्वनि के माध्यम से काम किए जाने की योजना है।

हम जिस निष्कर्ष तक पहुँच पाए

1. कक्षा में बच्चों का मन लगा, और बच्चे अपनी किताबों और कक्षा में लगे मटेरियल के साथ जुड़ने लगे, जैसे– लंच के बाद या ख़ाली समय में भी बच्चे ख़ुद से उन चार्टों को पढ़ते हुए दिखाई देते थे।

2. बच्चे सीखने-सिखाने की इस प्रक्रिया में शिक्षक के साथ मिलकर रास्ते बना सकते हैं। इस मान्यता में शिक्षकों का विश्वास बनना शुरू हुआ और कुछ का विश्वास पहले से ज़्यादा मज़बूत हुआ।

3. शिक्षक और बच्चों के बीच रिश्ते सहजता की तरफ़ बढ़े। अभी शिक्षक बच्चों और उनकी बातों को कक्षा में स्पेस देने का महत्त्व समझने लगे और 'आज की बातचीत' जैसी गतिविधि को उन्होंने अपनाया और उसपर काम करना शुरू किया है।

4. शुरुआती दिनों में परिचय गतिविधि किताब या पाठ्यपुस्तक में भी है लेकिन उसपर कैसे काम किया जा सकता है इसकी एक हद तक की समझ शिक्षकों में बनी है।

5. हमारे (अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के) साथ उस स्कूल के सभी शिक्षकों का रिश्ता पहले से बेहतर हुआ है और वॉलंटरी टीचर फ़ोरम (वीटीएफ़) जैसी गतिविधियों में उस स्कूल के शिक्षकों की भी भागीदारी होने लगी है।

6. परिचय गतिविधि को कक्षा 3 की शिक्षिका ने भी अपनाया क्योंकि उनके सामने चुनौती थी कि कक्षा के 70 प्रतिशत बच्चे कुछ बोलते ही नहीं थे फिर इनके साथ काम कैसे किया जाए। उनका कहना था कि इस गतिविधि के माध्यम से अभी 80 प्रतिशत बच्चों का रिश्ता हमारे साथ बेहतर हुआ है और अब ज़्यादातर बच्चे अपनी बात को बिना संकोच कक्षा में साझा करने का प्रयास करने लगे हैं।

7. शिक्षिका ने इस अनुभव को संकुल स्तरीय स्कूलों के अन्य शिक्षकों के साथ साझा किया जिससे एक दूसरे स्कूल में भी यह गतिविधि शुरू होने की जानकारी मिली।

परिचय गतिविधि पर काम करते हुए यह महसूस किया कि इससे बच्चों के साथ घुलने-मिलने और मिलकर सीखने का रिश्ता क़ायम होता है। शिक्षकों में यह समझ व स्वीकार्यता बनती है कि कक्षा की शुरुआत हल्के-फुल्के माहौल में कैसे की जाए, जिससे बच्चों को पूरे दिन सीखने का सहज माहौल मिलता रहे। इससे बच्चों में पियर ग्रुप लर्निंग यानी मिलकर सीखने का सहज वातावरण तैयार होता है। यदि कक्षा में परिचय गतिविधि के बारे शिक्षकों के साथ व्यवस्थित योजना बनाई जाए तो हम बच्चों में पढ़ने-लिखने के कौशलों को सुगमता से पुष्ट कर सकते हैं।

कमला बाजपेई का शिक्षा में 20 वर्षों से ज़्यादा का अनुभव रहा है। वे शाला और समुदाय के बेहतर रिश्तों और जेंडर के मुद्दे पर 'लोकमित्र' रायबरेली, उत्तर प्रदेश के साथ लम्बे समय तक जुड़ी रही हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन रायपुर, छत्तीसगढ़ में कार्य कर रही हैं। यहाँ प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों के साथ जुड़ाव बनाते हुए बच्चों में प्रारम्भिक गणित व पढ़ने-लिखने के कौशलों को विकसित करने में भूमिका निभाती हैं।

सम्पर्क : kamla.bajpai@azimpremjifoundation.org

शिक्षण अधिगम सामग्री की समझ एवं उपयोग

बलवन्त सिंह कालाकोटी

पिछले 15 वर्षों की शिक्षण यात्रा में समय के साथ-साथ शिक्षण अधिगम सामग्री (टीएलएम) की समझ व उसके उपयोग का अनुभव भी बदलता गया। प्रारम्भ के वर्षों में टीएलएम की प्रतियोगिताओं का आयोजन भी होता रहता था। ज़िला स्तर तक की प्रतियोगिताओं में मेरे द्वारा बनाए गए टीएलएम भी ख़ूब सराहे जाते थे। लेकिन तब व आज टीएलएम के प्रति मेरी समझ में जो बदलाव आया है, वह समय-समय पर प्राप्त किए गए प्रशिक्षणों और बच्चों के साथ किए गए शिक्षण से प्राप्त अनुभवों का परिणाम है। मेरे द्वारा पढ़ाने में अपनाए गए तरीक़े का परिणाम बच्चों द्वारा दिए जाने वाले उत्तरों में मिल जाता था।

उदाहरणस्वरूप, क्षेत्रफल को समझाने के लिए मैं चाक, रूमाल, गत्ता, चार्ट आदि लेकर बच्चों से गत्ते को विभिन्न आकृतियों (त्रिभुज, आयत, पंचभुज, षट्भुज आदि) में काटकर चार्ट पर रखकर पेंसिल से घेरा बनवाता था, और तब उन्हें बताता था कि इन विभिन्न आकृतियों द्वारा घेरी गई जगह के बराबर इनका क्षेत्रफल होता है। इसके अलावा, मेज़ पर रूमाल बिछाकर उसके द्वारा घेरी गई जगह को रूमाल का क्षेत्रफल कहते हैं और दरी द्वारा कमरे में घेरी गई जगह को दरी का क्षेत्रफल कहते हैं, आदि बताता था। कक्षा शिक्षण के पश्चात मैं इस बात पर सन्तुष्ट होता था कि मैंने न केवल टीएलएम का प्रयोग किया, बल्कि बच्चों को भी इस प्रक्रिया में सम्मिलित किया। यह सब समझाने के बाद में आकलन के लिए प्रश्न देता था। आगे मेरे द्वारा दिए गए इन प्रश्नों के दो उदाहरण हैं, साथ ही बच्चों द्वारा दिए गए उनके उत्तर हैं।

प्रश्न 1. एक खेत की लम्बाई 22 मीटर और चौड़ाई 8 मीटर है, खेत का क्षेत्रफल बताइए।

बच्चों द्वारा इस प्रश्न को अलग-अलग तरीक़ों से हल करने का प्रयास किया गया–

खेत का क्षेत्रफल = लम्बाई × चौड़ाई

= 22 × 8 = 176 वर्ग मीटर

कुछ बच्चों ने उत्तर में 176 वर्ग मीटर लिखा तो कुछ के द्वारा 176 मीटर, कुछ ने 176 या 1616 तो कुछ बच्चों ने खेत का परिमाप निकालकर 60 मीटर लिखा था। दो बच्चों ने केवल प्रश्न को ही उतार दिया था।

प्रश्न 2. एक कमरे के फ़र्श में एक-एक वर्ग फुट के 120 टाइल्स लगाने पर पूरा फ़र्श ढँक जाता है। कमरे के फ़र्श का क्षेत्रफल कितना होगा?

चित्र : प्रशान्त सोनी

इस प्रश्न को अधिकांश बच्चों ने हल नहीं किया। जिन बच्चों ने पहले प्रश्न में सही उत्तर लिखा था उनमें से कुछ ने इस प्रश्न का उत्तर 120 टाइल्स लिखा और एक बच्चा ऐसा था जिसने गुणा करने में ग़लती की थी।

इन प्रश्नों के उत्तर देखने के बाद मैं जान पा रहा था कि अभी ये बच्चे क्षेत्रफल की अवधारणा को नहीं समझ पाए। जो प्रश्न मुझे आसान लगता था वह वास्तव में उतना आसान नहीं था। क्षेत्रफल निकालना हो तो लम्बाई व चौड़ाई को आपस में गुणा कर देते हैं और उत्तर में वर्ग लिखना नहीं भूलना चाहिए। लेकिन अब समझ में आ रहा था कि कहीं-न-कहीं कुछ तो छूट गया है जिस कारण बच्चे ग़लती कर रहे हैं। बच्चों से पृथक-पृथक चर्चा करने पर पता चला कि ग़लतियों के कारण भी अलग-अलग थे। मेरे शिक्षण को जो बच्चे जितना समझे या जिस रूप में समझे, उन्होंने उसी तरह से प्रश्नों को हल किया। पहले प्रकार के बच्चे वे थे जो पहले प्रश्न का उत्तर सही लिखने के बाद भी क्षेत्रफल को नहीं समझ पाए थे, उन्हें मात्र इतना पता था कि यदि प्रश्न में क्षेत्रफल निकालना है तो गुणा कर दो। इसमें गुणा ही क्यों करते हैं इसका उनके पास कोई जवाब नहीं था। दूसरे प्रकार के बच्चे वे थे जिन्होंने गुणा करने में ही ग़लती कर दी थी। उन्होंने 22 को 8 से गुणा करने पर हासिल का ध्यान नहीं दिया था। तीसरे प्रकार के बच्चे वे थे जिन्होंने फ़र्श का परिमाप निकाला था।

बच्चों से बातचीत के बाद स्थितियाँ स्पष्ट होती जा रही थीं। ऐसे अनुभवों के बाद मुझे नए सिरे से शिक्षण योजना बनाने की आवश्यकता महसूस होने लगी। इसके लिए टीएलएम में भी कुछ जोड़ने की आवश्यकता थी। अत: शिक्षण योजना को चरणबद्ध किया गया।

पहला चरण

किसी निर्धारित क्षेत्र को प्रदर्शित करना : जैसे– चार्ट का क्षेत्रफल, फ़र्श का क्षेत्रफल, दी गई विभिन्न आकृतियों के क्षेत्रफल को अमानक तरीक़े से रूमाल, गत्ते के छोटे-छोटे वर्गाकार टुकड़ों, डाक टिकट आदि की सहायता से ढँकना एवं प्रयोग किए गए टुकड़ों को गिनकर ज्ञात करना। पंक्तिवार टुकड़ों को गिनकर गुणा की ओर बढ़ना।

इस गतिविधि में बच्चे उत्साह से भाग ले रहे थे। इस तरह की गतिविधि बच्चे पहले भी कर चुके थे लेकिन तब केवल किसी वस्तु विशेष से ढँके जाने वाले क्षेत्र को ही प्रमुखता दी जाती थी, अर्थात रूमाल द्वारा घेरी गई जगह रूमाल का क्षेत्रफल है। जबकि जिस मेज़ पर रूमाल बिछाया गया था उस मेज़ के क्षेत्रफल को ध्यान में नहीं रखा गया। इस बार बच्चों से रूमाल के माध्यम से मेज़ का क्षेत्रफल ज्ञात करने को कहा गया तो निकिता ने कहा इसके लिए तो मेज़ को रूमाल के ऊपर उल्टा करना पड़ेगा। निकिता की इस बात से मुझे लगा कि आज तक मैंने इस तरह की गतिविधि करने का अवसर बच्चों को दिया ही नहीं, इस कारण बच्चे दिए गए क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने में सही उत्तर तक नहीं पहुँच पा रहे थे। अब बच्चों को मेज़ की लम्बाई व चौड़ाई के हिसाब से पुराने कपड़े से छः बराबर टुकड़े काटकर दिए गए, जिनसे मेज़ को ढँकने के लिए कहा गया। बच्चों ने तीन टुकड़े एक लाइन में और तीन टुकड़े दूसरी लाइन में बिछाकर मेज़ की ऊपरी सतह को अच्छी तरह ढँक दिया। अब बच्चों से पूछा गया कि मेज़ का क्षेत्रफल कितना है तो निकिता ने तुरन्त उत्तर दिया, छः रूमाल के बराबर। मैंने अन्य बच्चों को भी स्पष्ट कराया कि मेज़ की सतह को जितने रूमालों द्वारा पूरा-पूरा ढँका गया, उसका क्षेत्रफल उतने रूमालों के बराबर है। इसके बाद सभी बच्चों को चार्ट के बराबर टुकड़े काटकर अलग-अलग वस्तुओं, जैसे– कुर्सी, बोर्ड, चटाई आदि का क्षेत्रफल ज्ञात करने को कहा गया। बच्चों ने बड़े उत्साह से कार्य कर सही क्षेत्रफल ज्ञात किया। इसके बाद बच्चों को गत्ते के छोटे-छोटे वर्गाकार टुकड़े काटकर दिए और चार्ट में आयत व वर्गों का क्षेत्रफल ज्ञात करने को कहा गया।

दूसरा चरण

कम या अधिक क्षेत्रफल का पता लगाना : दी गई आकृतियों में किस आकृति का क्षेत्रफल अधिक है और किसका कम, इसे ज्ञात करने के लिए गत्ते पर बनी आकृतियों को ग्राफ़ पेपर पर दर्शाकर खानों को गिनना।

समान क्षेत्रफल की त्रिभुज, आयत, वर्ग व बहुभुज जैसी विभिन्न आकृतियाँ बच्चों के समक्ष

अनुमान लगाने के लिए रखे जाने पर बच्चे प्रायः आयत व त्रिभुज का क्षेत्रफल अधिक बताते हैं। दी गई आकृतियों में बड़ी व छोटी आकृति का पता करने के लिए बच्चों के साथ कुछ गतिविधियाँ की गईं। पहली गतिविधि में आयत व वर्ग की दो आकृतियाँ दिखाकर बच्चों से पूछा गया कि किस आकृति का क्षेत्रफल अधिक है। बच्चों ने आयत का क्षेत्रफल अधिक बताया। सही-सही अनुमान लगाने के लिए दोनों आकृतियों को काटकर अलग-अलग रंगों से रंग दिया। इसी तरह बच्चों को भी अपने-अपने लिए आकृति काटकर रंगने के लिए कहा गया। जो बच्चे काटने में परेशानी महसूस कर रहे थे उन्हें सहयोग किया गया। फिर इन टुकड़ों को एक के ऊपर दूसरे को रखने के लिए कहा गया और जो टुकड़ा बच गया उसे काटकर दूसरी आकृति के बचे हुए भाग पर रखने के लिए कहा गया। अन्त में जिस रंग के टुकड़े बच गए, उस आकृति का क्षेत्रफल अधिक बताया गया। दूसरी गतिविधि में इसे और सटीकता से ज्ञात करने के लिए ग्राफ़ पेपर पर विभिन्न आकृतियाँ बनाकर उनके अन्दर समाहित वर्गों एवं अन्य भागों की तुलना कर क्षेत्रफल ज्ञात करना बताया गया। इन गतिविधियों को करने के बाद बच्चे यह मानने के लिए तैयार हो गए कि दी गई आकृतियों में वर्ग या बहुभुज का क्षेत्रफल भी त्रिभुज व आयत से अधिक हो सकता है।

दरअसल रोज़मर्रा के जीवन में हमें किसी भी चीज़ को लम्बाई के सन्दर्भ में देखने का एक सामान्य अभ्यास होता है, जैसे– लम्बी सड़क, लम्बी बस, लम्बी रस्सी, लम्बा हॉल आदि। लेकिन क्षेत्रफल के लिए अलग दृष्टि, गणना और मापन की ज़रूरत होती है, यह बाद में समझ आता है। इसलिए सामान्यतः बच्चे आयत को लम्बाई में देखकर उसका क्षेत्रफल अधिक मान बैठते हैं। लेकिन क्षेत्रफल की गणना में लम्बाई और चौड़ाई दोनों का प्रतिफल होता है। यह बात गतिविधि से समझ में आती है और जब बच्चों के सामने यह उद्‌घाटित होता है, तब ही बच्चे इसे मानते हैं।

तीसरा चरण

मानकीकरण की आवश्यकता क्यों? किचन गार्डन में अलग-अलग समूहों द्वारा तैयार क्यारियों में किस समूह की क्यारी बड़ी है, ज्ञात करने के लिए क़दमों, हाथ, लकड़ी आदि द्वारा क्यारियों को नापना। छोटे या बड़े क़दमों, हाथों या लकड़ी के चलते क्यारियों की माप में अन्तर आने पर इसके समाधान पर चर्चा करना।

कक्षा-कक्ष में उपलब्ध सामग्री, जैसे– फ़र्श, बोर्ड, मेज़, कुर्सी, चार्ट पेपर और नोटबुक में बनी आकृतियों पर तो चर्चा हो गई, अब बाहर मैदान व बच्चों द्वारा स्वयं बनाई गई क्यारियों में इस प्रयोग को करना था। इसके लिए बच्चों को समूहवार अपनी-अपनी क्यारियों का क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिए कहा गया। इसपर क्यारियों में रुचि रखने व सक्रिय रूप से कार्य करने वाले मयंक ने कहा कि इसके लिए चार्ट या कपड़े के टुकड़े तो दीजिए, इसके बिना हम क्यारी का क्षेत्रफल कैसे पता करेंगे। इसपर मैंने बच्चों से कहा कि ये क्यारियाँ तो बहुत बड़ी हैं और हमारे पास इतना अधिक कपड़ा व चार्ट नहीं हैं, क्या आप किसी और तरीक़े से इसका क्षेत्रफल ज्ञात कर सकते हैं। साहिल ने कहा, तब हम क्षेत्रफल तो पता नहीं कर पाएँगे लेकिन क़दमों से नापकर किसकी क्यारी बड़ी है, इसका अनुमान लगा सकते हैं। रोहित ने कहा, साहिल लम्बा है इसके क़दम लम्बे हैं और मैं छोटा हूँ तो मेरे क़दम भी छोटे हैं, ऐसे तो गड़बड़ हो जाएगी। मैंने बच्चों से कहा, चलो पहले आपकी क्यारियों को फ़ीते से नापते हैं फिर कक्षा में जाकर इस विषय में सोचते हैं कि क्यारियों का क्षेत्रफल कैसे ज्ञात करना है। बच्चों ने अपनी-अपनी क्यारियों की लम्बाई व चौड़ाई नोटबुक में नोट कर ली।
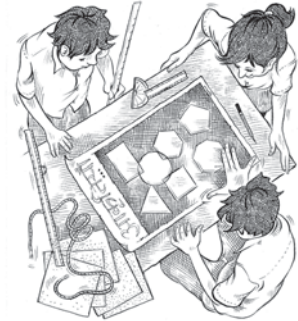
चित्र : प्रशान्त सोनी

चौथा चरण

क्षेत्रफल का मानकीकरण

मोटे काग़ज़ में 1 वर्ग सेमी के वर्गाकार टुकड़े, गत्ते में 1 वर्ग फुट के टुकड़े और कपड़े में 1 वर्ग मीटर के टुकड़े काटकर उनसे दिए गए क्षेत्रफल को ढँकना। काग़ज़ में एक-एक सेमी के खाने बनाना, विभिन्न आकृतियों को एक-एक सेमी के खानों में विभाजित करना। पंक्तिवार टुकड़ों व खानों को गिनकर सूत्र की ओर बढ़ना।

अब बच्चों में एक जिज्ञासा थी कि आख़िर क्यारी या बड़े खेत या मैदान का क्षेत्रफल कैसे ज्ञात किया जाए। हमें प्रशिक्षण में बताया गया था कि शिक्षक की सबसे बड़ी चुनौती बच्चों में पाठ्य सामग्री के प्रति जिज्ञासा पैदा करना होती है, जिससे बच्चों के मन में क्यों, क्या व कैसे प्रश्न उभरने लगें। इस तरह की जिज्ञासा से प्राप्त अधिगम ही स्थाई होता है। ज़बरदस्ती थोपा गया शिक्षण न तो स्थाई होता है और न ही उससे बच्चों में अवधारणात्मक विकास हो पाता है। इस कारण बच्चे उसे जल्दी भूल जाते हैं।

बच्चों की जिज्ञासा के क्रम में ही मैंने कक्षा शिक्षण को आगे बढ़ाया। बच्चों से एक-एक वर्ग सेमी, वर्ग फुट व वर्ग मीटर के टुकड़े काटने को कहा। इनसे क्रमशः चार्ट, चटाई व कमरे के फ़र्श को नापने के लिए कहा। वर्ग फुट के टुकड़े से बोर्ड पर चाक की सहायता से वर्ग फुट के खाने बनाए। इसी तरह नोटबुक में वर्ग सेमी के टुकड़े व पेंसिल की सहायता से वर्ग सेमी के खाने बनाकर क्षेत्रफल को स्पष्ट किया। साथ ही एक पंक्ति में खानों की संख्या व कुल पंक्तियों की संख्या की सहायता से सूत्र भी बना लिया। सूत्र बनाने में अधिक समय नहीं लगा क्योंकि पूर्व में ही गुणा की संक्रिया को समझते हुए बच्चे इस गतिविधि को कर चुके थे। अब भी बच्चों का एक अनसुलझा प्रश्न रह गया था कि क्यारियों का क्षेत्रफल कैसे ज्ञात किया जाए। इसके लिए आगे बढ़ते हुए बोर्ड में बने वर्गाकार खानों व कापी में बने खानों में से अन्दर के हिस्से से खानों को मिटाकर स्केल से लम्बाई व चौड़ाई नापकर क्षेत्रफल ज्ञात करने का अभ्यास कराया गया। इसके बाद सभी बच्चे लम्बाई व चौड़ाई नापकर क्यारियों व खेल के मैदान का क्षेत्रफल ज्ञात करने में सक्षम हुए।

इस तरह टीएलएम की सहायता से चरणबद्ध तरीक़े से शिक्षण करने पर बच्चों ने बेहतर तरीक़े से सीखा। क्षेत्रफल के प्रति उनकी अवधारणा स्पष्ट हुई। अब दिए गए उक्त प्रश्नों के अतिरिक्त अन्य तरीक़ों से दिए गए प्रश्नों को भी बच्चे हल कर लेते हैं। इससे मुझे भी कुछ बातें स्पष्ट हुईं। जैसे–

1. टीएलएम का प्रयोग हम शिक्षण के प्रति बनी हमारी समझ के अनुसार करते हैं। हमारी समझ जितनी बेहतर होगी उसका प्रतिफल भी उतना ही बेहतर प्राप्त होगा।

2. यह ज़रूरी नहीं है कि एक शिक्षक द्वारा तैयार टीएलएम दूसरे शिक्षक के कक्षा शिक्षण में भी उतना ही लाभकारी हो।

3. सभी बच्चों के लिए एक अवधारणा को समझने में एक ही प्रकार का टीएलएम समान रूप से उपयोगी नहीं हो सकता।

4. टीएलएम निर्माण में बच्चों की जितनी अधिक भागीदारी होगी, बच्चे उतनी ही अच्छी तरह पाठ को समझ पाएँगे।

5. टीएलएम निर्माण से पूर्व बच्चों के साथ पर्याप्त बातचीत करना आवश्यक होता है जिससे उनके पूर्व ज्ञान का पता चल सके एवं समस्या का निदान हो सके और उसके अनुसार हम निर्धारित कर सकें कि हमें किस प्रकार के टीएलएम की आवश्यकता होगी।

बलवन्त सिंह कालाकोटी राजकीय आदर्श प्राथमिक विद्यालय में विगत दस वर्षों से प्रधानाध्यापक हैं। आपको प्राथमिक शिक्षा में अध्यापन कार्य करने का 15 वर्षों का अनुभव है। आपको बच्चों के साथ खेलने और नई जानकारियाँ प्राप्त करने में रुचि है।

सम्पर्क : kalakoti.balw@gmail.com

पढ़ो रखो श्रृंखला

एक ख़ास पुस्तक संग्रह

नीतू यादव

बढ़ते बच्चों को सक्रिय पाठक बनाने के लिए जितने भी उपक्रम किए जाते हैं उनमें एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम है– सन्दर्भयुक्त साहित्य विकसित करना। साहित्य में वंचित समुदाय की जीवन परिस्थितियों, लड़कियों का प्रतिनिधित्व, रोज़मर्रा के जीवन अनुभव और सहज घटनाक्रम का अभाव एक बड़े तबक़े को साहित्य या पाठ्येतर सामग्री से जोड़ने के उलट उससे दूर ही करता रहा है।

भोपाल में शहरी ग़रीबों की शिक्षा के लिए काम करने वाली संस्था 'मुस्कान' ने सन्दर्भयुक्त साहित्य और पठन सामग्री विकसित करने की दिशा में एक ठोस क़दम उठाया है। 2014 से 2019 के बीच 'पढ़ो रखो' नाम से विकसित की गई छोटी किताबों की यह श्रृंखला शासकीय स्कूलों में आ रहे बच्चों और शिक्षकों के लिए बहुत ही उपयोगी साबित होने वाली है। नीतू यादव ने अपने आलेख में इसी श्रृंखला की किताबों का परिचय दिया है। सं.

पढ़ो रखो श्रृंखला (मुस्कान प्रकाशन) जब हम इस नाम को पढ़ते हैं तो मन में कुछ सवाल उमड़ने घुमड़ने लगते हैं। कभी ख़याल आता है कि कहीं ग़लती से 'पढ़ो लिखो' की जगह 'पढ़ो रखो' तो नहीं हो गया? 'पढ़ो रखो' से क्या मतलब रहा होगा? पढ़कर रखना क्यों है? जब इन किताबों को पढ़ा और बच्चों के साथ इन किताबों को इस्तेमाल किया तो समझ आया कि बहुत सोच-समझ कर इस श्रृंखला का नाम 'पढ़ो रखो श्रृंखला' रखा गया है। मतलब ऐसी किताबें जो पढ़ने के बाद मन में रह जाएँ और बच्चे को लगे कि यह तो हमारी ही बात है। सिर्फ़ विषय वस्तु नहीं, इन किताबों का स्वरूप, बनावट और क़ीमत, सब मिलकर इन्हें ख़ास बनाते हैं। छोटे बच्चों के लिए प्रकाशित होने वाली सबसे कम पन्नों, वज़न और क़ीमत की सचित्र किताबें, वो भी एकल कहानी वाली, शायद ही प्रकाशित हुई हों। एक किताब मात्र 12 रुपए और 24 किताबों का सेट 300 रुपए में लिया जा सकता है। कम मूल्य होने से हर तबक़े तक इनकी पहुँच मुमकिन है। इन किताबों को प्रिंट करने के पीछे एक उद्देश्य यह भी है कि बच्चों के दैनिक और परिवेशीय अनुभवों का उपयोग भाषा शिक्षण में किया जा सके। इसके लिए हर किताब के अन्तिम पृष्ठ पर गतिविधि का एक पन्ना है। इन गतिविधियों के माध्यम से बच्चों को इन कहानियों में ख़ुद को शामिल करने, पठन अभ्यास और अभिव्यक्ति के अवसर दिए गए हैं। यह अभ्यास बच्चों के लिए जितने फ़ायदेमन्द हैं, उतने ही शिक्षकों के लिए भी। यह अभ्यास कहानी सुनाने के बाद बच्चों को कहानी में और गहरे तक उतारने में मदद करते हैं और एक अच्छी चर्चा का माध्यम बनते हैं। इन किताबों से जुड़े मेरे अलग-अलग अनुभव रहे हैं।

मेरे पढ़ने के व्यक्तिगत अनुभव

मैंने इस श्रृंखला की सभी किताबें पढ़ीं। कुछ किताबें जैसे– *गन्ने का बँटवारा, बैल की सवारी, सूअर का दोस्त, मधुमक्खी, तालाब के किनारे,* मुझे बहुत अच्छी लगीं। पढ़ने में एक

ख़ास तरह की ख़ुशी महसूस हुई। वहीं *सोहेल की पीली चड्डी, थाना, नाला, पानी बेचती है, बेर खाने हैं, बरसात की तैयारी* जैसी किताबों ने जीवन में बचपन से ही शुरू होने वाले संघर्षों

और वंचितताओं को महसूस करने के अवसर दिए, साथ ही एक वर्ग विशेष के जीवन के अहम हिस्सों को समझा और उनके प्रति मन में एक संवेदनशीलता और सम्मान का भाव भी महसूस हुआ।

कुछ कहानियाँ जैसे– *चटनी, कार, बहादुर कार मालिक, आज क्या किया* मुझे ख़ास अच्छी नहीं लगीं या यूँ कह लो कि उन कहानियों ने मुझे कोई ऐसा अहसास नहीं दिया जिनसे एक जुड़ाव महसूस कर पाऊँ।

बच्चों के साथ इन किताबों को पढ़ने के अनुभव

जब बच्चों के बीच यह किताबें लेकर गई तो किताबों को पसन्द करने के अनुभव मिले जुले ही थे। किसी बच्चे को *बहादुर कार मालिक पसन्द* आई क्योंकि कहानी उसके घर के पास की घटना जैसी ही थी। किसी को *चटनी* पसन्द आई क्योंकि उसे लगा यह तो उसकी ही कहानी है। किसी को *बहादुर कार मालिक* पसन्द नहीं आई क्योंकि बेचारे कार वाले की इतनी क़ीमती कार कबाड़ हो गई। पर अब तक ऐसा कोई बच्चा नहीं मिला जिसे इस संग्रह में अपनी पसन्द की कोई किताब न मिली हो।

वहीं घर बनाया, या *आज क्या किया* जैसी कहानियाँ मुझे अच्छी नहीं लगीं, लेकिन अधिकतम बच्चों ने उनको पसन्द किया क्योंकि यह उनके अपने खेल थे। यह भी कह सकते हैं कि हम जिन बच्चों के साथ काम करते हैं, यह उनके अनुभव थे जो वे कहानी के माध्यम से सुन और पढ़ रहे थे।

फ्रैंक स्मिथ के अनुसार, "पढ़ना एक निजी संसार है, हमारे रोज़ के अनुभव पढ़ते समय पढ़ने की प्रक्रियाओं में मदद करते हैं।" वे बताते हैं, "जो कुछ हम जानते हैं और जिन तथ्यों व अनुभवों पर हम विश्वास करते हैं, हमारी आशाएँ और सम्भावनाएँ सभी एक सिद्धान्त के रूप में हमारे मस्तिष्क में समाहित हो जाती हैं और पढ़ने की प्रक्रिया में मदद करती हैं।"

उपरोक्त सन्दर्भ में देखें तो बच्चों के अनुभवों से रची बुनी यह किताबें बच्चों के भाषा शिक्षण और पढ़ना सीखने में एक उम्दा ख़ुराक का काम करेंगी। शुरुआती पढ़ना सीख रहे बच्चे भी इन्हें पढ़कर समझ लेते हैं और अपने अनुभव बताने लगते हैं।
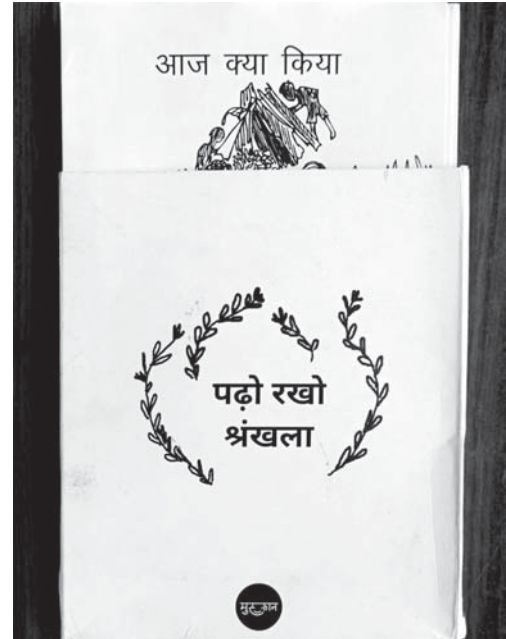
पिछले महीने ही जब विद्या, जो कक्षा 5 में पढ़ती है, को *घर बनाया* किताब पढ़ने को दी और पूछा, "कैसी लगी", तो उसने तुरन्त जवाब दिया, "बहुत अच्छी लगी दीदी। हम भी बचपन में ऐसा ही बोरी पन्नी का घर बनाकर खेलते थे और उसमें ही खाना बनाते एवं खाते थे।" बताते समय उसके चेहरे पर जो ख़ुशी थी, वो वैसी ही लग रही थी जैसी खेल में मस्त बच्चे के चेहरे पर होती है। इस किताब ने उसे वापस अपने खेल के अनुभव दे दिए।

चटनी कहानी पढ़कर इन्द्रसेन और भानुराज, जो कक्षा 4 के बच्चे हैं, पूछने लगे, "कहानी में जो मांजना और जीनू हैं वो हमारी बस्ती वाले हैं न? हम लिखेंगे तो हमारी भी किताब छपेगी क्या?"

जैसे ही कक्षा में बातचीत के अवसर बने, सब बच्चे किताबों से जुड़े अपने-अपने अनुभव सुनाने लगे। बच्चे आपस में भी इनपर बात करते हैं। बच्चे अपनी बात बोलें, इसके लिए किसी तरह के अतिरिक्त प्रयास की ज़रूरत भी नहीं पड़ी। इस बात से स्पष्ट होता है कि बच्चों की अभिव्यक्ति क्षमता को उभारने में परिवेशीय किताबें प्रेरक का कार्य करती हैं।

एक ख़ास बात यह रही कि चूँकि दिखने में यह किताबें बहुत रंगीन नहीं हैं, इसलिए सिर्फ़ देखकर बच्चे इनको पसन्द नहीं करते। जो बच्चे थोड़ा बहुत पढ़ना जानते हैं और जो इन कहानियों को सुन चुके हैं, उन्हें यह किताबें बहुत पसन्द आती हैं।

इनकी भाषा बहुत सरल है और कहानियों में बच्चों को अपने आसपास की ऐसी घटनाएँ एवं बच्चों के नाम पढ़ने को मिलते हैं जो उनके दैनिक अनुभवों से जुड़े हैं। बच्चे इन्हें आसानी से पढ़कर समझ पाते हैं। बच्चों के पठन अभ्यास के लिए यह किताबें एक अर्थपूर्ण सामग्री का काम करती हैं।

कच्ची बस्तियों में रहने वाले बच्चों की दिनचर्या, खेल, ज़िन्दगी और परिवेश से सम्बन्धित घटनाओं और अनुभवों को बयाँ करने वाली 24 कहानियों की यह श्रृंखला अपने-आप में एक छोटा पुस्तकालय है, जो बेहद कम ख़र्चीला है। इस अकेले संकलन से ही एक पूरे पुस्तकालय की शुरुआत की जा सकती है।

सन्दर्भ

पढ़ना यानी एक सृजनात्मक अनुभव, भाषा शिक्षण-1 अध्याय-14, यूनिट-4, (डीएलएड) एससीईआरटी, रायपुर (छत्तीसगढ़), हिन्दी प्रकाशन वर्ष 2017

नीतू यादव 2006 से शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं। विशेष रूप से पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक कक्षाओं में भाषा और गणित शिक्षण को अर्थपूर्ण, बालकेन्द्रित और मनोरंजक बनाने के लिए प्रयास किए हैं। वर्तमान में स्वतंत्र रूप से बतौर बाल पुस्तकालय प्रशिक्षक कार्य कर रही हैं। शोध कार्य, शैक्षिक और रचनात्मक लेखन में रुचि है।

सम्पर्क : neetu.yadav23@yahoo.in

खेलों की पहल से भी बदल सकती है तस्वीर

राजकीय उ.प्रा. विद्यालय लवाणा के खेल शिक्षक मनोज हाडा से मोहम्मद उमर की बातचीत

यह साक्षात्कार लवाणा के खेल शिक्षक मनोज हाडा सर का है। मनोज राजस्थान के उच्च प्राथमिक विद्यालय लवाणा, राजसमन्द में अध्यापक हैं। मनोज और अन्य शिक्षकों ने मिलकर पिछले सालों में स्कूल को बहुत बेहतर किया है। इसमें खेल और शिक्षा की सहभागी गतिविधियों को शामिल करते हुए बच्चों के सर्वांगीण विकास में नया प्रयास किया है। इसी पर हम उनसे बात करेंगे।

मोहम्मद उमर : आप कई वर्षों से शिक्षा और समाज के लिए जो काम कर रहे हैं उसे पूरा राजसमन्द ज़िला जानता है। आप अपने बारे में, पढ़ाई-लिखाई और स्कूली जीवन के बारे में कुछ बताएँ।

मनोज हाडा : धन्यवाद कि आपने मुझे अपनी बात रखने मौक़ा दिया है। मेरी 12वीं तक की पढ़ाई सरकारी स्कूल श्री बालकृष्ण विद्या भवन, कांकरोली, राजसमन्द से हुई है। खेलों से मेरा जुड़ाव बचपन से रहा है। फुटबॉल खेलना मुझे सबसे अच्छा लगता है। तीसरी कक्षा से ही फुटबॉल खेल रहा हूँ। विद्यालय स्तर पर अन्य खेलों में भी भाग लेने लगा था। मैंने ज़िला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर तक फुटबॉल में भाग लिया। हमें सीनियर लोगों ने बहुत सहयोग किया। वे सुबह-शाम अभ्यास कराते थे। मैं क्लब से भी जुड़ा। फुटबॉल जुनून था, तो मैंने सोचा क्यों न आगे भी इसी से जुड़ा रहूँ या इससे जुड़ा कोई व्यवसाय करूँ।

स्कूल की पढ़ाई पूरी होने के बाद खेल के लिए ही मोहनलाल सुखाडिया यूनिवर्सिटी, उदयपुर कला महाविद्यालय कैम्पस में दाख़िला

लिया। मैंने यह सोचा था कि आगे राष्ट्रीय खेल संस्थान (एनआईएस) से जुड़ेंगे और विश्वविद्यालय के लिए खेलेंगे। मैं 4 साल तक अपनी यूनिवर्सिटी की फुटबॉल टीम का हिस्सा और कप्तान भी रहा हूँ। इसके बाद, मुझे नीविया कम्पनी (जो खेल से सम्बन्धित सामग्री का निर्माण करती है) के साथ हुए अनुबन्ध के तहत राष्ट्रीय स्तर के क्लब में शामिल होकर दो साल तक खेलने का अवसर मिला। यहाँ मैंने राष्ट्रीय स्तर पर बहुत सारे मैच खेले हैं।

जैसा कि अधिकतर खिलाड़ियों के साथ होता है, 20-21 साल का होते ही उसे आजीविका का आधार बनाने की ज़रूरत होती है। यह तय करना होता है कि भविष्य में क्या करेंगे? ज़िन्दगीभर तो खेल नहीं सकते। इससे तो ख़र्चा भी नहीं निकाल सकते। माता-पिता

और परिवार कब तक सहयोग करेंगे? एक समय आता है जब हमें या तो उस खेल के अन्दर रहकर समस्याओं से जूझना पड़ता है या सोचना पड़ता है कि ज़िन्दगी के लिए कोई व्यवसाय या आमदनी का स्रोत ढूँढ़ें।

आज सरकार के सहयोग से एक स्तर का बदलाव आ गया है। सन् 2000 के आसपास की बात है। मैंने भी सोचना शुरू किया और खेल में ही आगे बढ़ना तय किया। डीपीएस से प्रशिक्षण ले लिया। वहाँ पर भी काफ़ी समस्या आई। राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी हों या फिर कोई सिर्फ़ एक बार ही खेला हो, सरकार की नियुक्तियों का आधार 10वीं और 12वीं के अंक और खेल का एक प्रमाण पत्र था। अमूमन ये देखते थे कि खिलाड़ी औसत होते थे। ठीक है, एकाध ही पढ़ाई-लिखाई में अच्छा हो सकता है। पर सभी खिलाड़ी या तो खेल के कारण कमज़ोर होंगे या फिर औसत होंगे। सरकार ने पॉलिसी न जाने क्या सोचकर बना रखी थी कि जिसके 10वीं और 12वीं में उच्चतम अंक होंगे, उसको शारीरिक शिक्षक (पीटीआई) बनाएँगे या सरकारी नौकरी देंगे। मुझे लगा इस तरह सिर्फ़ खेल के सहारे जीवन नहीं चलेगा।

परिवार की कुछ ज़रूरतें हैं, तो उसके लिए मैं व्यापार में चला गया। साथ ही खेलों से भी जुड़ा रहा। मैंने ग्रेजुएशन करके सोचा कि 10वीं और 12वीं के आधार पर ही सरकारी नौकरी के लिए प्रयास करता हूँ। 10वीं में मेरी तृतीय श्रेणी थी। श्रेणी सुधार के लिए 2001 में फिर से 10वीं उत्तीर्ण की। जब 2003 में रिक्तियाँ निकलीं तो आवेदन किया। बाद में सरकार ने कहा कि अगर ग्रेजुएशन के बाद आप 10वीं करोगे तो हम नहीं मानेंगे। मेरा मानना था कि इस पद के लिए आवेदन हेतु जो उम्र रखी गई थी, मैं उससे कम हूँ और जो मानदण्ड रखे गए थे, उन सबमें भी मैं योग्य हूँ।

मैं मेरिट में था। फिर भी सरकार ने मना कर दिया। इस तरह के नियमों के ख़िलाफ़ मैं उच्च न्यायालय और फिर उच्चतम न्यायालय भी गया। सन् 2013 में उच्चतम न्यायालय से मेरे पक्ष में फ़ैसला आया। कई संघर्षों से गुज़रकर मैं सरकारी स्कूल में खेल शिक्षक की नियुक्ति प्राप्त कर सका।

मैंने शारीरिक प्रशिक्षण प्रशिक्षक की नौकरी के लिए आवेदन किया था। शुरू से ही मेरी इच्छा थी कि मैं खेल से जुड़ा रहा हूँ तो खिलाड़ी तैयार करूँ। मैं सोचता था कि बच्चों को एक वातावरण मिलना चाहिए, खिलाड़ियों को सुविधाएँ मिलनी चाहिए। भारत में क्रिकेट को छोड़कर सभी खेलों को एक तरह से बिलकुल ही निम्न तरीक़े से देखा जाता था। खिलाड़ियों की कोई अहमियत नहीं थी। कहा जाता था कि खेलोगे कूदोगे तो बनोगे ख़राब। ऐसी स्थिति थी। यह सब मेरे दिमाग़ में था कि इन सबको खेलों के साथ जोड़कर इसको ऊपर की तरफ़ ले जाया जाए, बच्चों को तैयार किया जाए। उसकी अहमियत सबको बताई जाए। तो इन सबके कारण मैं खेलों से जुड़ा रहा और खेलता रहा।

मोहम्मद उमर : लवाणा स्कूल में आप किस सत्र में आए और उस समय की स्थितियों को देखकर किस तरह के विचार आए?

मनोज हाडा : 2014 में मुझे लवाणा विद्यालय में खेल शिक्षक के रूप में नौकरी मिली। जब मैं उस विद्यालय में पहुँचा तो देखा कि वहाँ कोई खेल मैदान ही नहीं है। जो आधारभूत सुविधाएँ होती हैं, जैसे– पीने का पानी, बैठने के लिए स्वच्छ और साफ़-सुथरी कक्षा होनी चाहिए, साफ़-सुथरे शौचालय होने चाहिए, तो मैंने सोचा कि क्या इसी के लिए मैंने इतनी लड़ाई की। क्यों मैं 2001 से लेकर 2013 तक सोचता रहा कि मैं खेल से जुड़ूँगा, शारीरिक शिक्षक बनूँगा, खिलाड़ी तैयार करूँगा। खेलना तो दूर, उनकी ख़ुद की व्यक्तिगत ज़रूरतें ही पूरी नहीं हो पा रही थीं। फिर भी मैंने वहाँ पदभार ग्रहण किया और कुछ दिन माहौल देखा। साथी शिक्षकों का यही विचार होता है कि पीटीआई की क्या ज़रूरत है। इस तरह से बच्चों के साथ सम्बन्ध मत बनाओ, बच्चों से ऐसे प्यार से बात करने की ज़रूरत नहीं है। बच्चे सिर चढ़ जाएँगे, आप तो आते-जाते उन्हें दो लगाया करो। एक-दो माह तक तो ये चलता रहा, फिर दिमाग़ में आया क्या मैं इसीलिए नौकरी कर रहा हूँ। या तो इसे छोड़कर अकादमी शुरू कर दूँ, या व्यवसाय की तरफ़ चलूँ। मेरा मक़सद था, खेल से जुड़ना, खिलाड़ी तैयार करना, वैसा माहौल प्रदान करना परन्तु खेल मैदान और संसाधन कुछ भी नहीं। शुरुआत में होता है कि विद्यालय स्टाफ़ से भी आपको सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं मिल पाती है। ये भी सोच होती है कि ये बच्चों को खिलाएँगे, कहीं इनको चोट लग गई, हाथ-पाँव टूट गया तो इनके माता-पिता हमारे पास आ जाएँगे और कल कहीं टूर्नामेंट में ले जाएँगे और कुछ हादसा हो गया तो क्या होगा? शुरुआत में तो खेल खिलाने की अनुमति भी नहीं थी। आप तो बस इनको कक्षा में लेकर बैठे रहो। अनुशासन में रहना आना चाहिए। कुछ समय बाद मैंने सोचा कि शुरुआत करते हैं। वहाँ मैंने टूर्नामेंट का आयोजन कराया। खेल मैदान के नाम पर पीछे दो-तीन बीघा ज़मीन दे रखी थी, मगर उसपर गाँव के कुछ लोगों का क़ब्ज़ा था। वहाँ कई लोहे की रॉड और लकड़ियाँ भी पड़ी हुई थीं। फिर गाँव वालों के साथ समझाइश करके वहाँ से यह सब हटवाया। उनके सहयोग से वहाँ एक छोटा खेल मैदान शुरू किया। बच्चों को हम सुबह-शाम नियमित बुलाने लगे। तो एक शुरुआत करनी पड़ती है। आपको कोई सहयोग नहीं करेगा, न स्टाफ़ करेगा, न गाँव वाले। गाँव वाले भी विरोध में थे कि बच्चों को खिलाने की ज़रूरत नहीं है। शुरू में कई समस्याएँ आती हैं। अगर हमारी नीयत सही है तो लोग विश्वास करने लगते हैं और सफलता ज़रूर मिलती है।

मोहम्मद उमर : बच्चों के खेलने लायक़ मैदान लोगों के क़ब्ज़े में था और प्रधानाध्यापक और साथी शिक्षक भी कुछ करने को तैयार नहीं थे तब आपने क्या-क्या प्रयास किए कि धीरे-धीरे लोग आपके साथ आएँ?

मनोज हाडा : सभी जगह कुछ अच्छे लोग होते हैं। आज के युवा बहुत जागरूक हैं। मैंने उन्हें बताया कि किस तरह से खेल-कूद का माहौल बनाना चाहते हैं। अगर स्कूल को आवण्टित मैदान से लोगों का क़ब्ज़ा ख़ाली हो जाए, तो कबड्डी, फुटबॉल का मैदान बन सकता है। बच्चों के लिए टूर्नामेंट का आयोजन किया जा सकेगा। तहसीलदार को भी अपनी योजना बताई और उनके सहयोग से जगह की नपती की गई। गाँव वालों की एक मीटिंग बुलाकर उनको भी योजना बताई। गाँव वालों ने पंच-सरपंच के साथ मिलकर, मैदान पर जिनके क़ब्ज़े थे उनको क़ब्ज़ा ख़ाली करने की समय-सीमा दी। धीरे-धीरे सब क़ब्ज़ाधारी अपना सामान और जानवर हटाने लगे। खेल मैदान ख़ाली हो गया। फिर सीमांकन हुआ, सबकी सहमति से खेल मैदान बनाकर यहाँ चारदीवारी का निर्माण किया गया।

मोहम्मद उमर : गाँव में टूर्नामेंट के आयोजन ने बच्चों, अभिभावकों और साथी शिक्षकों पर क्या असर डाला?

मनोज हाडा : मैंने पदभार ग्रहण करने के एक-दो महीने में ही टूर्नामेंट कराया था। शुरुआत में बच्चों को ये भी मालूम नहीं था कि फुटबॉल पैर से खेला जाता है, इसके नियम जानना तो

बहुत दूर की बात है। फुटबॉल में हाथ लगाया जाता है या नहीं? कैसे हार-जीत होती है? मैच देखने से उनको काफ़ी कुछ सीखने को मिलता है। हर बच्चा चाहता है कि वो खेले। शुरुआत में खेलों के माध्यम से ही उनको पढ़ाई कराएँ। बच्चों के लिए यह ज़्यादा आसान रहता है। मैंने भी बच्चों के साथ यही सब शुरू किया, इससे गाँव के लोगों की काफ़ी सकारात्मक प्रतिक्रिया आई। फिर धीरे-धीरे नियमित रूप से अभ्यास शुरू हो गया। टूर्नामेंट के आयोजन ने बच्चों में रुचि जगाने और समुदाय से सहयोग प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस पहले टूर्नामेंट के बाद से ही बदलाव की असली कहानी की शुरुआत हुई। अब तो विद्यालय के बच्चे फुटबॉल और वॉलीबॉल नियमित रूप से खेलते हैं।

मोहम्मद उमर : आपने जो काम तय किए उनमें कुछ प्राथमिकताएँ तय कीं या जैसा सामने आता गया वैसा आप करते गए।

मनोज हाडा : पदभार ग्रहण करने के बाद खेलों की शुरुआत की। सुबह-शाम अभ्यास शुरू कराया। पर जब विद्यालय जाते थे तो वहाँ देखता था कि सभी जगह सरकारी स्कूलों की जो स्थिति होती है, वो वहाँ पर भी थी। न तो वहाँ कोई साफ़-सफ़ाई होती थी, न पेयजल होता था, और न शौचालय थे। विद्यालय में अनुसूचित जाति-जनजाति समुदाय के बच्चे ज़्यादा थे। सामान्य वर्ग से एक भी बच्चा नहीं था। बच्चे ख़ुद भी तैयार होकर नहीं आते थे। मुझे लगा कि इस स्थिति में कुछ बदलाव करना चाहिए। विद्यालय में स्टाफ़ से बात की, प्रधानाध्यापक से चर्चा की। हमें बच्चों की आधारभूत ज़रूरतें सबसे पहले पूरी करनी चाहिए। विद्यालय परिसर को स्वच्छ रखना पड़ेगा। भले ही विद्यालय भवन पुराना हो, मगर इसे साफ़-सुथरा तो रख ही सकते हैं। पीने के पानी के लिए अच्छे नल की व्यवस्था करा सकते हैं। टंकी व शौचालय की सफ़ाई करवा सकते हैं। जन सहयोग से विद्यालय में काम करवाया गया। शुरुआत रंग-रोगन से की गई, फिर जैसे-जैसे समस्याएँ सामने आती गईं, उनके आधार पर काम करते गए। पीने के पानी वाली टंकी की साफ़-सफ़ाई करवाई, और छात्रों व छात्राओं के लिए अलग-अलग शौचालय का निर्माण किया गया। कक्षा-कक्ष की आवश्यकता थी, जन सहयोग से, प्रशासन से, सरकार से, जहाँ से भी सहयोग मिल सकता था, हमने माँग की। खेल मैदान में जो ज़रूरी सुविधाएँ होती हैं, उनके किट, खेल उपकरण सब उपलब्ध करवाए। खेलों से बड़ा फ़ायदा यह होता है कि हम बच्चों को बाहर भी ले जा सकते हैं। जब वो दूसरे सरकारी व प्राइवेट स्कूलों के साथ खेलते हैं तो उनको बहुत कुछ सीखने को मिलता है। मैं अपने विद्यालय के बच्चों को जे के स्कूल, लक्ष्मीपत सिंघानिया आदि बड़े स्कूलों के साथ मैच खेलने के लिए टूर्नामेंट में ले जाता था। वहाँ वो देखकर सीखते थे। धीरे-धीरे उनमें आपस में दोस्ती भी होने लगी। वो बच्चे भी यहाँ खेलने आने लगे। सबकी सोच में, रहन-सहन में बदलाव आने लगा। एक दूसरे को देखकर विद्यालय स्तर पर परिवर्तन होने लगा। धीरे-धीरे आज ऐसा समय आ गया है कि सभी पूरी साफ़-सफ़ाई और तैयारी के साथ स्कूल आने लगे हैं। उनको लगता है कि हमें विद्यालय इस तरह से तैयार होकर और किताब, बस्ते ध्यान से लेकर जाना चाहिए। पहले यहाँ-वहाँ कचरा पड़ा रहता था, अब अगर कहीं पर कचरा दिखता है तो ख़ुद ही हटाकर दूसरी तरफ़ डाल देते हैं।

जे के स्कूल अच्छे निजी स्कूलों में गिना जाता है और लवाणा का स्कूल सरकारी है। इन स्कूलों के बच्चे खेल के माध्यम से एक मंच पर आए और इन्होंने एक दूसरे से सीखा कि हमारा स्कूल भी इस साफ़-सुथरे दिख रहे स्कूल जैसा रहे। जब ज़िला स्तरीय टूर्नामेंट हुआ, सारे ज़िले से फुटबॉल टीम आईं। एक नामी प्राइवेट स्कूल की टीम ज़िले में हमेशा चैम्पियन रहती थी, क्योंकि वहाँ संसाधनों की कमी नहीं होती थी और वहाँ पर लगभग 1500-2000 बच्चे हैं। हमारे विद्यालय में 150 बच्चे ही थे। हमारे बच्चों ने कड़ी मेहनत की और ज़िले के चैम्पियन हुए। जब प्राइवेट स्कूल वालों ने देखा कि ये भी जीत सकते हैं, एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का माहौल

बना। बच्चों के मन में भी एक दूसरे के प्रति बराबरी और सम्मान की भावना आई। उनमें आपस में मित्रता होने लगी। इस तरह से सकारात्मक प्रतिक्रिया दोनों तरफ़ से होने लगी और बच्चे आपस में एक दूसरे से बात भी करने लगे।

मोहम्मद उमर : ऐसी कुछ घटनाएँ बताएँ जो आपको उत्साहित करती हैं।

मनोज हाडा : हाँ, शुरुआत में कोई भी काम आसान नहीं होता है। किसी भी क्षेत्र में समस्याएँ तो आएँगी ही। लोग सोचते हैं कि मैं अच्छा कर रहा हूँ, फिर भी लोग मेरा सहयोग नहीं कर रहे हैं, मेरे बारे में बुरा सोच रहे हैं। छोड़ो, रहने दो, मुझे क्या करना है। ये विचार मेरे मन में भी आया था, मगर मैं अपने काम में लगा रहा था। किसी काम में लगातार प्रयास करो तो धीरे-धीरे सकारात्मक प्रतिक्रिया मिलनी शुरू हो जाती है। आज विद्यालय के शिक्षकों का पूरी तरह से सहयोग है। हमने सोचा विद्यालय में पेड़-पौधे लगने चाहिए। सभी शिक्षक-शिक्षिका भी सहमत थे। 15,000 का बजट था। सभी ने कुछ-कुछ योगदान किया। स्कूल के मैदान में पौधे लगाए। आज विद्यालय में अच्छा हरा-भरा बग़ीचा तैयार है।

मोहम्मद उमर : अब आप लोग कितने शिक्षक-शिक्षिकाएँ हो गए हैं स्कूल में?

मनोज हाडा : पहले 5 ही शिक्षक-शिक्षिकाएँ थे। अब बच्चों की संख्या के आधार पर 11 हैं। पहले 150 बच्चे थे, आज 232 हैं। बच्चों को जब किसी भी चीज़ की ज़रूरत लगी, जैसे कक्षा में पंखे या कूलर नहीं थे, तो शिक्षकों-शिक्षिकाओं ने शुरुआत की। एक-एक पंखा हमारी तरफ़ से दिया। शुरुआत हमने की तो गाँव वालों ने भी देखा कि स्कूल में वे भी कोई सामान देंगे तो बच्चों के ही काम आएगा। अब भी ज़रूरत होती है तो गाँव वाले और स्टाफ़ भी पूरा सहयोग करते हैं।

मोहम्मद उमर : ऐसी कोई घटना जिससे लगे कि अब लोगों का आपके प्रति व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आया है।

मनोज हाडा : हाँ, जब हम कोई शुरुआत करते हैं और उसमें सफल हो जाते हैं, तो सबके नज़रिए में भी बदलाव होता है। जब हम कोई उदाहरण रखते हैं तो उसे देखकर अधिकारी और दूसरे साथी शिक्षक भी चाहते हैं और दूसरे विद्यालय में भी प्रयास शुरू होते हैं। कुछ भी करने के लिए सोच के साथ कड़ी मेहनत से धीरे-धीरे एक विचार बनता है और समुदाय में फैलता है।

मोहम्मद उमर : आपने बताया कि लड़कियों की भागीदारी को लेकर भी गाँवों में बहुत हिचक है। ऐसे लोग हैं जो बालिकाओं को स्कूल ही नहीं भेजना चाहते हैं। जब इन्होंने अपने बच्चों व बेटियों को बेहतर खेलते देखा तो क्या कुछ बदला? यहाँ तक की यात्रा में आई चुनौतियों के बारे में बताएँ?

मनोज हाडा : शुरुआत में हमारे विद्यालय में 100 लड़कियाँ और 50 लड़के थे। थोड़े-बहुत सक्षम भी अपने लड़कों को तो प्राइवेट स्कूल भेजते थे, लेकिन लड़कियों को सरकारी स्कूल में पढ़ाते थे। अतः लड़कियों की संख्या लड़कों से बहुत अधिक थी।

खेल की शुरुआत में सब पूर्वाग्रह से ग्रसित थे। कई मानते थे कि बच्चा वैसे भी पूरे दिन घूमता रहता है। घूमना-फिरना ये सब खेल ही तो है। बच्चा अगर कुछ नहीं कर रहा है, तो वो खेल रहा है। यह भी शक था कि बच्चा खेलने से पतला हो जाएगा। कुछ माता-पिता ने तो यह शिकायत की भी कि बच्चे का वज़न कम हो गया है। उसको दौड़ाना नहीं है, खड़े-खड़े ही खेल खिलाइए। हम अपने काम में लगे रहे। बच्चे स्कूल में खेलते, अभ्यास करते, शिक्षक भी उनकी मदद करते। विद्यालय के बच्चे जब ज़िला स्तर पर खेले तो उनके नाम, फ़ोटो और माता-पिता के नाम भी अख़बारों में आए। अब दूसरे गाँव या स्कूल वाले भी बच्चों को पहचानने लग गए। उनके माता-पिता को भी सम्मान और पहचान मिलने लगी। शिक्षक और गाँव के लोग भी प्रशंसा करने लगे कि आपका बच्चा अच्छा कर रहा है। धीरे-धीरे उन्हें भी खेल-कूद की अहमियत पता चलने लगी। आज माता-पिता ख़ुद ही अपने बच्चों को खेलने के लिए भेज देते हैं।

लड़कियों के मामले में तो हर जगह काफ़ी प्रतिबन्ध हैं। विद्यालय, समाज, हर जगह लड़कियों का मानसिक, शारीरिक व भावनात्मक रूप से काफ़ी शोषण होता है। लड़कियाँ खुलकर इसे कह भी नहीं पाती हैं। इसलिए स्टाफ़ ने मिलकर बच्चों को भी काफ़ी जागरूक किया। उन्हें बताया कि किसी भी तरह का शोषण हो तो उसका पुरज़ोर विरोध करना चाहिए। अपने माता-पिता या परिवार में किसी भी बड़े को खुलकर अपने मन की बात बता सकती हो। शुरुआत में लड़कियों को अलग समूह में खेलने का अवसर दिया गया। जब लड़कियाँ बेहतर खेलने लगीं तो उनकी भागीदारी भी स्कूल, ज़िला और राज्य स्तर के खेलों में होने लगी। उनके माता-पिता भी सकारात्मक सोचने लगे। इस तरह के प्रयासों से माँ-बाप का भरोसा क़ायम करने में समय लगता है।

मोहम्मद उमर : आपके विद्यालय की लड़कियाँ कौन-कौन से खेलों में भागीदारी करती हैं?

मनोज हाडा : विद्यालय में बालिकाओं के लिए वॉलीबॉल खेल चल रहा है। 7-8 बच्चियाँ वॉलीबॉल खेल रही हैं, एक बच्ची राष्ट्रीय स्तर पर बैडमिंटन खेली है, विद्यालय में बैडमिंटन कोर्ट का भी निर्माण किया गया है। एथलेटिक्स में भी बच्चे काफ़ी रुचि रखते हैं और नियमित अभ्यास करते हैं। ज़िला और राज्य स्तर पर भी बच्चों ने प्रतिनिधित्व किया है। मुख्य रूप से लड़कों के लिए फुटबॉल और लड़कियों के लिए वॉलीबॉल एवं बैडमिंटन हैं।

मोहम्मद उमर : आपके विद्यालय में फुटबॉल और बास्केटबॉल जैसे खेलों की सुविधा उपलब्ध है। यहाँ बच्चे सुबह अभ्यास करते हैं। सबको तैयार करने में काफ़ी संसाधनों की आवश्यकता पड़ी होगी।

मनोज हाडा : भारत के स्कूलों में खेल मैदानों की जो दयनीय स्थिति है, सभी उससे अवगत हैं। जब मैं खेलता था, अपने स्कूल के बच्चों को सभी तरह के खेल संसाधन व आधारभूत

सुविधाएँ उपलब्ध कराने के बारे में सोचता था। शुरुआत में बच्चों के साथ मिलकर घास का खेल मैदान तैयार किया। जो भी संसाधन चाहिए थे उन्हें ख़रीदने के लिए गाँवों के लोगों, साथी शिक्षकों आदि से सहयोग लिया। कई बार अपने वेतन से ही कुछ ख़र्च कर बच्चों के लिए खेलने का सामान ख़रीदा। उन्हें आसपास के टूर्नामेंट में ले जाने का ख़र्च स्वयं उठाया। आज हम जन सहयोग से कई काम करा पाते हैं। स्कूल में पानी की पाइपलाइन है, फ़व्वारा है और मोटर है। फुटबॉल खेलने के लिए एक अच्छा घास का मैदान है। वॉलीबॉल कोर्ट और बैडमिंटन कोर्ट भी हैं। जिस खेल में जिन-जिन चीज़ों की ज़रूरत है, और जो भी होनी चाहिए वह सब उपलब्ध कराने का प्रयास करते हैं। साथ ही बच्चे को आहार भी उसी के अनुरूप मिलना चाहिए, तभी वह आगे बढ़ पाएगा।

मोहम्मद उमर : स्कूल के खेल के मद में संसाधनों या आयोजन के लिए जो बजट होता है, क्या उसमें यह सम्भव है? इसके लिए आपको क्या अतिरिक्त प्रयास करने पड़े? यदि अन्य स्कूल ऐसा कुछ करना चाहें तो उनके लिए आपके क्या सुझाव होंगे?

मनोज हाडा : शारीरिक शिक्षक, प्रधानाध्यापक या कोई शिक्षक अपने विद्यालय या गाँव में यदि कुछ करना चाहता है, तो सबसे पहले तो विज़न होना चाहिए कि वो क्या करना चाह रहा है। जब वह इसकी रूपरेखा बना लेंगे या सोचेंगे कि इस तरह से मुझे काम करना है तो वह काम होना ही होना है। हाँ, उसके लिए संसाधन जुटाने हैं परन्तु वह भी धीरे-धीरे हो जाता है। जैसे-जैसे अपने लक्ष्य की ओर क़दम बढ़ाते रहोगे तो जन सहयोग से, विद्यालय स्तर पर, गाँव से, प्रशासन से सहयोग मिलता है। खेलने के लिए सिर्फ़ कोर्ट ही नहीं बनाना होता है, उसका रखरखाव भी करना होता है। सिर्फ़ विद्यालय के बजट से यह सब काम नहीं हो सकता। अभी दो-तीन साल पहले तक सरकार से लगभग 12,000 रुपए आते थे, मगर अभी बच्चों के हिसाब से यह राशि बढ़ा दी गई है। खेल मैदान का सारा काम उस बजट से सम्भव नहीं है। हम मेहनत करें, पीछे पड़ें तो लोग मदद के लिए तैयार हो जाते हैं। काम के लिए सरकार के पास भी कई योजनाएँ हैं।

मोहम्मद उमर : क्या शिक्षकों में बदलाव से जुड़ी कुछ घटनाएँ भी इस पूरी प्रक्रिया में आपने देखी हैं?

मनोज हाडा : हाँ, यह तो हुआ ही है। जब आप कुछ सकारात्मक सोचते हैं, अच्छा करना चाहते हैं तो बदलाव होता है और दिखने लगता है। जब एक उदाहरण प्रस्तुत हो जाता है कि इस तरह से काम करना चाहिए, सभी अपने काम के प्रति ईमानदार हो जाते हैं और अपने काम में लगन से कुछ अच्छा करना चाहते हैं। मैं दूसरे विद्यालय में देखता हूँ कि छुट्टी होते ही अध्यापक चले जाते हैं, कभी-कभी विद्यालय नहीं आना चाहते हैं। मगर हमारे विद्यालय में आज ऐसा नहीं है। छुट्टी होती है तब भी अध्यापक स्वतः आगे आते हैं। अगर कोर्स बचा रह गया है तो अतिरिक्त कक्षा भी लेते हैं। सुबह दस बजे से अपराह्न चार बजे तक विद्यालय का समय है। सिर्फ़ इसी समय में जुड़े रहने का कोई मतलब नहीं है। हमारे विद्यालय में शिक्षक पूरी तरह से जुड़ रहे हैं। बच्चों के माता-पिता और परिवार तक से इस तरह जुड़ जाते हैं कि बच्चों के भविष्य और उन्हें आगे क्या करना चाहिए आदि से सम्बन्धित सलाह भी देते हैं। भावनात्मक तौर पर भी बच्चों के साथ सम्बन्ध बनने शुरू हो जाते हैं।

मोहम्मद उमर : मुझे याद आ रहा है, कोरोना काल के दौरान हम आपके विद्यालय में मिले थे। शिक्षकों ने हमें बताया था कि वो गाँव में घूम-घूमकर कुछ वर्कशीट बच्चों को देकर आते हैं। बच्चे इसे पूरा करके अगले दिन दिखाते हैं। कोरोना काल आप लोगों और बच्चों के लिए भी बहुत ही विचित्र बीता होगा।

मनोज हाडा : सही है। उस समय सरकार के प्रतिबन्ध के कारण शिक्षक चाहते हुए भी बच्चों

को नहीं पढ़ा पाए, सीधे उनके साथ जुड़ नहीं पाए फिर भी अपने स्तर पर सोशल मीडिया, वॉट्सएप आदि द्वारा बच्चों से जुड़े रहे। पाँचवीं या आठवीं कक्षा का बच्चा अगर नियमित नहीं पढ़ेगा उनका परीक्षा परिणाम ख़राब आएगा। अगर छह महीने बाद भी बच्चा आता है, तो उसको पढ़ाने की ज़िम्मेदारी तो हमारी ही है। अगर हम बिना परीक्षा के उसे प्रमोट कर देते हैं, जैसे– पहली का बच्चा दूसरी में, दूसरी का बच्चा तीसरी में, सातवीं का बच्चा आठवीं में, मगर जब उस बच्चे को अगले वर्ष कुछ नहीं आएगा तब भी तो हमें ही पढ़ाना है, तो अभी से क्यों न मेहनत करें।

मोहम्मद उमर : लवाणा स्कूल में जो बदलाव की कहानी है, उसके बारे मे और जानना चाहेंगे। आपके आने से लेकर अब तक इसमें कुल कितने साल लग गए हैं? क्या आपके इस स्कूल में आने से पहले इस दिशा में कुछ भी काम नहीं हो रहा था या यह बहुत धीमा था?

मनोज हाडा : यह मैं कैसे कह सकता हूँ कि पहले क्या था। मगर जब मैंने विद्यालय में पदभार ग्रहण किया था तब सभी लोग समय पर आते और समय पर चले जाते थे। सभी अपना काम करते थे। कुछ अतिरिक्त गतिविधियाँ नहीं होती थीं। सभी का मत था कि अतिरिक्त गतिविधियाँ नहीं करनी हैं। ऐसा करके हम अधिकारियों की नज़र में आ जाएँगे। मेरा भी पहले यही विचार था, मगर अब ऐसा नहीं है। आज विद्यालय की एक बहुत ही सक्रिय स्कूल प्रबन्धन समिति है, उसके पास भी अधिकार हैं, विद्यालय में कोई कमी है तो वो भी प्रश्न करती है, बात को ऊपर उठाते हैं। जब सब मिलेंगे, बात करेंगे, तभी तो समस्याओं का हल सोचा जा सकेगा। मेरे लिए तो यही सबसे बड़ा बदलाव है। पहले तो यही नज़रिया था कि कुछ नहीं करना, टूर्नामेंट या पिकनिक पर नहीं ले जाना है। अगर कोई हादसा हो गया तो अपने ऊपर ही आएगा। कभी कुछ अच्छा काम करते हुए कोई ग़लती भी हो सकती है। घोड़े पर से गिरने के डर से ऐसा सोचना तो ठीक नहीं होगा कि हम घोड़े पर बैठें ही नहीं।

मोहम्मद उमर : अगर इस स्कूल में आसपास के बच्चे आ रहे हैं, ज़रूर अभिभावकों को यह सन्देश गया है कि यहाँ कुछ नया और बेहतर काम हो रहा है। तो क्या अपने स्कूल में सुधार के साथ ही समाज में भी सुधार लाया जा सकता है?

मनोज हाडा : निश्चित रूप से इस तरह के कई परिवर्तन होते हुए अब हम लोग देख पा रहे हैं। हमारे विद्यालय स्तर पर धीरे-धीरे बदलाव के साथ ही समाज के स्तर पर भी बदलाव हुआ। अगड़ी जातियों के बच्चे भी अब अन्य बच्चों को स्वीकार करने लगे हैं, उनके पास बैठने लगे हैं, साथ ही खाना भी खाने लगे हैं। जन्मदिन या त्योहार आदि में एक दूसरे के यहाँ जाते हैं। इस तरह एक दूसरे के प्रति उनकी सोच में भी बदलाव हो रहा है। लड़के-लड़कियों के विचार में भी बदलाव दिखता है। वे एक साथ खेलते हैं। मैदान पर अभ्यास करते समय एक साथ दौड़ते हैं। हमारे विद्यालय में अनुसूचित जाति-जनजाति समाज के बच्चे भी पढ़ते हैं, वो खेल-कूद में बहुत आगे हैं। इनमें से कई बच्चे राष्ट्रीय स्तर पर भी खेल चुके हैं।

मोहम्मद उमर : आपके स्कूल में एक लड़की से मैं मिला था जिसने दौड़ में कई पुरस्कार जीते हैं। वह अपनी उम्र के लड़कों को पीछे छोड़ देती है। एक और बालिका से मैं मिला था, जो भील समुदाय से थी। उसने कई खेलों में भागीदारी की है। बच्चे किसी भी तरह की जाति या समाज से हों, एक टीम की तरह ही बराबरी से रहते हैं। इस तरह उनके घरों और समुदाय में अच्छा सन्देश जाता है। बड़े-बुज़ुर्गों ने ये दूरियाँ बनाकर रखीं, मगर क्या इन बच्चों के जीवन या उनके मन से ऐसे फ़र्क मिट या कम हो गए होंगे?

मनोज हाडा : हिन्दुस्तान में प्रतिभा की कमी नहीं है सिर्फ़ उसको पहचान करके, माहौल देकर आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। दोनों तरफ़ से बेड़ियाँ टूट रही हैं।

मोहम्मद उमर : गाँव में भोज वग़ैरह होता है। लोग स्कूल से भी बच्चों को खाना खिलाने के लिए बुलाते हैं। कई बार वे कह देते हैं कि सिर्फ़ इसी समाज के बच्चों को भेजना। क्या आपके यहाँ भी इस तरह से बुलावा आता है या लोग अपेक्षा करते हैं कि उनके समाज के ही बच्चे आएँ?

मनोज हाडा : नहीं। जैसा कि मैंने बताया, विद्यालय स्तर पर भी और बाहर भी तक़रीबन सभी ने स्वीकार कर लिया है। बच्चे एक साथ बैठकर ही खाना खाते हैं। एक दूसरे के घर जा रहे हैं और एक दूसरे के साथ बैठकर खेल भी रहे हैं। तो सबकुछ स्वीकृत हो चुका है। हाँ, यह तो है कि यदि कोई बच्चा, भले ही वह सवर्ण जाति से क्यों न हो, वह साफ़-सुथरा नहीं है, तो बच्चे स्वतः ही उससे दूरी बनाएँगे।

मोहम्मद उमर : आपके विद्यालय में मैंने देखा है, शिक्षकों ने बहुत सारे टीएलएम बना रखे हैं। मिट्टी के खिलौने हैं, जो बच्चों के साथ मिलकर बनाए गए हैं, पेंटिंग्स हैं, मॉडल्स हैं, ये सारी चीज़ें देखकर लगता है कि एक तरह का उत्साह और ऊर्जा का संचार शिक्षकों के समूह में हुआ है। वे भी अपने काम में एक नयापन लाने का प्रयास लगातार कर रहे हैं। आपने बातचीत में बताया कि खेल-कूद इस पूरे परिवर्तन की धुरी बनकर उभरा है। यदि मान लें कि आप किसी और विषय के शिक्षक बनकर आ गए होते तो भी क्या ऐसा ही होता? खेलों को आप ख़ुद के बदलने में या इस पूरे बदलाव में मुख्य रूप से देख पा रहे हैं?

मनोज हाडा : मैं खेल टीचर था। शुरू से खेला और घर से बाहर निकलकर शहर, समाज, देश को देखने का मौक़ा मिला। कहीं-न-कहीं इन सभी अनुभवों का फ़ायदा तो मिलता है। विद्यालय में सारी सहशैक्षिक गतिविधियाँ होनी चाहिए। बच्चा आगे बढ़कर रुचि लेगा कि मेरी तो आज चित्रकारी की प्रतियोगिता है। आज मैं मॉडल बनाऊँगा या आज मैं मिट्टी का कुछ बनाऊँगा। आज व्यंजन बनाने की कक्षा है या आज हमारे यहाँ बाल मेला है। आज खेल है या प्रश्नोत्तरी है। तो इस तरह की शैक्षिक गतिविधियों में बच्चे बहुत रुचि लेते हैं। इस तरह की शैक्षिक गतिविधियाँ जितनी अधिक होंगी, हम उतना ही बच्चों से जुड़ पाते हैं और उन बच्चों को उतना ही मज़ा आता है।

इन शैक्षिक गतिविधियों से हम बच्चों को समझा भी सकते हैं, पढ़ा भी सकते हैं और बच्चों से जुड़ भी सकते हैं। मैं यही सोचता हूँ कि अगर मैं शारीरिक शिक्षक नहीं होता तो भी क्या मेरा नज़रिया यही रहता? मैं यही सोचता था कि मैं विद्यालय क्यों जाना चाहता था। मुझे विद्यालय में क्या अच्छा लगता था? कोई ग़लत करे तो कैसे विरोध होना चाहिए? मैं पढ़ाई क्यों करना चाहता था? बच्चों के विचार ऐसे ही होते हैं। अगर किसी की याददाश्त अच्छी है, उसने दस प्रश्न पढ़कर याद कर लिए और कोई बीस बार भी पढ़ रहा है फिर भी याद नहीं हो रहा है। इसका मतलब ये नहीं कि दूसरा बच्चा कमज़ोर है। एक शिक्षक के रूप में हमें सभी पक्ष देखने-समझने की ज़रूरत पड़ती है। हमें बच्चे के स्तर पर जाकर सोचना पड़ेगा, तब हम बच्चों से जुड़ पाएँगे। जब उस बच्चे की जगह ख़ुद को रखकर सोचेंगे कि ये स्कूल क्यों नहीं आ पा रहा है? या क्यों नहीं पढ़ पा रहा है, क्यों भाग रहा है? तब ही समझ सकेंगे। हमारे विद्यालय में एक समस्या ये भी है, कई बच्चे दूसरे विद्यालय से आए हैं। उन्हें छठवीं कक्षा में होने के बावजूद भी किताबें पढ़नी नहीं आती हैं। उन्हें छठवीं कक्षा के प्रश्नोत्तर दिए जाएँगे, या सवाल हल करने दिए जाएँगे तो जब वे पढ़ ही नहीं पा रहे हैं तो हल कैसे करेंगे? तब यही बच्चे विद्यालय से भागेंगे। ये भी नहीं हो सकता है कि अब इस उम्र में शिक्षक उनको सुबह से बिठाकर अलग से अक्षर ज्ञान शुरू करवाए। उनको फिर से विद्यालय में लाने, समझाने, अलग से कक्षा लेने में बहुत समस्या आती है। पर जब हम उस बच्चे की जगह ख़ुद को रखकर सोचेंगे कि क्या कर सकते हैं? कैसे कर सकते हैं? तो धीरे-धीरे उन समस्याओं पर क़ाबू पा सकते हैं या निराकरण कर सकते हैं।

मोहम्मद उमर : ये आपने बिलकुल सही कहा। सभी बच्चे विविध रुचि के होते हैं। हम सबसे एक जैसी अपेक्षा करें और सबसे एक जैसा प्रदर्शन चाहें वो ठीक नहीं है। मैंने एक कहानी पढ़ी थी जिसमें चील, मेंढक, मछली व ख़रगोश हैं। ख़रगोश दौड़ सकता है, चील उड़ सकती है, मेंढक और मछली पानी में तैर सकते हैं। हम अगर इनसे कहें कि सभी उड़ो। ये इन सबके साथ नाइंसाफ़ी है। बच्चों के साथ भी यही है, हर बच्चे की रुचियाँ और विविधताएँ अलग-अलग हैं। अगर हम खेल की गतिविधियों से आधार बनाते हैं, तो खेल से बहुत सारी चीज़ें शिक्षा से जुड़ती हैं। ख़ासतौर से मूल्यों की बात है। खेल ईमानदारी और एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना जगाता है। यह आज के समाज में बहुत महत्त्वपूर्ण है। हो सकता है कि लोग पढ़-लिखकर इंजीनियर बन जाएँ, लेकिन वो इसी दुख में रहते हैं कि मेरा साथी मुझसे आगे कैसे निकल गया है। जबकि यहाँ आपने उदाहरण दिया कि लक्ष्मीपत सिंघानिया स्कूल के बच्चे खेल में हार गए थे फिर भी वे दोस्ती का हाथ बढ़ाकर लवाणा स्कूल के बच्चों के दोस्त बन गए।

मनोज हाडा : आपने सही कहा। सिर्फ़ किसी खेल का खिलाड़ी बनाकर हमें कोई राष्ट्रीय स्तर का पदक नहीं चाहिए। हमें उसको खेल के सहारे एक अच्छा नागरिक भी बनाना है। यह हमारे पाठ्यक्रम में भी दिया गया है। निश्चित रूप से, सरकार को भी अपने सिस्टम में यह लाना चाहिए। किसी बच्चे को दिन-रात पढ़ाकर कलेक्टर बनाया जा सकता है। मगर कल को वह भ्रष्ट होगा, रिश्वत लेगा तो? एक अच्छा नागरिक बनकर यदि वो एक चपरासी का काम ही कर रहा है, तो वह अपने पेशे से ईमानदार है। वह उस कलेक्टर से काफ़ी अच्छा है। खेल में एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए। एक ईमानदार खिलाड़ी वह है जो कहीं फ़ाउल हो गया है, या ग़लती से कहीं हाथ छू गया तो स्वयं ही बता दे। ये ईमानदारी और आपसी सहयोग की भावना, अपने साथी की सफलता से ईर्ष्या नहीं करना, आदि मूल्य हम खेलों के माध्यम से बहुत अच्छे-से सिखा सकते हैं।

मोहम्मद उमर : इस पूरी प्रक्रिया में स्कूल अथवा समाज में कौन-से तीन प्रमुख बदलाव आपको नज़र आते हैं?

मनोज हाडा : मैं सोचता हूँ कि खेलों के माध्यम से हम बच्चों के भीतर एक अच्छा नागरिक तैयार कर सकते हैं। सिर्फ़ मेडल को नज़रिए में रखकर हमें खेलों का माहौल नहीं बनाना है। बच्चा आगे किसी भी क्षेत्र में गया, यदि वहाँ अपना 100 प्रतिशत देगा तो वह बहुत अच्छा रहेगा। किसी अच्छे पद पर जाने के बाद भ्रष्ट हो जाए तो उसके कोई मायने नहीं। खेलों के माध्यम हम बच्चे से और उसके परिवार से पूरी तरह से भावनात्मक, सामाजिक व हर तरह के सम्बन्ध बना सकते हैं। अगर उसकी कुछ समस्याएँ हैं, तो वह हमसे साझा करेगा न कि सिर्फ़ 10 से 4 बजे के बीच का सम्बन्ध रखेगा।

मोहम्मद उमर : मैं ये सवाल इस सन्दर्भ में कह रहा था कि जब आप 2014 में लवाणा गाँव में नियुक्त हुए, तब से बहुत सारे बदलाव की आपने बात की है। आज स्थिति क्या है?

मनोज हाडा : मैं यह कहूँगा कि बच्चों के आत्मविश्वास में काफ़ी सकारात्मक परिवर्तन हुआ है। पहले वे एक क़िस्म की हीन भावना महसूस करते थे कि हम सरकारी स्कूल में पढ़ रहे हैं, शुरू में बड़े स्कूल के बच्चों के साथ खेलते हुए संकोच करते थे, अपने स्तर को भी नहीं पहचानते थे। लेकिन अब वे देखने लगे हैं कि हम पढ़ाई में भी अच्छे हैं और खेलों में भी अच्छे हैं। आज देश और समाज में जो भी घटना घट रही है, उन सबसे भी परिचित हैं। आज इस गाँव के बच्चे उच्च शिक्षा में जा रहे हैं, विज्ञान एवं गणित भी ले रहे हैं और बाहर पढ़ने भी जा रहे हैं। उनके नज़रिए में भी सकारात्मकता आई है। अपनी ज़रूरतें पूरी करने के साथ-साथ लोगों और समाज को कुछ दे सकने का इरादा है।

मोहम्मद उमर : आपने मुझे बताया था कि एक छात्र जो इसी स्कूल से पढ़ाई करके निकला है, उसने कोर्ट को बनाने में बहुत मेहनत की है। इसी तरह जब एक भील बालिका का नाम अख़बारों में छपा और जब उसकी माँ को लोगों ने बताया तो वह रोने-सी लगी कि मेरी बेटी का नाम अख़बारों में छपा है और वह खेलों में इतना अच्छा कर रही है।

मनोज हाडा : हाँ, बच्चे अपनी तरफ़ से जो योगदान कर सकते हैं, करते हैं। समुदाय के लोगों ने भी बहुत सहयोग किया है। जब कोई बच्चे आगे बढ़ते हैं तो सबसे ज़्यादा ख़ुशी माँ-बाप को होती है। एक अच्छे कारण से बच्चे का नाम अख़बार में आया तो ख़ुश होते हैं और एक दूसरे को देखकर बढ़ावा भी देते हैं। सहयोग और सुझाव देते हैं कि ऐसे और आयोजन होना चाहिए ताकि हमारे गाँव के बच्चे और आगे बढ़ें।

मोहम्मद उमर : जो बच्चे यहाँ से उत्तीर्ण होकर निकलते हैं वो भी आप शिक्षकों से सलाह मशविरा करते होंगे कि हम क्या दिशा चुनें या किस तरह के काम करें?

मनोज हाडा : निश्चित रूप से, यहाँ से पास होकर निकलने के बाद भी बच्चे हमसे सम्पर्क बनाकर रखते हैं। हम ऐसा नहीं मानते कि बच्चों के आठवीं से निकलने के बाद हमारा काम ख़त्म हो गया। हम उन्हें राय देते हैं, उनका मार्गदर्शन भी करते हैं। यानी अगर पढ़ाई में अच्छे अंक आए हैं तो आगे विज्ञान, गणित में जा सकते हो। हम बच्चों के लिए वर्कशॉप भी करवाते हैं। अभी हाल ही में पॉलिटेक्निक कॉलेज के प्रिंसिपल को बुलाया गया। जो बच्चे इस क्षेत्र में रुचि रखते हैं, उनका वहाँ दाख़िला भी करवाएँगे। जो सुविधाएँ हैं, छात्रवृत्ति आदि, वो भी दिलवाएँगे। दसवीं और बारहवीं के बच्चों को बोर्ड की परीक्षा से पहले तैयारी करने और परीक्षा के लिए ख़ुद को तैयार करने में मदद करते हैं कि किस तरह से परीक्षा में लिखोगे, किस तरह से मार्किंग होती है, किस तरह से प्रश्न-उत्तर करने चाहिए, आदि। बच्चों को मार्गदर्शन देना भी ज़रूरी होता है।

मोहम्मद उमर : क्या आप यह मानते हैं कि सरकार की तरफ़ से शिक्षा का जो बजट है, ख़ासतौर पर खेलों के लिए, पर्याप्त नहीं है। ये और बेहतर होना चाहिए। अभी सरकार के पास जितनी व्यवस्थाएँ हैं इन व्यवस्थाओं में कुछ बेहतर हो सकता है? क्या शिक्षा विभाग की या अन्य सरकारी योजनाओं के बारे में आप कुछ बताना चाहेंगे जिनका आप लाभ ले पाए? अगर आप चाहते हैं कि ऐसे ही कुछ प्रयास दूसरे स्कूल शुरू करें तो उनके लिए आपके क्या सुझाव होंगे? उनको कहाँ से शुरू करना चाहिए और कैसे आगे बढ़ना चाहिए?

मनोज हाडा : बजट की न तो सरकार के पास कोई कमी है, न शिक्षा विभाग के पास। कमी है तो सही दृष्टिकोण की। सरकारी स्कूलों को उनके हाल पर छोड़ रखा गया है। जो नीति निर्धारक हैं, नीति निर्माता हैं, उनमें खिलाड़ी नहीं हैं। जो लोग हैं उनको मालूम नहीं है कि वास्तविक समस्याएँ क्या हैं? जो नौकरशाह हैं, अपने हिसाब से नीति निर्धारित कर लेते हैं। दूसरा, कि विद्यालय में जो खेल है वो चिह्नित करके सारे स्कूलों को अपने-अपने हिसाब से अर्थात अलग-अलग विद्यालयों को अलग-अलग खेलों के संसाधन देकर प्रशिक्षण दिया जाए। अभी तक खेल नीति भी निर्धारित नहीं है। शारीरिक शिक्षक नियुक्त तो कर दिया, मगर न तो खेल नीति है, न ही उसकी कोई जवाबदेही है। खेल खिलाना है। क्या खिलाना है? किस तरह से खिलाना है? कैसे क्या होगा? इसकी कोई भी रूपरेखा नहीं है। सिर्फ़ मोटेतौर पर काग़ज़ों में कुछ लिखा हुआ है। सरकार को खेलों के लिए विद्यालय स्तर के अलावा ब्लॉक स्तर पर, हर गाँव के स्तर पर एक खेल सेंटर तैयार करना चाहिए। वहाँ पर सारी सुविधाएँ होनी चाहिए। वहाँ इन्डोर हॉल होना चाहिए, खेल मैदान और चारदीवारी होनी चाहिए, जिसमें सिर्फ़ विद्यालय के ही नहीं सारे गाँव के बच्चे खेलें। सरकार को अच्छी नीतियाँ बनानी चाहिए। शारीरिक शिक्षक

ख़ुद अपने स्तर पर भी बहुत कुछ कर सकते हैं। वे स्कूल स्तर पर बदलाव ला सकते हैं। हमें समस्याओं पर नहीं समाधान पर ध्यान देकर आगे बढ़ना चाहिए। हमें जो करना है उसपर मेहनत करनी पड़ेगी, तो ही हम सफल हो पाएँगे। लगन से लगे रहेंगे तो सारी समस्याएँ ख़त्म हो जाएँगी। हाँ, इसमें समय ज़रूर लगता है।

मोहम्मद उमर : और अन्त में खेल प्रेमियों, खेल शिक्षकों, स्कूल जाने वाले बच्चों, शिक्षकों, चाहे वो कोई विषय ही क्यों न पढ़ाते हों, के लिए ऐसी कोई ज़रूरी बात जो आप कहना चाहते हों। स्कूल और स्कूल में खेलों की बेहतरी के लिए कुछ और बात जो आप अभी तक नहीं कह पाए।

मनोज हाडा : पूरे देश में खेल के आधार पर नीति लागू हो। राज्य स्तर, राष्ट्रीय स्तर पर खेलों के साथ पढ़ाई हो। हम कह सकते हैं कि खेल एक पढ़ाई ही है, तो खेलों के माध्यम से बच्चों को कितना पढ़ाया जा सकता है। खेल और शिक्षा को कितना साथ जोड़ा जा सकता है? वो सबकुछ भी पाठ्यक्रम में होना चाहिए। खेलों के माध्यम से बच्चा एक अच्छा नागरिक तो बनेगा ही और अच्छी चीज़ सीखकर अपने जीवन में उपयोग करेगा। पाँच साल, सात साल की उम्र से ही उनकी पहचान कर शुरू करेंगे तो बाद में वह उस खेल में काफ़ी माहिर हो जाएगा। यह काम सिर्फ़ एक साल की तैयारी में नहीं हो सकता हमें पाँच-दस साल की योजनाएँ बनाकर यह सब काम करने पड़ेंगे, ईमानदारी के साथ। सरकार काम करेगी, नौकरशाह काम करेंगे और हमारे लोग काम करेंगे तो परिणाम अवश्य आएँगे।

मोहम्मद उमर : मनोज सर, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। हमने बहुत विस्तार से बातें कीं और आपने अपने विचार और अनुभव हमें बताए। धन्यवाद।

मनोज हाडा राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, लावाणा, राजसमन्द (राजस्थान) में शारीरिक शिक्षक के रूप में कार्यरत हैं। वे मुख्यतः फ़ुटबॉल कोच हैं तथा पूर्व में राष्ट्रीय फ़ुटबॉल टीम के खिलाड़ी रहे हैं। वर्तमान में राजस्थान फ़ुटबॉल संघ के सदस्य हैं। वे राजसमन्द ज़िले और राजस्थान में खेल तथा खिलाड़ियों को बढ़ावा देने की मुहिम में लगे हैं।
सम्पर्क : manojsahuhada@gmail.com

मोहम्मद उमर विगत दो दशकों से विज्ञान एवं गणित शिक्षण, लेखन एवं शिक्षक प्रशिक्षण के कार्य से जुड़े हुए हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन राजस्थान में गणित विषय के सन्दर्भ सदस्य के रूप में कार्यरत हैं।
सम्पर्क : umar.jckm@gmail.com

बाल साहित्य के बिना अधूरी है बच्चों की शिक्षा

पत्रिका की संवाद श्रृंखला की यह पाँचवीं परिचर्चा है। संवाद का विषय है 'बाल साहित्य के बिना अधूरी है बच्चों की शिक्षा।' इस संवाद में राजकीय प्राथमिक विद्यालय डिंडोरी, बाँसवाड़ा के शिक्षक विजय प्रकाश जैन हमारे साथ हैं। शिक्षक संगीता द्विवेदी, नवीन शासकीय शाला, गामखेड़ा, भोपाल से और बाल साहित्यकार व शिक्षक मनोहर चमोली, राजकीय इंटर कॉलेज पौढ़ी गढ़वाल, उत्तराखंड से हैं। इनके अलावा इसमें शामिल हैं एकलव्य फ़ाउण्डेशन से टुलटुल बिस्वास, जिन्हें बाल साहित्य चयन व प्रकाशन का लम्बा अनुभव है, राजेश उत्साही, जो बच्चों की पत्रिका *चकमक* के लम्बे समय तक सम्पादक रहे हैं और बच्चों के लिए लिखते रहते हैं। सं.

गुरबचन सिंह : बच्चों के सामान्य और स्कूली जीवन में बाल साहित्य की बहुत अहमियत है। बच्चों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व निखारने में, उनको गढ़ने में बाल साहित्य की अहम भूमिका होती है। यही वजह है कि देश के नीतिगत दस्तावेज़, पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या और क़ानूनी दस्तावेज़ बच्चों के लिए अच्छे बाल साहित्य की वकालत करते हैं और चाहते हैं कि बच्चों के स्कूली जीवन में और उनकी पढ़ाई-लिखाई के दौरान उन्हें बेहतरीन बाल साहित्य मिलना चाहिए। इसका एक दूसरा पहलू यह भी है कि बाल साहित्य को शिक्षा में एक तरह से अवरोध के तौर पर देखा जाता है। यह माना जाता है कि पढ़ाई तो पाठ्यपुस्तकों से ही होती है और बाल साहित्य स्वेच्छा से पढ़ने की चीज़ है, इसे एक तरह से अनुपयोगी ही माना जाता है। ये द्वन्द्व स्कूली दायरों में आमतौर पर दिखाई देता है। अभिभावकों को भी लगता है कि बच्चे पाठ्यपुस्तकें ही पढ़ें। लेकिन इधर कुछ वर्षों में, बाल साहित्य अवरोध है, यह मान्यता कुछ दरक रही है। इसे अब शिक्षा में एक अच्छे अवयव के तौर पर देखा जा रहा है। बच्चों व शिक्षकों के बीच बाल साहित्य को जगह मिल रही है। बच्चों की शिक्षा में अब यह गहन विचार विमर्श का विषय है।
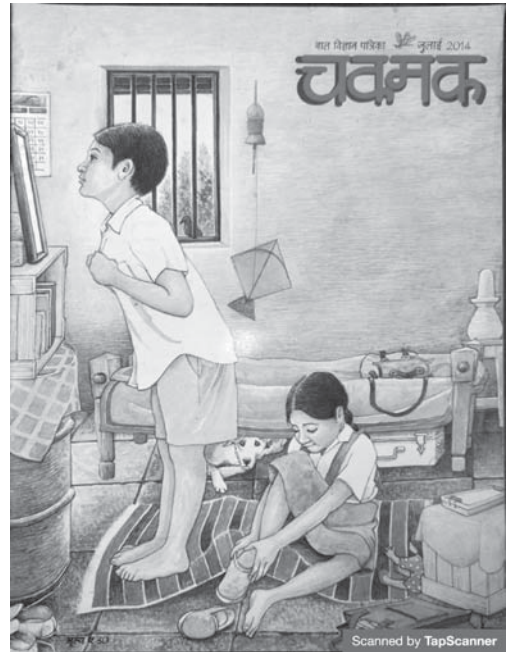
हमारे देश में बहुत-से प्रकाशक बाल साहित्य छापते हैं। हालाँकि इनमें से बहुत कम इसे संजीदगी और गहरी समझ के साथ छापते हैं। इसीलिए बाल साहित्य की अहमियत समझने वाले शिक्षक, माता-पिता और शिक्षक-प्रशिक्षक सोचते हैं कि किताबों को चुनकर बच्चों को देने के आधार क्या हों। ऐसी कोई सुविचारित व्यवस्था नहीं है जिससे अच्छा बाल साहित्य पहचाना जा सके। अच्छा बाल साहित्य कैसा हो, इसके स्कूली जीवन में क्या मायने व महत्त्व है, इसका अर्थवान उपयोग कैसे किया जा सकता है, पर संवाद आयोजन का यही कारण है।

मैं आप सभी का इस संवाद में स्वागत करता हूँ।

मनोहर चमोली से अनुरोध है कि वे अच्छा बाल साहित्य क्या है, उसे कैसा होना चाहिए और उसकी स्कूली जीवन में, कक्षाओं में क्या भूमिका है, पर अपनी बात रखें।

मनोहर चमोली : नमस्कार! मैं दो सवाल समझ पाया हूँ पहला, बाल साहित्य कैसा हो और दूसरा यह कि उसकी बच्चों की शिक्षा में क्या भूमिका हो। मुझे पढ़ाते हुए 15-16 साल हो गए हैं, कई बार हमारे अनुमान भी बच्चों के सामने ध्वस्त हो जाते हैं। हमें लगता है कि ये किताब रोचक है और आनन्द देगी लेकिन बच्चे उसमें आनन्द नहीं पाते। कभी ऐसा होता है कि हम बहुत बेमन से कुछ ले गए लेकिन उस किताब को बच्चे बहुत अच्छे-से पढ़ते हैं, उसपर चर्चा करते हैं, सवाल उठाते हैं। मुझे लगता है कि रोचकता और आनन्द देने वाली यह बात सबसे महत्त्वपूर्ण है। पर नैतिकता का दम्भ भरने वाले बहुत-से लोग शायद ऐसी किताब या कहानी को काम में नहीं लेंगे, जो सिर्फ़ रोचक हो या जिसे सिर्फ़ आनन्द के लिए पढ़ा जाए। एक और ज़रूरी बात मुझे बहुत देर में समझ आई कि हमारी किताबें सरल और सहज हों, जिससे बच्चे कठिनाई न महसूस करें। 20-25 सालों के अनुभव में मुझे ऐसा भी लगता है

कि जिन किताबों में वैज्ञानिक व तार्किक दृष्टि दिखती है, वो किताबें बच्चे पसन्द करते हैं। वे कहानियाँ बच्चों को ज़्यादा अच्छी लगती हैं और वे उन्हें आत्मसात कर लेते हैं। हम और आप भी जिन पाठ्यपुस्तकों की कहानियों को पढ़कर बड़े हुए हैं उनमें हम अपना जीवन देखते, ढूँढ़ते थे, कहीं अपने-आप को किसी पात्र में शामिल करते थे, तभी वो हमें पसन्द आती थी। लम्बे-लम्बे वाक्य वाली कहानियाँ या जिनमें ज़्यादा प्रतीक हैं, बहुत ज़्यादा भिन्न-भिन्न पात्र हैं उन्हें बच्चे पढ़ लेते हैं और चर्चा भी कर लेते हैं। लेकिन अकसर लगता है कि वे उसमें उलझ जाते हैं। मेरा अनुभव है कि रोमांचक घटनाओं वाले वर्णन, कहानियाँ भी बच्चों को बहुत पसन्द हैं। कहानी का बहुत लम्बा या छोटा होना मुझे कोई समस्या नहीं लगता। कोई कहानी अच्छी है और चार-पाँच पेज की भी है तो भी छोटे बच्चे उसको पढ़ लेते हैं और समझ भी लेते हैं। परसों ही एक साथी कह रहे थे कि बच्चों में तार्किकता नहीं होती, वे तर्क नहीं समझते। लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता, बच्चों को ऐसी कहानियों में भी मज़ा आता है। ग्रामीण परिवेश के बच्चे ऐसी कहानियाँ बहुत पसन्द करते हैं जो उनको मुश्किलों से उभरने की ताक़त देती हैं जैसे– महागिरी वाली कहानी। जिन कहानियों में लोककथा वाला बिम्ब हो वे भी बच्चों को बहुत पसन्द आती हैं। कभी-कभी हम अन्धविश्वास

वाली कहानियाँ भी ले जाते हैं मगर बच्चे बहुत तर्क करते हैं कि नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। इन अनुभवों से मुझे लगता है कि बाल साहित्य में वो होना चाहिए जो बच्चे पसन्द करते हैं। हमारी कक्षाओं में बच्चों के पास विषय की ही किताब होती हैं जो उनको पूरे साल ऊब और खीझ देती हैं। जैसे ही हम दूसरी किताब या कहानी की एक-दो कृति ले जाते हैं बच्चे उसपर लपकते हैं। ऐसा लगता है कि ये किताबें बच्चों को ऊब और कुण्ठाओं से मुक्त करती हैं। पाठ्यपुस्तक का ढाँचा, उसकी बाध्यताएँ अन्य
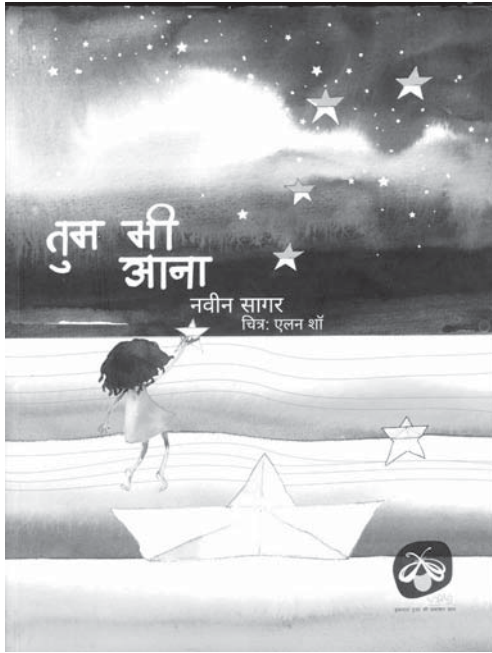
किताबों और कहानियों में नहीं होतीं। इसीलिए बच्चे उनमें ज़्यादा मज़ा लेकर रुचि से पढ़ते हैं। पाठ्यपुस्तकों में आमतौर पर चित्र भी कम ही होते हैं। एनसीईआरटी की प्राथमिक कक्षाओं की किताबों में तो चित्र हैं लेकिन कक्षा 6, 7, 8 की *बसंत* में उतने चित्र नहीं हैं। हम एकलव्य की *चकमक*, प्रथम, तूलिका, इकतारा की किताबें लें तो इनमें चित्र पाठ्यपुस्तक से अलग होते हैं और बच्चे इनके चित्रों को ज़्यादा पसन्द करते हैं। पाठ्यपुस्तक में भी 'भालू ने खेली फुटबॉल' जैसी कहानियाँ हैं लेकिन किताब की कहानी में और पाठ्यपुस्तक में चित्रों के हिसाब से बहुत अन्तर है। एक और छोटी-सी कहानी 'नीलू और पीलू' है, वो पाठ्यपुस्तक में अलग तरीक़े से है और किताब में अलग तरीक़े से।

इन किताबों के उपयोग के समय शुरू में परम्परागत चर्चा ही करते हैं। जैसे– अरे यार, आज तो बहुत ठण्डा हो रहा है, देखो कल पौढ़ी में बरफ़ पड़ी थी यहाँ नहीं पड़ रही है। अच्छा चलो, आज एक ऐसी कहानी सुनाते हैं जिसमें शेर के बच्चे को या छोटे-से बच्चे को बरफ़ का गोला समझ लेते हैं। हम यहाँ बरफ़ की एक बॉल बना लेते हैं। बच्चे एकदम से सतर्क हो जाते हैं, समझ जाते हैं। कहानी सुनाने से पहले जो चर्चा हम कर पाते हैं वह पाठ पढ़ते समय कम कर पाते हैं। दूसरा, इन किताबों से पढ़ने का स्वाद जागता है जो पाठ्यपुस्तकों से नहीं हो पाता। कहानी में मज़े की भावना ज़्यादा रहती है। शुद्ध उच्चारण, व्याकरण वाला मसला नहीं होता और बच्चे खुलकर बात करते हैं। वे सोचने, समझने, व्यवहार, पात्रों के साथ अपने-आप को जोड़ना, सभी बातें कर लेते हैं। पढ़ना और लिखने से पहले, सुनना और सुनाना, बोलना और बुलवाना, सवाल करना, समझकर बात करना, आसपास से कहानी जोड़ना, ये बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह सब पाठ्यपुस्तक की कहानियाँ इतने अच्छे तरीक़े से नहीं कर पातीं। पढ़ना-लिखना सीखना तो बाद की बात है। *चूहे को मिली पेंसिल* वाली कहानी में भी बच्चों को बड़ा मज़ा आता है। कक्षा 8, 9, 10 के बच्चे भी उसको बहुत अच्छे-से पढ़ते हैं। मुझे नहीं लगता कि चित्रात्मक कहानियों की किताबें केवल कक्षा 1, 2 के लिए हैं, बड़े बच्चे भी उनको देखकर बहुत ख़ुश होते हैं।

गुरबचन सिंह : संगीता इस विषय पर आप अपनी बात रखें।

संगीता : मुझे साहित्य का बहुत अनुभव नहीं है। जब मुझे भाषा सीखने और सिखाने का अवसर मिला तो महसूस हुआ कि बच्चों की

पाठ्यपुस्तकें शुरू से ही कुछ सिखाने की या ज्ञान की या आपने क्या सीखा है उसकी ओर इंगित करती हैं। इनसे बच्चे जुड़ नहीं पाते हैं और पढ़ने में उनकी रुचि जाग्रत नहीं हो पाती। बस यही रहता है कि मुझे याद करना है या मैं इतना पढ़ लूँगा तो पास हो जाऊँगा, इसी तरह के उनके विचार होते हैं। पढ़ना उनका शौक़ नहीं बन पाता है। वहीं दूसरी ओर, यदि बाल साहित्य उनके मन के अनुसार और रुचिकर हो, तो पढ़ना आदत भी बन जाती है और पढ़ने का शौक़ भी विकसित होता है। सामान्यतया पाठ्यपुस्तकों में शिक्षाप्रद कहानी या कविताएँ, प्रार्थना या धन्यवाद करने वाली रचनाएँ होती हैं जिन्हें बच्चा सिर्फ़ रट लेता है, उनका कोई मतलब उसे समझ में ही नहीं आता है। जो कविता, कहानी बच्चों को पढ़ने में मज़ा देती हैं उन्हें स्वतः ही वे पढ़ने लगते हैं, समझने भी लगते हैं और याद भी करने लगते हैं। बाल साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसमें बच्चे की भाषा व उनके परिचित शब्द हों और उनका परिचित परिवेश हो, तो शायद उनको समझने में अच्छा लगेगा और सरलता रहेगी। शुरुआत में बच्चों के लिए सिर्फ़ मनोरंजनपूर्ण कविता और कहानी होनी चाहिए जिन्हें वे बार-बार सुनें, पढ़ें, बोलें और इसके अवसर मिलें। इससे उनकी सोच,

उनके विचार और उनका रोमांच अलग ही होगा और उनको साहित्य में रुचि भी होगी। जैसे एक छोटी-सी कविता थी– 'छत पर गिरे धप धपा धप, रसगुल्ला खाया लप लपा लप, ढपली बजे ढप ढपा ढप, चक्की चले चप चपा चप'। यह ऐसी कविता है जिसमें कुछ ग़लत-सही नहीं। मतलब ऐसा नहीं कि आपने कोई लाइन ग़लत कर दी या आपने कुछ ग़लत बोल दिया। बच्चा अपने विचार भी उसमें जोड़ सकता था एवं कविता को आगे बढ़ा और गा सकता था। डर नहीं था कि कुछ ग़लत हो जाएगा, बस मज़ा था। कहानी और कविता ऐसी होनी चाहिए जिसमें बच्चे को मज़ा आए और उसके शब्दों और ध्वनियों से वो खेल सके, मज़ा ले सके और चाहे तो उसमें अपनी बात भी जोड़ सके। पहली से तीसरी के बच्चों की पढ़ने में रुचि जाग्रत करना और उन्हें स्कूल में लाना ही बहुत बड़ा लक्ष्य है। अच्छा बाल साहित्य वह है जो बच्चों को शाला में उपस्थित होने के लिए प्रेरित करे व मज़ा दे। अध्यापक और शिक्षक के बीच भयमुक्त वातावरण बन सके। बच्चों को ऐसी छोटी-छोटी मज़ेदार बाल कविता, कहानी और साहित्य मिलना चाहिए जो उनको समझ आए और आसपास के परिवेश से सम्बन्धित हो। यानी ऐसा हो जिसमें बच्चा स्वयं को सम्मिलित कर पाए। उसे लगे यह तो मेरी ही कहानी है, वह उसका मानसिक चित्रण कर सके, मज़ा ले सके और उससे जुड़ाव महसूस करे। जिज्ञासा और कौतूहल बढ़े, कि आगे क्या होगा, सीधे-सीधे कहानियाँ ख़त्म न हों। उनमें बच्चों के सोचने और उनके विचार देने के लिए भी जगह हो, उसमें द्वन्द्व हो। उदाहरण के लिए, एक छोटी-सी कहानी ले सकते हैं कि जैसे मोहन को प्यास लगी थी और उसे चलते-चलते कुआँ मिल गया तो मोहन बहुत ख़ुश हो गया और उसे बाल्टी भी मिल गई, मगर वहाँ रस्सी नहीं थी। ये कहानी यहाँ छोड़ सकते हैं कि अरे रस्सी नहीं थी तो मोहन ने प्यास कैसे बुझाई होगी, उसे पानी कैसे मिला होगा, उसने क्या किया होगा। यहाँ बच्चों को अपने विचार व्यक्त करने के लिए भी मौक़े मिलते हैं कि अगर आप प्यासे हो तो आप क्या

करोगे? इस तरह का साहित्य बच्चों के लिए हो कि वो अपने विचार भी व्यक्त कर पाएँ तो उनकी समझ भी बढ़ेगी और उनकी पढ़ने और लिखने में रुचि भी बनेगी और तब वे पढ़ने-लिखने की कोशिश भी करेंगे। कविताएँ छोटी हों, सरल शब्द हों और ज़रूरी नहीं है कि कविताएँ शुरू से ही बच्चों को कोई शिक्षा दें। ज़रूरी यह है कि ऐसी ध्वनियाँ हों जो उनमें रोमांच पैदा कर दें और बच्चे उनके साथ खेल सकें। मैंने अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के साथ यही किया तो बच्चे पढ़ने के साथ-साथ लिखना भी सीखने लगे। पहले मैं पारम्परिक तरीक़े से पढ़ाती थी। जैसे, पहले वर्णमाला, फिर शब्द और अन्त में वाक्य सिखाना। बच्चे सीख भी नहीं पा रहे थे। विद्यालय में नित नई तकनीकें आती रहती थीं, कभी ABL, कभी दक्षता संवर्धन आदि। सभी का उद्देश्य बच्चों को सिखाने पढ़ाने ही था मगर पिछले वर्षों से मेरी पढ़ाने की शैली में बहुत परिवर्तन हुए।

मैंने बच्चों की भाषा सीखी। बच्चा घर से बहुत कुछ लेकर आता है उसी को आगे बढ़ाना है। मैंने बच्चों से ही पूछकर लिखने की कोशिश की। छात्रों को बोलने और सुनने के भरपूर अवसर दिए और उन्हें अपनी बात बोलने के लिए कहा। बच्चों से छोटी-छोटी कविता और कहानी सुनीं व उन्हीं के साथ बनाईं भी। झोला पुस्तकालय, *बरखा* सीरीज़ की पुस्तकें, ABL कार्ड और कुछ *बाल भास्कर* जैसा ही बच्चों का साहित्य मुझे मिला जिसे लेकर मैंने पहली और दूसरी के साथ काम किया। शुरुआत में मुझे अन्तर समझ में नहीं आया परन्तु तीसरी कक्षा तक आते-आते बच्चे स्वयं पढ़ना-लिखना सीख गए। लिखने में ग़लतियाँ होना स्वाभाविक है। बच्चे पूरा शुद्ध नहीं लिख पाते थे लेकिन वाक्य बनाना सीख गए थे। चौथी और पाँचवीं तक बच्चे ख़ुद ही काफ़ी पढ़ने लगे थे। हिन्दी और पर्यावरण की किताब शौक़ से पढ़ लेते थे और ख़ुद ही प्रश्न-उत्तर ढूँढ़ लेते थे। वे दिए गए शब्दों से कहानी बनाने लगे, छोटी कविताएँ, पत्र लिखने लगे और अपनी भाषा का उपयोग करने लगे। तुकान्त (rhyming) शब्दों का उपयोग भी उनको आ गया, तब मुझे समझ में आया कि बच्चों का साहित्य ऐसा हो जिसमें उनके मन की बात और उनकी सोच व उनके शब्द हों, तो वे सरलता से सीख जाते हैं और आत्मसात कर लेते हैं। अकसर पुस्तकों की भाषा बच्चों को समझ ही नहीं आती, साहित्य ऐसा हो जिसमें सरल भाषा हो जो बच्चों को आसानी से समझ आए। अन्त में, यही कहना चाहूँगी कि लिया गया या चुना गया बाल साहित्य ऐसा हो जिसे बच्चा आनन्द से पढ़े, कल्पना कर सके। यथार्थ की जानकारी हो लेकिन उसमें भी थोड़ा परिवर्तन कर सके, बच्चे कुछ सृजन कर सकें। सृजनात्मक परिवर्तन कर कुछ रोमांच पैदा हो तो ऐसा साहित्य बच्चों के सीखने में बहुत काम आएगा।
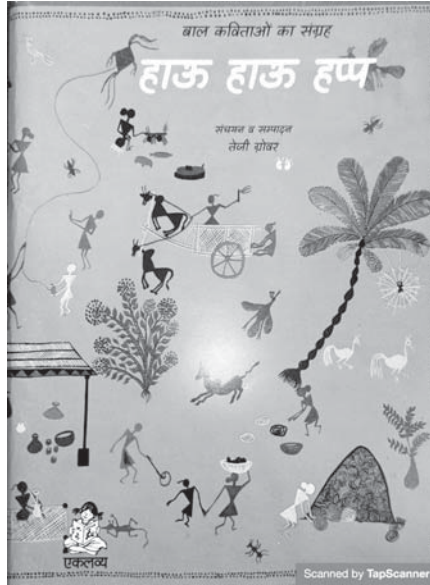
गुरबचन सिंह : राजेश उत्साही से आग्रह है वे अपनी बात रखें।

राजेश उत्साही : मेरा बच्चों के साथ काम करने का शिक्षकीय अनुभव नहीं है। बच्चों के लिए *चकमक* और *गुल्लक* पत्रिकाएँ सम्पादित ज़रूर की हैं। कुछ दिनों पहले लिखे अपने लेख से कुछ चीज़ें रखना चाहता हूँ। साहित्य समाज का एक दर्पण है। जैसा समाज में होता है, वही साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। सही मायने में साहित्य का रिश्ता हमारे जीवन से है।

हमारे आसपास जो घटता है उसे देखकर, उसे भोगकर हम दुखी होते हैं, ख़ुश होते हैं, उदास होते हैं, ग़ुस्सा होते हैं, हँसते हैं, खिलखिलाते हैं, रोते हैं, चीखते हैं। जब कभी इन सबका आख्यान कहीं लिखा हुआ पढ़ते हैं, हमें वैसा ही महसूस होता है जैसा हम देखते या भोगते समय महसूस करते हैं। इसमें कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, किसी भी विधा की चीज़ हो सकती है। पढ़ते हुए हम असीम आनन्द महसूस करते हैं या उसमें डूब जाते हैं। दरअसल उसकी विधा हमें पाठक के रूप में वह स्वतंत्रता प्रदान करती है जो हमें मनुष्य होने के नाते हासिल होनी चाहिए।

हमारे जीवन में जिन बातों की कमी होती है या जिसकी स्वतंत्रता नहीं होती है वो जब साहित्य में दिखाई देती है तो हम उनका आनन्द उठाते हैं। साहित्य वास्तव में हमें उन ज़ंजीरों से मुक्त करता है जिनमें हम अमूमन जकड़े होते हैं। मतलब व्यावहारिक ज़िन्दगी में, सचमुच की ज़िन्दगी में शायद हमारे पास उनको करने के लिए मौक़े नहीं होते हैं। कृष्ण कुमारजी इसको एक अलग तरीक़े से कहते हैं कि साहित्य एक अपेक्षित अर्थ जानने का ज़रिया है। उसके ज़रिए कुछ रूपाकारों को, कुछ रूपकों को प्रसारित करने का माध्यम है। मेरी मान्यता है कि बाल साहित्य जैसा कुछ नहीं होता है। हो सकता है कि सब लोग इससे सहमत नहीं हों। इसपर विचार करना चाहिए, इसलिए मुझे जब भी मौक़ा मिलता है मैं ये बात ज़रूर कहता हूँ। गुलज़ार साहब ने इसके सन्दर्भ में बहुत सुन्दर बात कही है जो मुझे हमेशा याद रहती है। इसे हम बाल साहित्य की एक कसौटी के रूप में देख सकते हैं। उन्होंने कहा कि अच्छा बाल साहित्य वह है जिसका आनन्द बच्चे से बड़े तक ले सकें। यह बहुत गहरी बात है। अमूमन यह होता है कि हम बच्चों के साहित्य को बिलकुल काटकर रखते हैं कि ये बच्चों के लिए है। जब इस तरह की चीज़ होती है तो उसे लिखते समय भी समस्याएँ आती हैं और चयन के समय भी। उसी तरह के बिन्दु गढ़कर आते हैं जो उसको खाँचे में फ़िट करें। दिक़्क़त इन प्रचलित अवधारणाओं से शुरू हो जाती है कि बाल साहित्य कुछ अलग होता है। ज्यों-ज्यों हम बड़े होते हैं जीवन को देखने का हमारा स्वतंत्र बाल सुलभ नज़रिया ग़ायब होने लगता है। हम जीवन को स्वतंत्रता से देखने की बजाय प्रचलित मान्यताओं, नियमों और प्रतिबन्धों के साथ देखने लगते हैं। तथाकथित नैतिकता और उसके आदर्श हमारे सामने आ खड़े होते हैं। ऐसे में बच्चों के लिए रचना को रचते या चुनते समय, तमाम बन्दिशें और शर्तें हमारे सामने आ जाती हैं। जैसे रचना किस उम्र के बच्चे के लिए है, उसकी भाषा क्या होगी, परिवेश क्या होगा, क्या जो हम कहने जा रहे हैं वो बच्चा समझ पाएगा या उसको समझने के लिए ज़रूरी अवधारणाएँ बच्चे में विकसित हो गई हैं। इस तरह की सारी बन्दिशें हमें उन तमाम चीज़ों से रोकती हैं जो बच्चों के बीच ले जाने से उनका फ़ायदा होगा या वो उसमें आनन्द उठाएँगे। जब लोग बच्चों के लिए कहकर लिख रहे होते हैं तो कहा जाता है कि आप अपने अन्दर के बच्चे को याद करके लिखें, यहाँ पर भी एक मुश्किल हो जाती है। उस साहित्य में अपने अतीत को ध्यान में रखकर लिखा होता है, उसमें विरले ही ऐसे होंगे जो
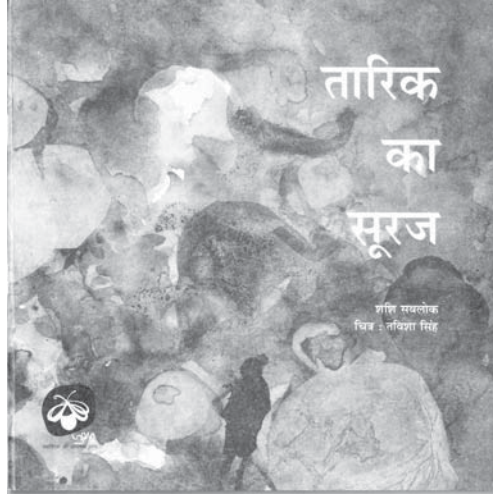
अपने आसपास के समकालीन बच्चे को देखकर, सुनकर, समझकर उसके लिए लिख रहे हों। इस बात को ऐसे कहूँ कि प्रेमचंदजी ने 'ईदगाह' कहानी बाल साहित्य कहकर नहीं लिखी थी या 'पंच परमेश्वर' को बाल साहित्य की श्रेणी में तो नहीं रखते। लेकिन वो बच्चों और बड़ों को समान रूप से आकर्षित या प्रभावित करती हैं। इसी तरह चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी की कहानी 'उसने कहा था' हमने 10वीं या 11वीं में पढ़ी। हम उसको केवल किशोर साहित्य या एक युवा साहित्य कहकर नहीं छोड़ सकते हैं, वो सभी के लिए लिखी गई थी।

अच्छा बाल साहित्य कैसा हो, इसके निर्धारण में बाज़ार की भी भूमिका है। बाज़ार से काफ़ी नुक़सान पहुँचा है। यहाँ पाठक को ध्यान में रखकर लिखने की बात होती है या एक तरह की चीज़ों को सामने लाने की बात होती है। अब बाल साहित्य या स्कूलों में भी जो आ रहा है उस सबके स्टेकहोल्डर मुख्यतः तीन लोग हैं– लेखक, पाठक, मतलब उपयोग करने वाला बच्चा और वो लोग जो उस तक बाल साहित्य पहुँचाते हैं यानी शिक्षक और अभिभावक। बच्चे हमारा लक्ष्य हैं लेकिन उस बच्चे के बारे में हम कितना जानते हैं? शिक्षक इस बात को जानते होंगे मगर व्यापक सन्दर्भ में ये सवाल है कि हम बच्चों के बारे में कितना जानते हैं। पाठक बनने के लिए बच्चों को सबसे पहली ज़रूरत होती है कि वो साक्षर हों। *चकमक* में जब काम कर रहे थे तब अकसर ये पूछा जाता था कि *चकमक* किस उम्र के बच्चों के लिए है या इसे किस उम्र के बच्चों को दिया जा सकता है। हमारा कहना और समझ यही थी कि जो पढ़ सकते हैं, जिनको पढ़कर समझना आता है, *चकमक* उनके लिए है। उसकी कोई दूसरी सीमा नहीं है। दूसरी बात है कि पिछले कुछ दिनों में पाठ्यपुस्तकों को जानकारी से मुक्त रखने की कोशिश और बच्चों को पाठ्यपुस्तक के आतंक से मुक्त रखने की कोशिश की गई है। इसके चलते नई तरह की रचनाएँ, नई तरह की कविताएँ और कहानियाँ पाठ्यपुस्तकों में आई भी हैं। यहाँ भी इस बात को ठीक से समझने की ज़रूरत है क्योंकि वहाँ हमेशा ये चिन्ता होती है कि पाठ्यपुस्तक ही बच्चों को पढ़ाना है या कुछ और भी पढ़ाना है।

अगर साहित्य में बच्चों की रुचि जाग्रत होनी है तो उन्हें पाठ्यपुस्तक से भिन्न किताबें देनी ही होंगी। रोज़मर्रा की कक्षा में आप इनका कितना इस्तेमाल कर पाएँगे, शिक्षक के नाते इसमें समय सीमा भी होगी। कृष्ण कुमारजी का एक कथन बताना चाहूँगा। वे कहते हैं कि, 'हम सब लोग बाल साहित्य के शौक़ीन हैं, सोचते रहते हैं कि यह क्षेत्र क्यों लगातार दिक़्क़त पैदा करता है। मामला सिर्फ़ बाल साहित्य का नहीं है, कई और चीज़ों का भी है। कलाओं का मामला है। स्कूल में कलाओं की भी व्याप्ति नहीं हो सकी है। पुस्तकालय की व्यापित नहीं हो सकी है। हम बनाते ज़रूर हैं, इसमें पैसा भी ख़र्च होता है, लेकिन वह चीज़ दिखती नहीं है।'

('शिक्षा और बाल-साहित्य' : कृष्ण कुमार *शैक्षणिक सन्दर्भ* अंक 80)

मूलत: यह कृष्ण कुमारजी ने *चकमक* के 300वें अंक के विमोचन की पूर्व संध्या पर दिए गए अपने व्याख्यान में कहा था।

हालाँकि पिछले कुछ समय से इन दिशाओं में काफ़ी सारा काम हुआ है लेकिन वह दिखता नहीं

है। बाल साहित्य को सबसे ज़्यादा नुक़सान उन लेखकों से होता है या होता रहा है जो बच्चों के लिए लिखने को बाएँ हाथ का खेल समझते हैं। जिसने इसको बाएँ हाथ का खेल नहीं समझा है वो ही इसमें बेहतर योगदान कर रहे हैं।

गुरबचन सिंह : विजय, अब आप अपनी बात रखें।

विजय : मैं पिछले 6-7 सालों से पहली से पाँचवीं कक्षा को पढ़ा रहा हूँ। जब से लॉकडाउन शुरू हुआ है, तब से मैंने बाल साहित्य पर बच्चों के साथ काम करके बहुत निकटता से उसे देखा है। लॉकडाउन में विद्यालय बन्द हो गए थे तब बच्चे पढ़ाई-लिखाई से कैसे जुड़े रहें इसपर सोचा। यह विचार आया कि स्कूल में जो अलग पुस्तकें हैं उनको घर-घर जाकर बच्चों तक पहुँचाएँ। सबसे पहले एकलव्य से लगभग 150 किताबें मँगवाईं। पहले घर-घर जाकर बच्चों को किताबें दीं, फिर हमने गाँव में कुछ समूह बनाकर, पुस्तकें लेकर बच्चों के साथ काम करना शुरू किया। कुछ ही समय में पाया कि जो बच्चे अटक-अटक कर पढ़ रहे थे, पढ़ना पूरी तरह से नहीं जानते थे वो प्रभावी रूप से पढ़ने लगे, चीज़ों को समझने लगे। मैं बता दूँ कि मेरा स्कूल बाँसवाड़ा से लगभग 25 किलोमीटर दूर है। ऐसा गाँव जहाँ पढ़ाई की किसी भी प्रकार की सामग्री नहीं है, मोबाइल नहीं, टीवी नहीं, किसी भी तरह के सामान नहीं। तीन-चार साल पहले जब शुरुआत हुई तब भी हम बाल साहित्य का प्रयोग कर रहे थे, लेकिन पाठ्यक्रम की वजह से इसका बहुत ज़्यादा उपयोग नहीं कर पाते थे। मेरा मानना है कि 'इस कहानी से क्या शिक्षा मिलती है, क्या सीख मिलती है', जैसी कहानियाँ बच्चों के लिए उबाऊ होती हैं। हमने ऐसी कहानियों पर धीरे-धीरे काम बन्द कर किया।

बच्चे नए-नए शब्दों को जानने और सीखने के लिए बहुत उत्सुक होते हैं। कक्षा के बहुत-से छोटे उदाहरण हैं, जैसे जब हम *चूहे को मिली पेंसिल* कहानी पर बात कर रहे थे तो पनीर शब्द बच्चों के लिए अपरिचित था। उस समय मेरे पास लैपटॉप था, मैंने पनीर बनाने की पूरी प्रक्रिया बच्चों को बताई। दूसरी बार शेर और चूहे की बात थी। हमने पूछा यदि गाँव में शेर आ जाए तो क्या करोगे (हमारे विद्यालय में अकसर पैंथर आ जाते हैं।) बच्चों ने कहा कि शेर आएगा तो हम चोर आया, चोर आया चिल्लाएँगे। हमने पूछा, चोर आया, चोर आया क्यों चिल्लाएँगे तो उन्होंने कहा कि अगर हम शेर आया शेर आया चिल्लाएँगे तो कोई भी घरों से बाहर नहीं आएँगे। लेकिन चोर आया चिल्लाने पर सब बाहर आ जाएँगे। इस तरह बच्चे अपने परिवेश की जानकारियाँ समझते हैं।

जो बच्चे पढ़ना नहीं जानते थे वे भी 2-3 समूह में बैठकर चित्रों पर अपनी भाषा में बहुत बातचीत करते थे। यानी पढ़ना शुरू करने से पहले भी बाल साहित्य की पुस्तकें बहुत काम आती हैं। चित्रों वाली पुस्तकें, अगर उसमें परिवेश के जानवरों जैसे– गाय, घोड़े, हाथी, झोपड़ी, चिड़िया आदि के चित्र हों तो बच्चे उनपर आपस में बहुत बातें करते हैं। ये बातचीत उनकी भाषा से बड़ी कक्षाओं में जाते-जाते धीरे-धीरे स्कूल की भाषा की ओर जाती है।
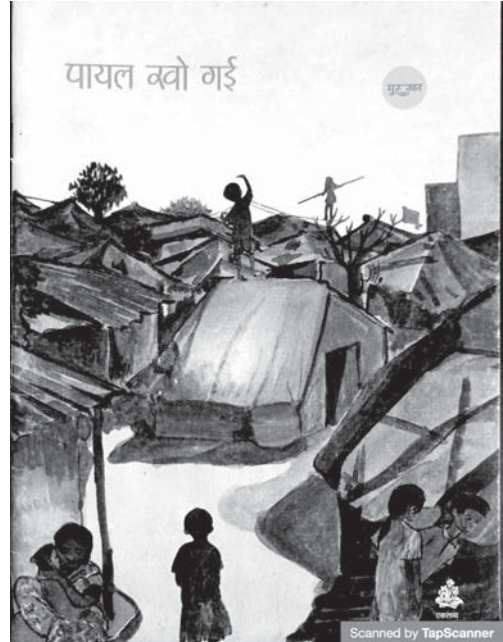
कहानियाँ निष्कर्ष निकालने और विश्लेषण वाली हों, क्योंकि बच्चे कहानियों का विश्लेषण करते हैं, अपनी समस्याओं का कैसे समाधान करें इसपर बात करते हैं। 'बिल्ली के तीन बच्चे' कहानी को बच्चों ने बहुत ज़्यादा पसन्द किया है। कई बच्चे इसकी ई-बुक को कई बार पढ़ चुके हैं। जब भी पढ़ते हैं बहुत मज़ा लेते हैं। *चकमक, प्लूटो, साइकिल* जैसी किताबों का बच्चे बहुत इन्तज़ार करते हैं। इन किताबों में दी गई सामग्री बच्चों के लिए बहुत प्रभावी होती है। बच्चे इसे मन से पढ़ते हैं, और बातचीत भी करते हैं। पढ़ना सीखने से पहले और पढ़ना सीखने के दौरान, दोनों जगह बाल साहित्य बहुत काम आता है। पिछले 5-7 महीने में हमारे
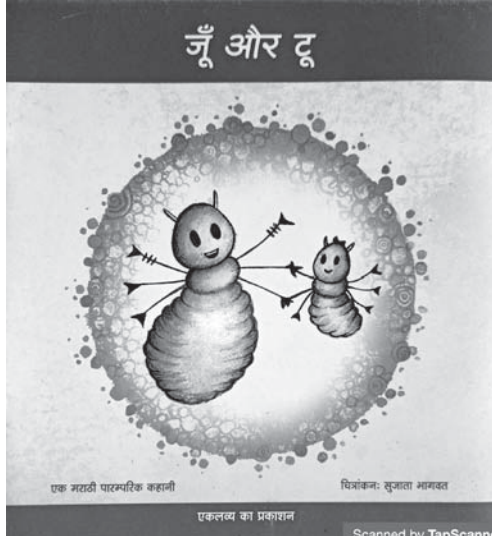
यही अनुभव रहे हैं। हम बच्चों के साथ दो घण्टा काम करने के बाद आ जाते हैं लेकिन उसके बाद भी बच्चे किताबों को पढ़ते रहते हैं। एक बार, बच्चों को किताबें बाँटने के बाद दूसरे दिन जब मैं किताब लेने घर गया तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। असाक्षर पिताजी ने कहा कि मेरा हरीश रात को हमें कहानी सुनाकर सोता है। ऐसे भी बदलाव हुए हैं। यदि हमारे पास ऐसा बाल साहित्य है जो बच्चों को संज्ञानात्मक रूप से सक्रिय कर सके, बच्चे को सोचने पर मजबूर कर सके, बच्चों की जमी-जमाई धारणाओं को चुनौती दे सके, तो बच्चे बेहतर तरीक़े से पढ़ते हैं। एकलव्य से आई किताबों से पहले भी हमारे पास किताबें थीं, हम बच्चों को देते थे लेकिन बच्चों को उनमें ज़्यादा रुचि नहीं थी। उसमें हमारे आदर्श, हमारे महापुरुष, महापुरुषों की जीवनियाँ जैसी चीज़ें थीं। ये मोटी-मोटी भी थीं और उनकी भाषा भी कठिन थी। लेकिन *जूँ और टू, बिल्ली के तीन बच्चे, नन्हा बाघा, चूहे को मिली पेंसिल, चकमक, प्लूटो* और *साइकिल* आदि बच्चे बहुत अच्छे-से पढ़ते हैं।

यह काम जब शुरू किया मेरे साथी शिक्षकों ने मुझे रोका और कहा कि बच्चे किताबें फाड़ देंगे, खो देंगे, मुझे भी डर लगा। पर मुझे आश्चर्य तब हुआ जब एक किताब मैंने एक बच्ची को दी। दूसरे दिन बच्ची ने कहा, सर किताब फटी हुई थी पर मैंने उसे चिपका दिया। बच्चों के साथ किताबों को लेकर काम करते हैं तो बच्चे बहुत ही बेहतर तरीक़े से किताबों को रखते हैं। पिछले 7 महीनों में 200 किताबों में से एक भी नहीं फटी है। बच्चों को किताबें उलटने-पलटने और चित्रों पर बातचीत करने के मौक़े मिल रहे हैं। यदि बच्चों को कोई कहानी सुनाते हैं, तो वे उसकी माँग करते हैं, पूछते हैं कहानी कौन-सी किताब से है। इन प्रतिक्रियाओं से महसूस होता है कि जिसे हम अर्थपूर्ण व प्रभावपूर्ण पढ़ना कहते हैं वह मैं इन 7 महीनों में काफ़ी बेहतर रूप से करवा पाया हूँ। इसके लिए किसी कक्षा में बैठकर बच्चों को नहीं पढ़ा रहा, केवल घर-घर जाकर बच्चों को किताबें बाँट रहा हूँ या 10-12 बच्चों के समूह में जाकर आधा या एक घण्टा बच्चों से बात करता हूँ। मुझे लगा कि जिन बच्चों के साथ काम हो, उनके लिए चुना बाल साहित्य उनके परिवेश का हो, मनोरंजक हो और बच्चों को कल्पना की दुनिया में सैर कराए। ज़्यादा उपयोगी होगा जब वह उनके जीवन से जुड़े अनुभवों से हो, उनकी भाषा के शब्दों से हो। इसके लिए हमने गाँव में बच्चों से कहानियाँ सुनीं, कविताएँ सुनीं और लिखीं। छोटे-छोटे पठन कार्ड बनाकर काम किया। *बिल्ली के तीन बच्चे* कहानी को यहाँ की भाषा,

वागड़ी में बदलकर काम किया। बच्चे उसको उत्साह के साथ पढ़ने लगे।

गुरबचन सिंह : शुक्रिया। आपने बाल साहित्य में स्थानीय भाषा के सवाल को उठाया है। एकलव्य प्रकाशन ने बुन्देली और कई भाषाओं में किताबों को लाने की अच्छी पहल की है। मैं टुलटुलजी से अपनी बात रखने को कहूँगा।

टुलटुल बिस्वास : शुक्रिया। अभी की बातचीत में बाल साहित्य को लेकर लगभग सारा दृश्य सामने आ गया। एकलव्य की दृष्टि से, किताबों को बनाने की दृष्टि से, उनको प्रकाशित करने की दृष्टि से सोच विचार कर देखूँ तो लगता है कि हम साहित्य को, कहानियों को, जो पाण्डुलिपियाँ हमारे पास आती हैं, उन्हें अलग-अलग चश्मों से देखने की कोशिश करते हैं। एक प्रकाशक का चश्मा है, क्या चीज़ें अभी मौजूद हैं, बच्चों के हाथ में हैं। क्या चीज़ें मौजूद नहीं हैं, किस तरह की चीज़ें बिलकुल भी दिखाई नहीं देतीं। एक चश्मा सम्पादक का है। वह देखता है कि चीज़ में क्या ताक़त है और पहचानने की कोशिश करता है उसमें क्या बेहतर हो सकता है। एक चश्मा ख़ुद का यानी पाठक की दृष्टि का होता है। इन सारे चश्मों के बीच मूलतः मैं एक पाठक हूँ। बचपन से पढ़ने का शौक़ था। साहित्य और बच्चों के लिए तैयार होने वाली किताबें देखते ही उनपर हाथ जाता है और पढ़ना शुरू हो जाता है। अतः एक पाठक के रूप में क्या चीज़ आपको आकर्षित करती है, आपको बाँधे रखती है यह बहुत मायने रखता है। एक बात जो यहाँ भी कही गई वो मुझे और टीम के लोगों को भी महत्त्वपूर्ण लगती है। जब बच्चे कोई किताब उठाते हैं और पढ़ते हैं तो वे किताब में अपना अक्स ढूँढ़ते हैं, उसके पात्रों, घटनाओं, ज़िन्दगी की परिस्थितियों, चुनौतियों, संघर्षों, उपलब्धियों इन सभी में अपने-आप को ढूँढ़ते हैं। इसमें ज़रूरी नहीं कि उनके सन्दर्भ की ही कहानी हो तभी यह उसमें पाएँ। जो बहुत परिचित हो वह भी अपना लग सकता है और कुछ पराया एवं अपरिचित हो वह भी। अगर उसमें कोई कारक ऐसे हैं जिसमें कोई ऐसा पात्र है चाहे दूसरे देश या दुनिया का ही हो लेकिन उसकी परिस्थिति आपसे मिलती है, उसका जीवन संघर्ष आपसे जुड़ता है तो वो भी अपना लग सकता है। इतने सालों से जो किताबें हम तैयार कर रहे हैं, पढ़ रहे हैं उसमें भी देखते हैं कि यह ज़रूरी नहीं कि परिचित सन्दर्भ से ही बात आए। परिचित सन्दर्भ से मदद मिलती है लेकिन अपरिचित सन्दर्भ में भी जुड़ाव बन पाते हैं। उदाहरण के लिए, बहुत सालों पहले एकलव्य ने एक किताब *प्यारा कुनबा* प्रकाशित की। यह दो दोस्तों की कहानी है। ये दोस्त एक इन्क्यूबेटर बनाने की कोशिश कर रहे हैं। किताब रूसी है, बिलकुल अलग सन्दर्भ है, अलग तरह की जगह है, बच्चों का जीवन अलग तरह का है। पर इसमें बच्चों को अपनी छानबीन करने की

जगह मिलती है। इस किताब में बच्चों का जुनून, कि हमें ऐसी एक चीज़ बनाना है, अण्डे से चूज़े निकालना है, हम भी महसूस करते हैं। पाठक भी कुछ इस तरह का करना चाहते हैं और इसलिए बहुत सारे बाल पाठकों को किताब बहुत पसन्द आती है। साहित्य में यह भी है कि एक बार जब कोई रचना बन जाती है, रचनाकार उसे आकार दे देता है, उसके बाद जो उसको पढ़ेंगे उसका स्वाद, उसकी ख़ुशबू, उसकी आवाज़ को महसूस करेंगे, उनकी संवेदनाओं को महसूस करेंगे वह उनकी अपनी हो जाती है। तमाम क़िस्म के पाठक हैं, बच्चे हैं और अलग-अलग सन्दर्भ के बच्चे हैं। किसी कहानी, किसी रचना

या किसी कविता में ये बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वो किन चीज़ों को अपना बना पाते हैं। किताबें

तैयार करते हुए इसपर मशक़्क़त करने की कोशिश करते हैं कि विविध तरह के बचपन हैं। भोपाल शहर में ही अनेकों बचपन हैं। कोई एक किताब ऐसी हो नहीं सकती जो हर तरह के बचपन से बातचीत कर सके। किताबें किस बचपन से बातचीत करती हैं, किस बचपन को आमतौर पर किताबों में प्रधानता मिलती है और कौन-से बचपन जगह नहीं पाते हैं ये महत्त्वपूर्ण सवाल है। पर इसमें ये ख़तरा है कि अगर एक किताब से यह अपेक्षा करें कि ये तमाम बच्चों से बातचीत करे, तमाम तरह के बचपन को जगह देने की कोशिश करे तो स्थिति बॉलीवुड जैसी हो जाएगी। एक समय पर बॉलीवुड की कई फ़िल्में सबको ख़ुश करने के उद्देश्य से बनाई जाती थीं, तब वे सबकी होकर भी दरअसल किसी की नहीं थीं। किताबें बनाने में भी यह सरोकार हमेशा बना रहता है कि सबकी छवियों, सबकी ज़रूरतों, सबकी आकांक्षाओं को शामिल कर लेने का ख़तरा न मोल लिया जाए। रचना में, कहानी में, कविता में इन सारी चीज़ों में कौन-से ऐसे मुक़ाम हैं, कौन-से ऐसे मोड़ हैं, कौन-से ऐसे twist हैं जहाँ पर आप पाठक के रूप में ठिठकते हैं, जहाँ आप रुककर सोच में पड़ जाते हैं या रुककर थोड़ी देर खो जाते हैं या जहाँ आप अपनी कहानी बुनने लगते हैं; चाहे बच्चे हों या बड़े, उन सबके लिए इस तरह के ठीये किसी भी रचना, कहानी या कविता में होना बहुत ज़रूरी हैं। ये ठीये कथा में भी सम्भव हैं और बच्चों की चित्रात्मक किताबों में भी सम्भव हैं।

ये ठीये दो काम करते हैं। यदि वे आपको बहुत अपने लगते हैं तो वो आपको अपना अक्स वापस दे रहे होते हैं। कोई घटना या कोई अनुभव ऐसे हो सकते हैं जो आपको अपने-से लगें और आप मनन करने लगें। दूसरा हो सकता है कि बिलकुल ही नई बात हो, अनजानी-सी बात हो जो आपने सोची नहीं थी, अपेक्षा नहीं थी कि आगे ये होने वाली है। ये ठीये एक launchpad का काम करते हैं। कल्पना की छलाँग लगाने के लिए। दिमाग़ की संरचना में जो सोच पाते हैं उससे आगे ले जाने का platform देते हैं। राजेश की यह बात कि ये बाल साहित्य या बड़ों के साहित्य के विभाजन की बात नहीं है, बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। कोई भी साहित्य अगर आपको बार-बार उस तक लौट जाने के लिए बुलाता है तो वो नवाजने लायक़ साहित्य है। ऐसी चीज़ें जो वापस आपको उसपर लौट जाने पर मजबूर करती हैं और हर बार जब आप उसपर लौटकर जाते हैं तो आपको कुछ नए अर्थ मिलते हैं, कुछ नए बिन्दु मिलते हैं, कुछ विचार करने के लिए या लाइन के बीच अर्थ निकालने में या चित्रों के shadows में आपको कुछ नई चीज़ें मिलती हैं और interpretation और
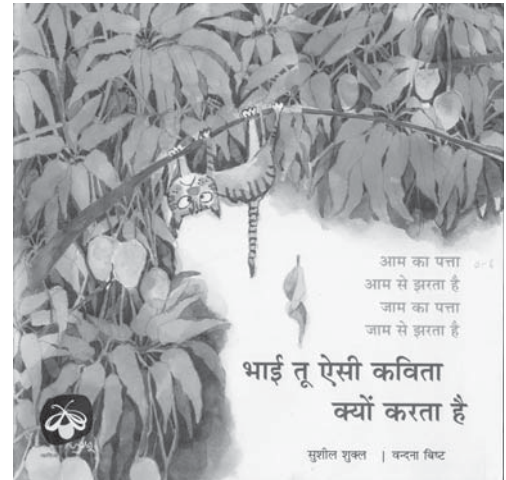
विश्लेषण के मौक़े देती हैं। मैं हमेशा ही एक किताब की बात करती हूँ *छुटकी उल्ली*। इस किताब को जब प्रकाशित कर रहे थे तब वो मेरे लिए बहुत अलग मायने रखती थी और आज जब पढ़ती हूँ तो वो कई और परतों में नए मायने देती है। पहले मैं एक बहुत मज़ेदार कहानी के रूप में उसको पसन्द करती थी और अब मैं एक माँ और बेटी उल्ली के संवाद की दृष्टि से देखती हूँ और उसके बिलकुल ही अलग अर्थ नज़र आते हैं। ये बात शायद बच्चों से लेकर बड़ों तक को आकर्षित करे। इसको ऐसे भी कह सकते हैं कि कोई ऐसी रचना जो आपको मजबूर करती है कि आप उसके बारे में जब भी पढ़ें नई-नई तरह से सोचें। वह ताक़तवर रचना है।

एक और उदाहरण पश्चिमी साहित्य से। *Winnie the Pooh* नाम की सीरीज़ काफ़ी प्रचलित रही है। यह ए ए मिलन ने लिखी है। उनकी किताब है *The House at Pooh Corner*. वो *Winnie the Pooh* जैसी ही मज़ेदार है, हल्की-फुल्की है। एक बच्चा और उसके बहुत सारे stuffed खिलौनों के साथ बुनी हुई बहुत सारी कहानियाँ हैं, पर उनमें कहीं-कहीं पर साहित्य के ऐसे टुकड़े मिलते हैं जो आपको ज़िन्दगी के बारे में सोचने को मजबूर करते हैं। एक नदी के बहने का विवरण ऐसा मिलेगा जिसमें उम्र के अलग-अलग पड़ाव में ज़िन्दगी कैसी होती है, उसका अक्स देख सकते हैं। साहित्य और कहानी के अन्दर इस तरह की सम्भावना बहुत महत्त्वपूर्ण लगती है। जब *प्रणव का स्कूल में पहला दिन* ये किताब प्रकाशित कर रहे थे तब काफ़ी बहस हुई थी, लग रहा था कि ये बहुत सरल है। फिर हमने कुछ बच्चों को इस किताब को पढ़ाया और देखा कि बच्चों को मज़ा आ रहा है और वे, पहले दिन का जो डर होता है, स्कूल जाने का, उससे काफ़ी सम्बन्ध बना पाते हैं। हमने तय किया कि इसको प्रकाशित करेंगे और जब प्रकाशित होकर बच्चों के हाथों में गई तो काफ़ी रिस्पॉन्स मिले कि बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। कई बार लगता है कि कहानी में बहुत तहें (layers) होना ज़रूरी नहीं है। तहें हों तो हम उसपर लौट-लौट जाते हैं, लेकिन कई बार कोई बहुत सरल-सी कहानी भी जो अच्छी तरह से कही गई है, उसकी बुनावट अच्छी है, कोई बहुत grand plot उसमें नहीं है मगर वो उस पल की आपकी किसी संवेदना को छू जाती है किसी-न-किसी भावात्मक ज़रूरत को पूरा करती है और वह भी महत्त्वपूर्ण होती है।

प्रभात कुमार बसंत ने एक श्रृंखला लिखी *कक्कू के कारनामे*। इसमें हल्की-फुल्की स्कूल की मस्ती, दोस्तों के साथ मस्ती के क़िस्से हैं जो बहुत मज़ा दे जाते हैं। बच्चों के लिए पढ़ने का, उस मज़ाक़ का भी एक महत्त्व है। ज़रूरी नहीं कि हर किताब में बहुत सारी तहों में ही चीज़ें हों। पर कुछ चीज़ें ऐसी ज़रूरी हैं जैसे, suspense है, mystery है, रोमांच है, किसी चुनौती को पार करने का मज़ा है या किसी रहस्य की गुत्थी को सुलझाने का मज़ा है। Susan Ager ने अपनी किताब में कहा है कि कहानियाँ वो जगह देती हैं जिसमें यथार्थ की जकड़न से आज़ादी की बात होती है, और सिर्फ़ यथार्थ की जकड़न नहीं बल्कि जो आप चाहते हैं, कल्पना करते हैं, या जो आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं, ऐसी चीज़ों का स्वाद देने का काम कहानियाँ करती हैं। ज़िन्दगी की ऐसी चीज़ें जो पकड़ में नहीं आती हैं, जो tangible नहीं हैं,

मतलब जैसे ज़िन्दगी और मौत के बीच की बात है, या सच और झूठ के बीच की बात है या काले और सफ़ेद के बीच की बात है। इन grey areas की बातों पर बहुत ख़ूबसूरत चीज़ें लिखी गई हैं मगर बहुत ही कम। जैसे, एक किताब है *कीमिया*, यह ईरानी लेखिका हदीस गुलज़ार ग़ुलामी की कहानी है। वह बात करती हैं कि कैसे एक बच्ची को मौत आती है और बच्ची कैसे मौत के साथ खेल खेलती है और मौत को हरा देती है। जब मैं इन चीज़ों को पढ़ती हूँ और अपनी बेटी से बात करती हूँ, उसके दोस्तों से बात करती हूँ तो मैं यह भी देखती हूँ कि

मुस्कान प्रकाशन की किताबें

बच्चे भी इन सवालों पर बहुत सोच रहे होते हैं और आपस में बातचीत कर रहे होते हैं। ये जो intangible वाले spaces हैं, इनपर बच्चों के लिए लिखा हुआ बहुत ही कम दिखाई देता है। अन्त में सिर्फ़ एक-दो बातें यह कहना चाहती हूँ, हालाँकि मेरा प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है पर बहुत सारे बच्चों को, अध्यापक को काम करते हुए देखा है। Astrid Lindgren कहती हैं : 'children create miracles when they read'। भोपाल के आसपास के गाँव में हम reading rooms चलाते हैं। उनमें मेरे बच्चों के साथ कुछ अवलोकन रहे हैं जिसमें पढ़ने की देहलीज़ के इस पार वाले बच्चे और उस पार वाले बच्चे, उनके साथ बैठकर अगर आप पढ़ने का काम करें तो जो पढ़ पा रहे हैं उनके चेहरे की जो चमक होती है और जो अभी पढ़ नहीं पा रहे हैं उनके चेहरे की जो ललक होती है, वो दोनों को देखने का अनुभव ज़बरदस्त होता है। जब आप पाठ्यपुस्तक के बन्धनों को तोड़कर अलग-अलग बाल साहित्य की दुनिया बच्चों के बीच खोलते हैं तो ये चमक / ललक देखने को मिलती है।

गुरबचन सिंह : शुक्रिया टुलटुल।

रजनी : वैसे बच्चे ख़ुद ही चुन लेते हैं जो उनको अच्छा लगता है और उसमें भी उनको क्या-क्या समझना चाहिए, ये धीरे-धीरे समझते जाते हैं। राजेशजी ने कहा कि अच्छा बाल साहित्य वो है जो बच्चों को भी अच्छा लगे और बड़ों को भी। मेरे अनुभव भी ऐसे हैं। मैंने अपने बेटे के साथ में बहुत-सी किताबें पढ़ीं और पढ़ती भी रहती हूँ। अधिकांश रचनाएँ जो मैं उसके साथ में पढ़ रही हूँ, मैंने पाया है कि वो हम दोनों को अच्छी लगती हैं। यह ज़रूर हो जाता है कि उसका क्या अर्थ उसको कब समझ में आने लगा। जैसे एक दिन उसने मुझे धूप में खड़े होकर कहा कि धूप निकलती है, धूप के आगे धूप निकलती है, धूप में खोलो मुट्ठी तो कुछ नज़र नहीं आता। वह शायद साढ़े तीन साल का था। उसने कहा कि देखो मम्मा, अगर धूप में मुट्ठी खोलो तो हाथ में कुछ नहीं आता है। लेकिन धूप में ये छोटे-छोटे दाने तो दिख रहे हैं। एक और अनुभव है, हम कक्षा एक गणित की किताब का कवर बना रहे थे, दो चित्र थे कवर के लिए। मैंने 25 वयस्कों को दिखाया, उनकी राय पूछी, सबने कहा कि ये वाला अच्छा है और ये वाला अच्छा नहीं है।

लेकिन जब 6-8 साल के 25 बच्चों से पूछा कि आपको दोनों में से कौन-सा अच्छा लगा तो उन्होंने हमारी पसन्द वाले कवर को नापसन्द कर दिया। इन कवर में सिर्फ़ चित्र

थे, बच्चों ने उन दोनों के चित्रों को पढ़ा और निर्णय लिया। सभी 25 बच्चों ने एक कवर चुना और बताया भी कि क्यों ये अच्छा है। अतः जब हम ये कसौटियाँ कसते रहते हैं कि क्या अच्छा लगेगा, क्या मानदण्ड हैं, कि इस तरह की चीज़ें बच्चों को अच्छी लगेंगी लेकिन ऐसा बहुत बार होता है कि बच्चे उसमें कुछ ढूँढ़ पाते हैं पर हम लोग नहीं ढूँढ़ पाते। जब हम वयस्क कुछ तय करते हैं कि ऐसा होगा और ये बच्चों को अच्छा लगेगा वह वैसा ही हो बिलकुल जरूरी नहीं है। तो मुझे लगता है कि बहुत ज़्यादा सोचना नहीं चाहिए, बच्चों को दे देना चाहिए और वे अपने लिए उपयोगी विषयवस्तु ढूँढ़ लेते हैं।

टुलटुल बिस्वास : एक तो, बचपन में विविधताएँ और दूसरा, क्या है जो साहित्य में नहीं दिखाई देता है यह दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। विविध तरह के बचपन बाल साहित्य में बहुत कम दिखाई देते हैं परन्तु इनके बारे में लिखने में एक ख़तरा भी है। अगर यह सोचकर लिखें कि बच्चों के लिए लिखना है तो कबाड़ा हो जाता है। इसी तरह विशेष बच्चों के लिए लिखना है यह सोचकर लिखने से भी कबाड़ा हो जाता है। फिर भी यह ज़रूरत है कि जो बच्चे अपनी विशेष चुनौतियों के साथ जीवन जी रहे हैं उनकी भी जगह हो। मगर उनकी जगह में अकसर ऐसी कहानियाँ मिलेंगी जिनमें उनको बहुत ही दयनीय रूप से दिखाया जाएगा या कहानी के अन्त तक उनको कहानी का हीरो बना दिया जाएगा। जैसे हीरो बने बग़ैर उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। इन ख़तरों से वाक़िफ़ होते हुए एक सरल, सहज, मज़ेदार, चुनौती से भरा मिला-जुला बचपन हो, ये मुझे लगता है। उस लिहाज़ से *कुछ दोस्त, माछेर झोल* या *प्यारी मैडम* नाम की किताब जो एक विस्थापन का अन्देशा झेलने वाले बचपन की कहानी हैं या *बोरे वाला* जैसी किताब है जो घर में मानसिक असन्तुलन झेलने वाली माँ की परिस्थिति में जीने वाली बच्ची की कहानी है, ऐसे कई सारे उदाहरण मन में आते हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात कि बातचीत करना और बच्चों की राय लेना बाल साहित्य की पूरी प्रक्रिया में हो। उसमें दो तरीक़े हो सकते हैं।

पहला तरीक़ा utilitarian तरीक़ा कि हमें ये किताब छापनी है, हमें यह कवर छापना है। किसी आर्टिस्ट ने चित्र बनाकर दिए हैं तो उनको बच्चों के पास ले जाना और उनसे राय लेना, इसे मैं utilitarian तरीक़ा मानती हूँ कि आपको कुछ feedback चाहिए तो आप वो लेते हैं। उसका अपना महत्त्व है, उसको करना ही चाहिए। दूसरा तरीक़ा ज़्यादा अहम लगता है। रजनी भी बता रही थीं और तीनों शिक्षक साथियों ने भी कहा कि बच्चों के साथ अनायास ही किसी भी मुद्दे
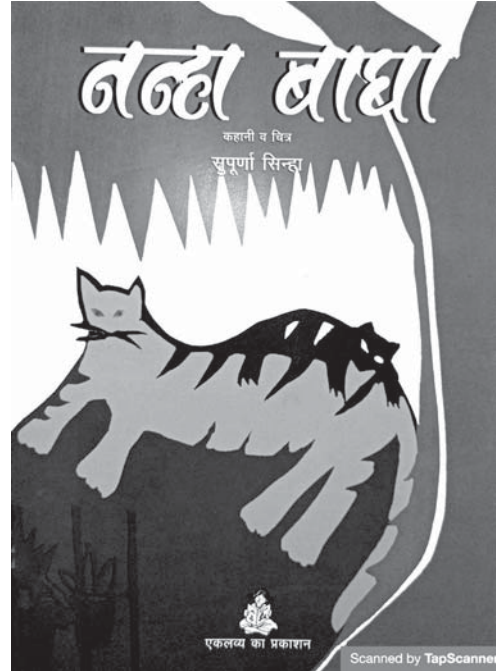
पर बातचीत करना और उनकी बातों को सुनना, और बहुत ध्यान से सुनना क्योंकि परतों के बीच में जो चीज़ें हैं उनको भी सुनना। क्या हम अपने कान उसके लिए खुले रख रहे हैं क्योंकि समझने की दृष्टि से वहाँ ज़्यादा मसाला मिलने की सम्भावना लगती है। दोनों तरह से बच्चों के साथ संवाद बहुत ज़रूरी लगता है।

गुरबचन सिंह : आप सभी ने इस संवाद में हिस्सा लिया और अपने अनुभवों व विचारों से सार्थक बनाया, इसके लिए आप सभी का धन्यवाद।

शिक्षा जगत की एक बड़ी कमी को यह पत्रिका पूरा करती है, इसलिए *पाठशाला भीतर और बाहर* की पूरी टीम बधाई की पात्र है। सैद्धान्तिक-दार्शनिक विषयों के साथ इसमें शिक्षा के व्यवहारिक अनुभवों को भी बराबर जगह दी जाती है, इस वजह से शिक्षा में काम करने वाले तमाम लोगों के लिए यह पत्रिका उपयोगी सिद्ध होती है।

अभय कुमार दुबे की लेखमाला 'मैकॉले बनाम भारतीय ज्ञान-प्रणालियाँ और शिक्षा-व्यवस्था' शिक्षा इतिहास के जटिल और उतने ही महत्त्वपूर्ण कालखण्ड को सरल भाषा में पेश करने का एक उम्दा प्रयास है। इस लेखमाला को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाना चाहिए।

अंजना त्रिवेदी ने 'संवैधानिक मूल्य' (धर्मनिरपेक्षता) से कक्षा में जूझने का जीवन्त विवरण साझा किया है। उनके सामने पेश आईं चुनौतियाँ, रुकावटें और फिर उसके लिए अपनाए गए नवाचारी उपायों को पढ़ना मेरे लिए रोचक अनुभव था।

कमला बाजपेई के लेख 'नन्दिनी का स्कूल' में एक विद्यार्थी के अवलोकन, उसके साथ संवाद, शैक्षिक गतिविधि आदि के माध्यम से शाला में समाजीकरण की प्रक्रिया की पड़ताल की गई है। समाजीकरण एक ऐसा मसला है जिसकी आमतौर पर उपेक्षा होती है या उसे गृहीत मान लिया जाता है। इस लेख में जेंडर संवेदनशीलता, शिक्षकों के पूर्वाग्रह आदि के ज़रिए इस ज़रूरी विषय पर ग़ौर किया जाना प्रासंगिक और प्रशंसनीय है।

– अमित कोहली

'देहलीज़' ये शब्द सुनते ही एक ख़्याल मेरे सिर से लेकर पैरों में एक कम्पन पैदा कर देता है क्योंकि बचपन से ही इस शब्द के मायने ऐसे समझाए गए थे कि देहलीज़ को लाँघने का मतलब है– अपनी सीमओं से बाहर निकलना, जिसके अर्थ कुछ सकारात्मक रूप में नहीं देखे जा सकते।

अकसर लोगों को यह कहते हुए सुना है, 'ये देहलीज़ अगर तुमने पार की तो तुम हमारे लिए मर गईं, इससे बाहर सोच-समझ कर क़दम रखना। अगर इससे बाहर गईं तो फिर तुम अन्दर आने के सारे दरवाज़े बन्द पाओगी, इस देहलीज़ से तुम्हारी डोली उठी है अब कैसी भी स्थिति आए, मुड़कर नहीं आना।'

जब कहानी की ये हैडिंग देखी तो ख़्याल आया, क्या इसी अर्थ के बारे में लेखक कुछ बताना चाह रहे होंगे, तो पढ़ना शुरू किया। इस कहानी में एक बच्चा है और एक शिक्षिका है। वो बच्चा किस

स्थिति में विद्यालय की देहलीज़ पर आता है, शिक्षिका उसे अपने विद्यालय में ले आती है और विद्यालय परिवार का एक हिस्सा बना लेती है। पूरी कहानी बच्चे को केन्द्र में रखकर ही गढ़ी गई है।

जैसे ही पहली चन्द पंक्तियों को पढ़ा तो चेहरे पर एक धीमी-सी मुस्कान आ गई। बच्चे के नन्हे हाथ जो धूल में लिपटे हुए होते हैं, अकसर उन्हें अपने बचपन या आसपास सहज में देखा है और वो हम सभी की ज़िन्दगी से जुड़ा ही होता है। लेकिन जैसे ही शिक्षिका कहती है कि ‘तुम बहुत प्यारे बच्चे हो’, वैसे ही एक ठहराव आया और एक पल के लिए सोचने लगी इतनी सहजता से क्या हम सभी स्वीकार कर लेते हैं किसी भी बच्चे को? अपने बच्चे तो धूल में सने भी सुन्दर लगते हैं, लेकिन सड़क के किनारे कोई बच्चा धूल-मिट्टी में लिपटा हुआ हो तो क्या हमारी चाहत होती है कि मैं उस बच्चे को अपनी गोद में उठाकर उसे अपने स्नेह का आलिंगन दूँ? ख़ुद को जब इस स्थिति में रखती हूँ तो असहजता महूसस कर रही हूँ, अभी इस सहजता के लिए मुझे ख़ुद पर कुछ काम करने की ज़रूरत लगती है।

कुछ महीनों पहले एक लेख पढ़ने को मिला था, ‘बच्चे स्कूल क्यों आते हैं’। इस कहानी को पढ़ते हुए वह लेख मेरी स्मृति में और स्पष्ट होने लगा। कहानी जैसे-जैसे आगे बढ़ती है शिक्षिका के प्रति एक सम्मान की भावना को और बल मिलने लगता है, वहीं इसके दूसरे पहलू में यह कहानी एक शिक्षक होने की ज़िम्मेदारी को भी परिलक्षित करती है। साथ ही कुछ गुणों को एक शिक्षक के जीवन में होने की ज़रूरत का भी ज़िक्र दिखाई देता है, जैसे– विद्यार्थी की पृष्ठभूमि की स्वीकार्यता, बच्चे की रुचि को महत्त्व देना, आदि।

इसे पढ़ते हुए एक ख़्याल बार-बार मुझे परेशान कर रहा है कि लेखक ने इस कहानी में एक शिक्षिका को ही क्यों लिया होगा? क्या ये ममता का आवरण, संवेदनशीलता किसी शिक्षक में देखने को नहीं मिलती? ये मेरा अपना नज़रिया है कि यदि इस कहानी की भूमिका में शिक्षिका के स्थान पर एक शिक्षक के पात्र को गढ़ा जाता तो ये सन्देश भी बख़ूबी हम तक पहुँचता कि एक शिक्षक के रूप में मुझमें इन गुणों का होना ज़रूरी है बजाय कि मेरे स्त्री या पुरुष के गुणों से।

जाने कितने स्कूल की देहलीज़ को पार करके हम सभी इन मुक़ामों पर पहुँचे हैं। हमारे शिक्षक ने हमारे अन्दर एक अपनेपन का अहसास रखते हुए न जाने कितनी बार बाहर से थपकी दी हैं जैसा इस कहानी में भी पढ़ने को मिला।

इसे पूरा पढ़ने के बाद समझ आया इस देहलीज़ में जो क़दम रखे जाते हैं वो कल्पनाओं के संसार में आने को आतुर होते हैं, नए विचारों का सृजन करने के लिए तैयार किए जाते हैं। लेकिन जब इस देहलीज़ से बच्चे बाहर की दुनिया में प्रवेश करते हैं, यहाँ सिखाया गया एक-एक पाठ बच्चे की नींव बनकर उभरता है तो एक शिक्षक होने के नाते मेरी ये ज़िम्मेदारी बन जाती है कि नींव खोखली न रह जाए।

– जगमोहन चोपता

कमलेश जोशी का लेख ‘शिक्षक प्रशिक्षण - कुछ अनुभव’, शिक्षकों के लिए इस मायने में बहुत उपयोगी साबित हो सकता है कि वह अपने काम के तरीक़ों को जाँचने में इसकी मदद ले सकेंगे।

यह आलेख बच्चों के सन्दर्भ बनाने के तरीक़ों पर बात करता है। उदाहरण के लिए, बच्चों के शिक्षण में अर्थ निर्माण केन्द्र में होगा तो बच्चों के लिए सन्दर्भ महत्त्वपूर्ण होगा और सन्दर्भ बनाने के लिए बच्चों के साथ चित्र, कहानी, कविता आदि के साथ शुरुआत करनी होगी, जिससे बच्चों को अर्थ बनाने का अवसर और अभ्यास मिल सकें।

इसमें आगे जोशीजी यह भी बताते हैं कि जब तक शिक्षक अपने पढ़े हुए को अपने आसपास से जोड़कर महसूस न करने लगें, वह बच्चों तक उस विषयवस्तु को ठीक से नहीं पहुँचा सकते। पाठ्यक्रम के इतर की चीज़ों को पढ़ना और उनपर चर्चा करना उक्त काम में बहुत मददगार होगा।

– महमूद ख़ान

कालू राम शर्मा का लेख 'बच्चों के सवाल हल्के में मत लीजिए!' में सवाल-जवाब की प्रासंगिकता को बच्चे द्वारा घटना को समझने और पुनः उस सन्दर्भ में सवाल करने की मूलभूत दक्षता के रूप में प्रस्तुत किया गया है जहाँ जवाब की संकल्पना पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। इसमें बच्चों की सोचने और उसका अपनी दुनिया से, जहाँ पर भाषा की सरलता को भी सम्मिलित किया गया है, और तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर पुनः सवाल करने की आकांक्षा को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। लेख में इस बात के महत्त्व को दर्शाया गया है कि बच्चों को अपनी बातों को अभिव्यक्त करने का पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराना चाहिए क्योंकि सवाल, पूछने वाले के बारे में उसकी मनोवृत्ति, सामाजिक परिवेश और सोचने के ढंग की एक समझ देते हैं।

लेख बच्चों की सोचने, समझने और सीखने की प्रवृत्ति को जवाब की प्रासंगिकता में सम्मिलित करता है। बच्चे अपने परिवेश से अन्तःक्रिया करके सीखते हैं जिसमें अवलोकन एक महत्त्वपूर्ण भाग होता है जो बच्चों में सवाल करने की जिज्ञासा उत्पन्न करता है।

– अंकेश

अंक 4 में अजा शर्मा का लेख 'समाज की खिड़की खोलता है साहित्य' पढ़ा। उम्दा लेख है। अकसर देखने में आता है कि बाल साहित्य को ख़ाली समय में या जब कोई शिक्षक छुट्टी पर गए हों, तो उस समय उपयोग कर लिया जाए, ताकि बच्चे शोर न करें। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या इसका इतना सीमित उपयोग है। किस तरह से यह सामग्री बच्चों के सीखने-सिखाने में मदद करती है, बच्चों के अनुभव संसार को व्यक्त करने का ज़रिया बनती है, बच्चों को किताबों के प्रति आकर्षित करती है, और पढ़ने का चस्का लगाती है।

यदि किताबें इस्तेमाल होती हैं, तो वह किस तरह से होती हैं। क्या सिर्फ़ लेने-देने तक ही सीमित हैं या उनपर बातचीत भी होती है। यदि होती है तो किस तरह की होती है। यदि इन सब बातों का ध्यान रखकर हम बच्चों के साथ किताबों पर काम करते हैं तभी इनकी सार्थकता है।
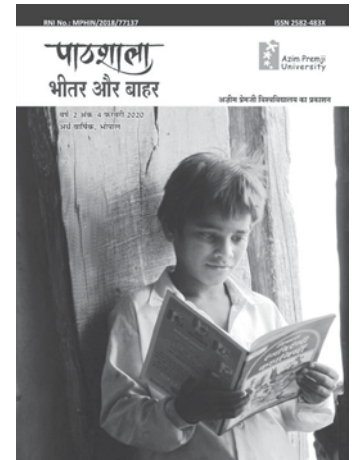
– प्रेरणा मालवीय

फॉर्म 4

1. **प्रकाशन का स्थान :** अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमैंट, प्लाट नं. 321-322, ई-8 अरेरा कॉलोनी, पंजाब नेशनल बैंक के पीछे, फार्चून प्राइड सोसायटी, त्रिलंगा, भोपाल- 462039 मध्यप्रदेश
2. **प्रकाशन की नियत अवधि :** तिमाही
3. **मुद्रक का नाम :** मनोज पी.
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु 562 125 कर्नाटक
4. **प्रकाशक का नाम :** मनोज पी.
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु 562 125 कर्नाटक
5. **सम्पादक का नाम :** गुरबचन सिंह
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : ई 8 / 103 शिवकुंज रेलवे हाउसिंग सोसायटी, स्टॉप नं. 11 के पास, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 मध्यप्रदेश
6. **उन व्यक्तियों के नाम जिनका स्वामित्व है :**
   स्वामी : अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट
   पता : प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039

मैं मनोज पी. घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

तारीख 1 फरवरी 2021

प्रकाशक के हस्ताक्षर

AZIM PREMJI UNIVERSITY BANGALORE

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डेवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163–164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26–बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन–1 भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर **पाठशाला भीतर और बाहर** में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं, जिसकी झलक आपको इस सातवें अंक में भी दिखाई देगी।

प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार देने और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी उनके द्वारा किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तःक्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में, जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने के या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें, आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला, और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि? इसी तरह कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे। गणित का एक उदाहरण, शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उसे सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह के लिए और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

इसी तरह, शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों और उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने में मदद मिले। लेखों की भाषा और विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उसमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि **पाठशाला भीतर और बाहर** का यह सातवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ